अनुरागरत्न

विविध विषय-विभूषित काव्य-ग्रन्थ

रचयिता

कविता-कामिनी-कान्त

कविराज श्री पण्डित नाथूरामशंकर शर्मा 'शङ्कर'

प्रकाशक

शंकर-सदन, आगरा

द्वितीय संस्करण सजिल्द | १९३६ | मूल्य १॥)

साहित्य-महारथी श्री पं० पद्मसिंहजी शर्मा

······निस्सन्देह अनुराग-रत्न एक अनर्घ रत्न है, जो हिंदी साहित्य में अपना जोड़ नहीं रखता। जिस दृष्टि से देखिए, हिन्दी भाषा में एक आश्चर्य काव्य है। शङ्करजी छन्द-शास्त्र के अद्वितीय आचार्य हैं। अलङ्कारों की अधिकता, रस और भाव की बहुलता, विषय-वर्णन की विचित्रता, चमत्कार की चारुता आदि काव्य-अंगों से अनुराग-रत्न देदीप्यमान है। अनुराग-रत्न की कितनी ही अनूठी कविताओं को पढ़ कर—'जहाँ न जाय रवि, वहाँ जाय कवि' की कहावत चरितार्थ हो जाती है। निस्सन्देह इसे नवनवोन्मेषशालिनी कवि-प्रतिभा का चतुरस्र विकास समझना चाहिए। अनुराग-रत्न के विषय में कुछ अधिक कहना मिट्टी के तेल की बत्ती से रत्न-राशि की नीराजना (आरती) करना है।·········

'प्रताप' के प्रतापी सम्पादक

अमरशहीद श्रीगणेश शङ्कर विद्यार्थी

······कवि शंकरजी में जबरदस्त मौलिकता है। अनुराग-रत्न में जहाँ उन्होंने अपने भाव प्रकट किये हैं, वहाँ उनके शब्दों का विग्रुद्वेग और उनकी प्रतिभा देखते ही बन पड़ती है।·········

आचार्य श्री पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी

······अनुराग-रत्न के पद्य प्रायः सभी सरस और मनोरञ्जक हैं। ······शिक्षा और सदुपदेश भी हैं। भाषा बोलचाल की होने से खूब सरल है, यह इस ग्रन्थ का सबसे बड़ा गुण है।·········

सम्पादकाचार्य श्री पं० रुद्रदत्त शर्मा

······शङ्करजी प्राचीन और अर्वाचीन काव्य-कलाओं को प्रकाशित करने में दैवी शक्ति रखते हैं। काव्य-प्रिय लोग अनुराग-रत्न को पढ़कर फिर आधुनिक अन्य कुकाव्यों को आपही फीका समझने लगेंगे। क्योंकि---

पीत्वा पयः शशिकर द्युति दुग्ध सिन्धोः।
क्षारं जलं जलनिधेर्रसितुं कइच्छेत्॥

श्री पं० रामजीलाल शर्मा, प्रधान मंत्री, भारतवर्षीय हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग

"······अनुराग-रत्न हिन्दी पद्य-साहित्य में अनोखी वस्तु है। शङ्करजी की रसीली कविता की कहाँ तक प्रशंसा की जाय। एक-एक कविता को बार-बार पढ़ने पर भी जी नहीं भरता। शंकरजी की रचना-चातुरी का यह ग्रन्थ बहुत ही उत्कृष्ट नमूना है·········"।

श्री स्वा० परमानन्दजी महाराज (आगरा)

······महाकवि शङ्कर-रचित अनुराग-रत्न विविध विषय-विभूषित विशुद्ध कविता का अति उत्तम ग्रन्थ है। इसके पढ़ने और गाने में अद्भुत आनन्द उपलब्ध होता है।·········

श्री पं० घासीरामजी एम० ए०, एडवोकेट

......अनुराग-रत्न प्रत्येक कविता-प्रेमी को उपादेय है। प्राय: सभी कविताएँ सरस और मधुर हैं। इस ग्रन्थ की कविता में सबसे बड़ा गुण पद-लालित्य, माधुर्य और शब्द-चातुर्य है।.........

राज्यमित्र श्री पं० आत्मारामजी (अमृतसरी)

......अनुराग-रत्न की कविता उत्तम, प्रभावशाली और युक्ति-पूर्ण हैं।.........

रायसाहब श्रीमदनमोहन सेठ एम० ए०, सबजज,
प्रधान, आ० प्र० सभा, संयुक्तप्रान्त

......अनुराग-रत्न रत्न ही है। इसकी कविता मधुर, सरस, उत्कृष्ट और सामाजिक सिद्धान्त-सम्पन्न है। इस ग्रन्थ-रत्न को साहित्य में स्थायी स्थान मिलेगा, इसमें तनक भी संदेह नहीं।.........

वेदतीर्थ श्री पं० नरदेव शास्त्री

......अनुराग-रत्न शङ्करजी की कृति का उत्कृष्ट नमूना है। हिन्दी में कवि शङ्कर को भवभूति की उपमा दे सकते हैं। उनकी कविता में पाण्डित्य और वैदग्ध्य स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होते हैं।.........

राजगुरु श्री पं० धुरेन्द्रजी शास्त्री, न्यायभूषण

……अनुराग-रत्न अनमोल काव्य-ग्रन्थ है। अनेक गम्भीर दार्शनिक विषयों को शङ्करजी ने अपनी कविता-शक्ति द्वारा बड़ी सरलता और सुन्दरता से समझाया है। निःसन्देह हिन्दी-साहित्य में यह एक अनर्घ रत्न है।………

———

वेदान्ताचार्य श्रीहरिदत्त शास्त्री, काव्य-न्याय-वैशेषिक-व्याकरण-सांख्य-योग-वेदतीर्थ, आचार्य, महाविद्यालय (ज्वालापुर)

……छन्दों के नियमों का जितना पालन इस महाकाव्य में मिलता है, उतना अन्यत्र कहीं नहीं। महाकवि राजशेखर ने किसी काव्य को "रसाल फल सन्निभ" कहा है तो किसी को "नारिकेलफलाकार"। प्रकृत अनुराग-रत्न इन सबका समष्टि रूप से एक ही उदाहरण है।……

———

श्री पं० लक्ष्मीधरजी वाजपेयी

……अनुराग-रत्न की कविताएँ भिन्न-भिन्न ललित छन्दों व वृत्तों में लिखी गई हैं तथा काव्य-चमत्कृति से परिपूर्ण हैं। स्वदेश और स्वधर्म सम्बन्धी अनुराग के अनेक उपदेश-रत्न इस पुस्तक में भरे हुए हैं।………

———

साहित्य-रत्न श्रीरामचन्द्र श्रीवास्तव 'चन्द्र' एम.ए., एल-एल.बी.,
आचार्य, हिन्दी साहित्य-विद्यालय, आगरा

.........'अनुराग-रत्न' वास्तव में अनुराग-रत्न है। वह सहृदयों के हृदयों का हार बनकर चिरकाल तक जगमगाता रहेगा, इसमें सन्देह नहीं। अनुराग-रत्न में मुर्दा दिलों को जिन्दा करने की संजीवनी शक्ति है। साथ ही अध्यात्म-धारा का जो स्रोत उसमें प्रवाहित हुआ है, वह नितान्त आस्वादनीय और कवि की रहस्यात्मिका वृत्तिका द्योतक है।........"

सुप्रसिद्ध विद्वान् और काव्य-मर्मज्ञ
साहित्याचार्य श्री पं० शालग्रामजी शास्त्री

शङ्करजी का अनुराग-रत्न सर्वाङ्ग सुन्दर काव्य है। कविता का तो कहना ही क्या है, एक से एक बढ़कर भावपूर्ण है। जो लोग छन्दः-शास्त्र में निपुण हैं, उनके विनोद का इसमें बहुत कुछ सामान है। यों तो शंकरजी की रचना में अनेक रसों और भावों की छटा है, परन्तु करुण और हास्यरस की पुष्टि अत्यन्त सुन्दर हुई है। हास्यपूर्ण अन्योक्तिमय उपदेश देने में आपकी लेखनी बड़ी निपुण है। यमक और अनुप्रासों के हुरदंग में प्रसाद गुण को अछूता रखना आपही के विशाल शब्द-भण्डार का काम है। अर्थ और सौन्दर्य की शुद्धि भी कुछ कम नहीं है। विचार भी सामाजिक, नैतिक, आर्थिक, धार्मिक, दार्शनिक देश आचार विषयक, नवीन तथा प्राचीन सभी ढंग के कविता के रंग में बड़े ही कौशल से रँगकर अंकित

किए हैं। पं० नाथूरामशङ्कर शर्मा हिन्दी के एक समुज्ज्वल रत्न हैं। यदि आप कविता के युग में उत्पन्न हुए होते तो निस्सन्देह किसी राज-सभा के रत्न बनते। इस काव्य के विषय में हमारी ईश्वर से प्रार्थना है:—

चित्रोल्लास विचित्र वर्ण महिम प्राप्तः प्रसाद प्रदो,
जाग्रज्ज्योतिरकज्जलो गुण गणस्यूतोऽर्थ सार्थावहः।
चित्ते, चक्षुषि, वाचि, वक्षसि लसन्स्वान्तप्रियोऽयं सतां,
ध्वान्तौघं विनिहन्तु शङ्करकवेरप्रत्नरत्नोदयः॥

नम्र निवेदन

'अनुरागरत्न' का यह द्वितीय संस्करण आज पाठकों की सेवा में उपस्थित किया जाता है। स्वर्गीय महाकवि शङ्कर के आदेशानुसार इस संस्करण में, कुछ कविताएँ घटा-बढ़ा दी गई हैं, जिससे पुस्तक की उपादेयता में और भी अधिक वृद्धि हो गई है। विद्वन्मण्डली ने 'अनुरागरत्न' के प्रथम संस्करण की मुक्तकण्ठ से सराहना की। सहृदय-समाज तथा काव्य-मर्मज्ञों ने इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा कर अपनी गुणग्राहकता का प्रशस्त परिचय दिया। प्रायः सभी प्रतिष्ठित हिन्दी पत्रों ने 'अनुरागरत्न' की दिल खोल कर तारीफ़ की। इन सब सम्मतियों को विस्तार-पूर्वक छापना कठिन कार्य है, क्योंकि इसी आकार के पचास पृष्ठों से कम पर वे न आवेंगी। फिर भी दस-पाँच प्रसिद्ध विद्वानों और नेताओं की सम्मतियों में से कुछ चुने हुए शब्द, ग्रन्थ के प्रारम्भ में उद्धृत किए जाते हैं। इनसे पाठक अनुमान कर सकेंगे कि वास्तव में—'अनुरागरत्न' है क्या ?

महाकवि शङ्कर को परलोक-यात्रा किए ४ वर्ष हो गए; परन्तु उनकी विस्तृत जीवनी अब तक प्रकाशित न हो सकी और न शङ्करजी की सैकड़ों अनूठी और अछूती कविताएँ ही पुस्तकाकार में पाठकों तक पहुँच सकीं। इस का हमें खेद

है—विशेष कर इसलिए कि शङ्करजी की जीवनी तथा उन के अप्रकाशित काव्य पढ़ने के लिए कविता-प्रेमियों के पचासों पत्र प्रतिमास 'शङ्कर-सदन' में आते रहते हैं, जिनका उत्तर हमें 'नकार' में देना पड़ता है। परन्तु अब शङ्करजी की विस्तृत जीवनी और उनकी अप्रकाशित कविताएँ प्रकाशित करने की पूरी चेष्टा की जा रही है। आशा है, परम प्रभु परमात्मा की अपार अनुकम्पा से दोनों कार्य शीघ्र ही सम्पन्न होंगे और सहृदय सज्जनों को अधिक दिनों तक प्रतीक्षा में न रहना पड़ेगा।

'अनुरागरत्न' के पहले संस्करण का मूल्य १) था, परन्तु अब १॥) कर दिया गया है। इसका कारण यह है कि अब की बार पुस्तक की पृष्ठ-संख्या १०० के लगभग बढ़ गई है, साथ ही कपड़े की बँधी सुन्दर जिल्द है, और बढ़िया आर्ट पेपर पर छपे दो चित्र दिए गए हैं।

आशा है, सहृदय-समाज इस संस्करण का भी उत्साह पूर्वक स्वागत करता हुआ, उसे बड़े प्रेम से अपनावेगा। एवमस्तु !

हरिशङ्कर शर्मा

———

सूची

पृष्ठ

पृष्ठ

पृष्ठ

दो शब्द

हिन्दी के रससिद्ध सुप्रसिद्ध महाकवि श्रीमान् पण्डित नाथूरामजी "शंकर" शर्मा की अलौकिक कविताओं के अपूर्व संग्रह, "अनुरागरत्न" की यथार्थ परीक्षा, इन कतिपय पंक्तियों में नहीं हो सकती, इसके लिये पृथक् निबन्ध की ज़रूरत है। वास्तव में देखा जाय तो "कविता" समालोचना की अपेक्षा नहीं रखती, वह अपने असाधारण गुणों से सहृदय सज्जनों के हृदय पर स्वयं और सहसा अधिकार कर लेती है। "कविता" के विषय में किसी संस्कृत कवि की यह उक्ति अक्षरशः सत्य है:—

"ज्योत्स्नेव हृदयानन्दः सुरेव मदकारणम्।
प्रभुतेव समाकृष्टलोका कवयितुः कृतिः॥"

अर्थात् सत्कवि की कविता, चाँदनी (ज्योत्स्ना) की तरह हृदय को आनन्द देने वाली, 'सुरा' की तरह मस्त कर देने वाली और प्रभुता (हुकूमत) की तरह मनुष्यों को बलात् अपनी ओर खींचने वाली, एक ज़बरदस्त चीज़ है।

सो चाँदनी, सुरा या हुकूमत अपना असर करने में किसी समालोचना या गुणपरिचय की अपेक्षा नहीं रखते। इनके

प्रबल प्रभाव से कोई जड़ताक्रान्त, "परहेज़गार" या "बाग़ी" आदमी ही अपने को बचा सकता है।

किसी कविता-मर्मज्ञने क्या ही ठीक कहा है:—

" श्रुते महाकवेः काव्ये वदने नयनेऽथ वाः ।
युगपद्यस्य नोदेति स वृषो महिषोऽथवा ॥"

अर्थात् महाकवि का काव्य सुनते ही एकदम जिसके मुँहसे वाह और नेत्रसे (वाः) आनन्दाश्रु नहीं निकलते, वह वृष है या महिष है !

खेद की बात है कि कविता के क़ातिल इस 'रोशनी' के ज़माने में ऐसे ही आदमियों की संख्या अधिकता से बढ़ रही है, जिनके कान कविता की मधुर ध्वनि के लिये बहरे और ज़ुबान 'वाह' के उच्चारण में गूँगी तथा हृदय रसास्वाद को शून्य है। दुर्भाग्य से आर्यसमाज की दशा तो इस बारे में और भी शोचनीय है। यहाँ तो भद्दी तुकबन्दियाँ सुनते-सुनते मज़ाक ऐसा बिगड़ गया है कि कुछ कहने की बात ही नहीं—"लहरा रही है खेती दयानन्द की"—"रड़के पोप दलों में स्वामी का बाण" —आदि टप्पों पर रीझने वाला समाज "अनुरागरत्न" की क़दर करेगा, इसकी कुछ आशा तो है नहीं, पर ईश्वर की माया से कुछ दूर भी नहीं है, वह चाहे तो सब कुछ हो सकता है:—

"ख़ाक से जिसने बीज उगाये, फिर पौदे परवान चढ़ाये।
सीप को बख्शी जिसने दौलत, और बख्शा मक्खी को अमृत।
लकड़ी में फल जिसने लगाये, और कूड़ी पर फूल खिलाये।

हीरा बख़्शा कान को जिसने, मुश्क दिया हैवान को जिसने।
जुगनूँ को बिजली की चमक दी, ज़र्रे को कुन्दन की दमक दी।"

उसी अघटन घटना पटीयान् भगवान् से प्रार्थना है कि वह अपनी इसी अचिन्त्य और अलौकिक शक्ति को काम में लाकर, हमारे गुण-ग्रहण-पराङ्मुख, साहित्य-विद्वेषी, हृदयशून्य समाज में गुणग्राहकता, साहित्यानुराग और सहृदयता का संचार करे। पत्थर दिलों को मोम करदे, अन्धों को आँखें दे, "सब धान बारह पसेरी" समझने वाले "समदर्शियों" को विवेक-बुद्धि दे जिससे वे कपूर और कपास में फ़र्क़ समझ सकें, "रत्न" और काच में भेद कर सकें, रत्न को कण्ठ में और काच को कूड़े पर जगह दें। महनीय कीर्ति गुणगणालंकृत सत्कवियों का समादर और अनधिकार चेष्टा करने वाले साहित्य-हत्यारे तुक्कड़ों का निरादर करना सीखें।

निःसंदेह "अनुरागरत्न" आर्य-साहित्य में एक अनर्घ रत्न है। जिस दृष्टि से देखिए, हिन्दी भाषा में यह एक आश्चर्य-काव्य है। शंकरजी छन्दःशास्त्र के अद्वितीय आचार्य हैं, आपने हिन्दी में अनेक नये छन्दों को जन्म दिया है, कई पुराने छन्दों में नवीनता उत्पन्न की है, मात्रिक, वर्णिक, मुक्तक आदि प्रत्येक प्रकार की पद्य-रचना में मात्रा, अक्षर, गिनती, खण्ड, विराम ये सब जिसमें तुल्य आवें, ऐसी कोई पुस्तक कविता विषयक (जहाँ तक मालूम है) आज तक प्रकाशित नहीं हुई थी। संभव है, अपनी दो-एक कविताओं में इस महा कठिन नियम को किसी

कविने निबाहा हो, परन्तु अनेक विध छन्दःपूरित सम्पूर्ण पुस्तक में आद्योपान्त यह नियम नहीं देखा गया। 'अनुरागरत्न' इस विषय की पहली पुस्तक है। शंकरजी की जो कविताएँ, सरस्वती 'परोपकारी,' 'भारतोदय' आदि में पूर्व प्रकाशित हो चुकी हैं, उन्हें भी आपने इस नियम की शाण पर चढ़ाकर ठीक किया है। इस लिये प्रायः पाठभेद होगया है। इस सख़्त पाबन्दी के सबब कहीं-कहीं काठिन्य हो गया है। जिन्होंने ऐसी कविताओं को पहले रूपमें पढ़ा है, उन्हें परिवर्तित पद खटकते हैं, पर इस कठिन दुर्गम घाटी का तै करना शङ्करजी का ही काम था। आज कल जब कि रदीफ़ और क़ाफ़िये की बन्दिश से तंग आकर उर्दू के बड़े-बड़े कवि भी 'ब्लंक वर्स' (तुकहीन) कविता की ओर झुक रहे हैं, हिन्दी कविता में नई बन्दिशें पैदा करके इस सफ़ाई से साफ़ निकल जाना, तलवार की धार पर चलकर भी पदों को घायल न होने देने से कुछ कम बात नहीं है। नियम पालन का आपने यहाँ तक ध्यान रक्खा है, कि हर एक क़ाफ़िया श-श, ष-ष और स-स के मेल से मिलाया गया है। 'श' के साथ 'ष' या 'स' का मेल नहीं किया गया, जैसा कि प्रायः हिन्दी के कवि कर देते हैं।

अनुरागरत्न में प्रत्येक दोहा ८-८ अक्षरों के विश्राम से अपने चरणों में १३-११ मात्राओं का योग दिखाता है। और प्रत्येक सोरठा ८-६ अक्षरों के विराम से अपने पदों में ११-१३ मात्राओं का योग रखता है। प्रत्येक मात्रिक छन्द अपने चरणों में 'गुरु' 'लघु' तथा अक्षर और मात्राओं की तुल्यता प्रकट करता है। केवल

इतनाही नहीं बल्कि प्रत्येक तुल्य खण्डों पर जो विराम होंगे, वे भी अक्षरों की तथा गुरु-लघु आदि की गणना में तुल्य होंगे। कई कविताएँ ऐसी हैं जिनमें विराम और अन्तर पर क़ाफ़िये मिलाये गये हैं। इसके उदाहरण के लिये "मेरा महत्त्व" (पृ० २५४) देखिये। मुक्तक छन्दों में पूर्व दल तथा पर दल दोनों में गुरु-लघु, यथानियम मिलेंगे। जैसे घनाक्षरी के पूर्वदल में १० गुरु ६ लघु और परदल में ९ गुरु ६ लघु रक्खे हैं। पुराना नियम यह है कि घनाक्षरी के चरण १६-१५ के विश्राम से हों, गुरु-लघु तुल्य रखने का बन्धन नहीं है। क़व्वाली छन्द को कवि लोग मात्रिक मानकर लिखते हैं, परन्तु अनुरागरत्न में भिखारीदासजी के छन्दोर्णव पिंगल में वर्णित "शुद्धगा वृत्त" के अनुसार इसे लिखा गया है। "चित्र विनीनो" छन्द को श्रीभिखारीदासजी ने मात्रिक छन्द लिखा है। परन्तु अनुरागरत्न में इसी को (चित्र विनीनी को) वर्णिक मानकर "कलाधर वृत्त" नाम से लिखा गया है, जैसे पृ. (५) पर "चमके अनुरागरत्न मेरा" और १९८ पृष्ठ पर "हमारा अधःपतन"। यह वही बहर है, जिसमें उर्दू के महाकवि पण्डित दयानारायण (नसीम) ने सुप्रसिद्ध "गुलबकावली" लिखी है।

कई बहरें जो केवल उर्दू में ही आती हैं, जिनका प्रयोग अब तक हिन्दी में नहीं हुआ था, शङ्करजी ने उन्हें नये नामों से अपनी कविता में आश्रय दिया है। यथा 'मुसद्दस' का नाम "मिलिन्द पाद" "ग़ज़ल" का नाम "राजगीत" इन्हीं की ईजाद है। "सुमना" और "उग्रदण्डक" ये भी नये नाम हैं। "सवैयों"

को भी आपने कई प्रकार से ख़ूब सजाया है, जैसे "द्विज वेद पढ़ें-सुविचार बढ़ें" इत्यादि। अधिक क्या, केवल पिङ्गल की दृष्टि से देखा जाय तो "अनुरागरत्न" एक अपूर्व रत्न है, जो हिन्दी-साहित्य में अपना जोड़ नहीं रखता। अलङ्कारों की अधिकता, रस और भाव की बहुलता, विषय-वर्णन की विचित्रता, चमत्कार की चारुता आदि काव्य-गुणों से भी "अनुरागरत्न" देदीप्यमान है। अनुरागरत्न का प्रत्येक पद्य इसका उदाहरण है। कई कविताएँ तो एक दम निराली और अनूठी हैं। यथा "नैसर्गिक शिक्षा" "पावस–पञ्चाशिका" "वसन्त–विकास" आदिमें जिस सर्वथा नवीन रीति से अलौकिक और अनूठे भावों को भरा है, उसे नवनवोन्मेषशालिनी कवि-प्रतिभा का चतुरस्र विकास समझना चाहिए। इन कविताओं को पढ़कर "जहाँ न जाय रवि वहाँ जाय कवि" इस कहावत की सचाई का उदाहरण मिल जाता है। गीतों में जिस चातुर्य से वेदान्त-विचारों को और अध्यात्म भावों को सूक्ष्म रीति से दरसाया गया है, उसका पता "अनुरागरत्न" के प्रकाश में ही पाइयेगा।

"ब्रह्म-विवेकाष्टक" में जिस पाण्डित्य से गूढ़ दार्शनिक तत्त्वों को गूँथा गया है, उसे देखकर एक सहृदय कवितार्किक दार्शनिक विद्वान् दंग रह गये, वह बार-बार उक्त पद्यों को पढ़ते थे और प्रशंसा करते नहीं अघाते थे। 'रामलीला' में जिस ख़ूबी से रामायण का सार निकालकर 'सागर को गागर' में भरा है, और साथ ही साथ प्रत्येक घटना से कुछ न कुछ शिक्षा

ग्रहण करने का उपदेश (प्रत्येकपद्य के अन्तिम पदों द्वारा) दिया है, वह कवि-लीला का अच्छा परिचायक है। "अनुराग-रत्न" के विषय में कुछ अधिक कहना, मिट्टी के तेल की बत्तीसे रत्न-राशिकी नीराजना (आरती) करना है !! शङ्करजी के शब्दों में प्रार्थना करके यह संक्षिप्त विवेचना समाप्त की जाती है। "परमात्मन् ! इस 'अनुरागरत्न' को अच्छे गवैया गावें, अभिज्ञ श्रोता सुनें, विचारशील पुरुष पढ़ें और समझें यही प्रार्थना है।"

एक भारी भूल—मनुष्य का कोई कार्य सर्वथा निर्दोष नहीं हो सकता, कोई न कोई भूल हो ही जाती है। "अनुरागरत्न" भी इससे नहीं बच सका। जहाँ यह और सब प्रकार से प्रशंसनीय है, वहाँ इसकी एक बात खटकने वाली और आक्षेप योग्य है, वह इसका "समर्पण" है। जिस व्यक्ति को यह रत्न समर्पित हुआ है, वह किसी प्रकार भी इसका पात्र नहीं है। यदि यह अनर्घ रत्न किसी श्रीमान् को समर्पित होता तो कवि को इष्टलाभ सुलभ था। यदि किसी देवता या महापुरुष के नाम समर्पण होता तो पुण्य-प्राप्ति और कीर्ति-लाभ इसका फल होता। इस समर्पण में "समर्पयितुर्वचनीयता" के अतिरिक्त और भी कुछ लाभ होगा, सो समझ में नहीं आता। अथवा कवि शङ्करजी का यह समर्पण "आशुतोष" और "वामदेव" नामधारी शङ्कर भगवान् की विचित्र लीलाओं के ढंग का है, जिस प्रकार (पौराणिक) भोलानाथ (शङ्कर) मालती-माल्य का निरादर

करके धत्तूर-पुष्प को धारण करते हैं, मुक्ताहार के स्थान में नर-कङ्काल से कण्ठ को विभूषित करते, अमृत छोड़ विष का पान करते और कैलासोपवन का परित्याग करके श्मशान में आसन जमाते हैं, उसी प्रकार अनेक गुणज्ञ श्रीमानों, विविध उपाधिधारी विद्वानों, और दिगन्त विश्रुत कीर्ति, समाज-प्रभु लीडरों को छोड़कर, एक अगण्य और अधन्य सामान्य जन को "अनुरागरत्न" का समर्पण हुआ है! क्यों न हो, आख़िर 'शङ्कर' के नाम-साम्य के साथ कुछ तो लीला-साम्य भी चाहिये। अन्यथा:—

"क्वायं (हं) मूढ़मतिर्मन्दो गुणैः सर्वैर्वहिष्कृतः।
क्व चायं सुकृतिप्राप्यः शांकरोऽनुग्रहः परः॥"

महाविद्यालय,
ज्वालापुर

पद्मसिंहशर्म्मा

———

❀ ॐ तत्सत् ❀

महाकवि शङ्कर

का

काव्य

यत्प्रौढित्वमुदारता च वचसां,
यच्चार्थतो गौरवम् ।
तच्चेदस्ति तदेव चास्तु गमकं,
पाण्डित्य वैदग्ध्ययोः ॥

—मालतीमाधव

न्दी में हम कवि शंकर को भवभूति की उपमा दे सकते हैं; क्योंकि भवभूति की कृति के सदृश शंकरजी के काव्य में प्रौढित्त्व है, वाणी की उदारता अर्थात् शब्द-प्रयोग की कुशलता है। शब्द तो कविजी के आगे हाथ जोड़े खड़े रहते हैं। उन शब्दों का सौभाग्य है, जो इनकी काव्य-माला में गूँथे गये हैं। शंकरजी के काव्य में अर्थ-गौरव है, इसीलिए कवि शंकर की प्रत्येक कविता में उनका पाण्डित्य और वैदग्ध्य स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। अनुराग-रत्न शंकरजी की कृति का उत्कृष्ट नमूना है।

यदि यह काव्य एक ही प्रधान विषय को लेकर होता अथवा बनाया जाता तो क्या ही कहना था। किन्तु हम कह सकते हैं कि इस ग्रन्थ के विविध विषय-विभूषित होने पर भी उसका उद्देश्य तो एक ही है, और वह है—भारतवर्ष को स्व-स्वरूप का यथार्थ बोध कराकर उसको कर्त्तव्य-प्रबोधन द्वारा उच्च वातावरण में लेजाना। इसीलिये अनुराग-रत्न में कविजी के सब प्रकार के विचार ओत-प्रोत हैं। कविजी ने अनुराग-रत्न क्या बनाया; अपना हृदय बाहर निकालकर जनता के सामने रखदिया है। उसी हृदय से कवि शंकर की कविता की आलोचना अथवा प्रत्यालोचना अथवा समालोचना होनी चाहिये।

कहीं भारतवर्ष की दुर्दशा देखकर वे इतना कटु बोले हैं कि लोग घबरा जाते हैं, कहीं ईश्वर, जीव, प्रकृति, माया, द्वैताद्वैत जैसे गहन विषयों में इतने गहरे चले जाते हैं कि वे उच्चकोटि के दर्शनकारों की पंक्ति में जा बैठते हैं, और कहते हैं कि मेरी बात को दर्शनों की बातों से मिलाकर तो देखो। कहीं उपनिषत्कारों की रहस्य-विद्या का आनन्द लूटते हुए इतने मग्न हो जाते हैं कि इस नश्वर संसार की ओर झाँकते तक नहीं। कहीं शृङ्गार-रस को भी भक्तिरस में परिणत करके उसे ईश्वर की गोद में बैठा देते हैं। कहीं दयावीर का अवतार बनजाते हैं, कहीं रणवीर होकर वीर बाँकुरे हो जाते हैं, कहीं धर्मवीर होकर शान्ति की पराःकाष्ठा कर देते है, कहीं पाखण्डियों की खबर लेते हैं। कहीं भारतीय समाज का नग्न चित्र दिखलाकर करुणारस का प्रवाह

बहा देते हैं, कहीं तत्त्ववेत्ता की भाँति भारतीय अवनति के कारणों का ऊहापोह करते-करते यथार्थ ज्ञान द्वारा भारतीय आत्मा की आँखों में तीव्र अञ्जन डालने का सफल प्रयत्न करते हैं।

हम केवल उनके अनुराग-रत्न पर ही दृष्टि देकर यह नहीं लिख रहे, अपितु उनके अप्रकाशित काव्य के आधार पर भी लिख रहे हैं। शंकरजी का अप्रकाशित काव्य कब प्रकाश में आवेगा यह तो ईश्वर ही जाने, किन्तु इतना तो हम कह सकते हैं, और निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि यदि वह प्रकाशित हो जाय तो हिन्दी-जगत् में एक प्रकार की उथल-पुथल मच जाय।

धार्मिक क्रान्ति में कवि शङ्कर महर्षि दयानन्द के अनन्य अनुयायी थे, और राजनीति में राष्ट्र-सूत्रधार लोकमान्य तिलक के। शङ्करजी ने सब प्रकार की काव्य-रचना की है—अर्थात् धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक। कहीं आपकी कविता में होली के रंग में विलायती मिस भोरी के साथ ऐसी सुन्दर होली खेली गई है, और उस कविता में ऐसे कूट भाव भरे हैं कि ऐसी भावभरित कविता आजतक किसी ने नहीं लिखी। 'बस भारत का रस भङ्ग हुआ।' इस टाइप की कविताएँ साधारण से साधारण जन के हृदय में पहले तो उद्वेग और फिर उत्साह भरने में समर्थ हैं। 'किसी से कभी न हारूँगा' शीर्षक कविता समाज में उच्छृङ्खल रूप से फिरने वाले और समाज को बदनाम करने वाले मिथ्याभिमानी जनों की ख़ासी पोल है। 'इस अन्धेर

में रे, अन्धी चालाकी चमकालो' इस प्रकार के वस्तुस्थिति-द्योतक पद्य पण्डितम्मन्य दुरभिमानी उपदेशकों की आँखों में अच्छा ख़ासा तेज़ ममीरे का सुरमा हैं। इसी प्रकार यदि प्रत्येक प्रकरण पर दृष्टि डालें तो कवि शंकर के काव्य में उग्र और सौम्य, करुणा और कठोर, दया और वीर इत्यादि परस्पर विरोधी किन्तु एक ही भावों के द्योतक पद्य मिलेंगे।

जब कोई कवि काव्य बनाने बैठता है—'बैठता है' यह प्रयोग प्रतिभाशाली ज़न्मसिद्ध कवियों के सम्बन्ध में नहीं हो सकता, इधर-उधर से बलात् अक्षरों और शब्दों को खींच कर, उनको किसी प्रकार कविता के साँचे में ढालने वाले थर्ड क्लास कवियों पर ही लागू होता है, प्रतिभाशाली कवि तो चलते-फिरते, उठते-बैठते, खाते-पीते, सोते-टहलते हुए कवितामय ही बन जाता है,—तब उसकी दशा, उस समय में, गीतोपवर्णित 'स्थितप्रज्ञ' की-सी हो जाती है।

कवि शङ्कर जन्मसिद्ध प्रतिभाशाली कवि थे। उन्होंने अपनी कविता शुभ्र 'यश' के लिए की, तुच्छ 'अर्थ' के लिए नहीं। उन्होंने अपना काव्य संसार की गन्दगी को मिटाकर उसको स्वच्छ वातावरण में लाने के लिए बनाया। उन्होंने अपने काव्य की रचना आपात कटु किन्तु परिणाम में अमृत रूप धारण करने वाले उपदेशों के निमित्त की। जो केवल 'अर्थ' की दृष्टि से काव्य रचते हैं, वे उनकी अपेक्षा निम्न कोटि के हैं जो 'यश' के लिए रचते हैं। सब से उत्तम कोटि के कवि वे हैं, जो अपना काव्य इस-

लिए बनाते हैं कि संसार का अज्ञान मिटे, उस का दुःख दूर हो, उस को स्वच्छ रूप का ज्ञान हो जाय, संसार में प्रच्छन्न अथवा प्रकट रूप में फैला हुआ 'अशिव' नष्ट हो जाय, राष्ट्र में स्फूर्त्ति आ जाय, मानव-समाज का कल्याण हो जाय और राष्ट्र का दुःख, दैन्य, दारिद्र्य मिटे। 'यश' तो गौण वस्तु है, 'अर्थ' तो उससे भी गौण है, उसको मुख्य उद्देश्य बनाना उच्चतम कोटि के कवियों का काम नहीं। इस दृष्टि से कविजी को हम उच्चतम कोटि में रखते हैं। इसीलिए हमने ऊपर 'यश' शब्द के साथ 'शुभ्र' शब्द जोड़ा है।

कवि शङ्कर के काव्य को हम भवभूति के काव्य की उपमा दे चुके हैं। उनके काव्य को देखकर हम संस्कृत के उद्भट मुरारिकवि की भी उपमा दे सकते और कहते हैं कि 'मुरारे-स्तृतीयः पन्थाः' अर्थात् कविशंकर की कविता 'तीनों लोकों से मथुरा न्यारी' इस कहावत की-सी विचित्र कविता है। हम यह नहीं कह सकते कि उसमें कोई रस शेष रहा हो, यह नहीं कह सकते कि भाव-अनुभाव पूरे न उतरे हों, यह नहीं कह सकते कि मात्रा और वर्ण के विषयमें पूरी-पूरी कड़ाई न दिखाई हो, यह नहीं कह सकते कि उनकी कविता अलङ्कारशास्त्रियों को भी मुग्ध करने वाले अलङ्कारों द्वारा सुभूषित अथवा विभूषित नहीं हुई है। इसमें क्या नहीं है और क्या है इसकी विवेचना कविता-कामिनी-कान्त शंकरजी निर्मित काव्योद्यान अथवा उपवन में स्वच्छन्द विचरने वाले कविता-कानन-केसरी

स्व० पं० पद्मसिंह शर्मा जैसे काव्यमर्मज्ञ ही कर सकेंगे—हमारे जैसे 'शुष्क वृत्त' यथारीति अधिकृतवाणी से कुछ भी नहीं कह सकते। हाँ हमने—

"पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति"

रूप वेदकाव्य का कुछ रसपान किया है; इसीलिए कुछ वैदिक और कुछ लौकिक दृष्टि से हम थोड़ा-बहुत लिख सके हैं। कवि शंकर अनन्त आकाश में अनन्त की ओर स्वच्छन्दता पूर्वक उड़ने वाले प्रतिभाशाली कवि थे। वे क्रान्तदर्शी होने के कारण भूमिपर ही बैठे-बैठे लोक-लोकान्तर को भेदन कर उन के भेद जानने की शक्ति रखते थे।

हम कविजी के परम भक्तों में से एक हैं, इसीलिए यथार्थ गुणदोष निरूपण कर रहे हैं। "कवि शंकर तू यदि शंकर है, फिर क्यों विपरीत भयङ्कर है" इस कविता में परमात्मा शं स्वरूप 'शंकर' में भी भयङ्करता का आरोप करने वाले कवि शंकर-अलक्षित अथवा अज्ञात रूप में, अपनी 'शंकरता' और उसमें भी अनुप्रविष्ट 'भयङ्करता' को स्वयं अपनी लेखनी से लिख गये हैं। उनकी शंकरता सौम्यरूप की द्योतक है, और उनकी भयङ्करता उग्ररूप की व्यञ्जक। शङ्करजी का हृदय पुष्प से भी कोमल और वज्र से भी अधिक कठोर था, इसलिए उनकी कविता में दोनों रंग देखने को मिलते हैं। आर्यजगत् में तो उन जैसे वे अकेले ही थे, पर राष्ट्रभाषा-जगत् में भी वे अद्वितीय थे। शङ्करजी में कोई कमी थी तो वह यह कि उनका आर्य समाजके शुष्क वाता-

वरण से सम्पर्क होगया था, नहीं तो वे पूरे राष्ट्र-कवि थे। इसी लिए कवि शङ्कर को उनके अनुरूप स्थान पर नहीं बैठाया जा सका, तथापि कवि शंकर सर्वोच्च आसनपर बराबर विद्यमान रहेंगे। हमको रह-रह कर केवल यही दुःख है कि सम्पूर्ण आर्यजगत् में कविशंकर एकमात्र प्रतिभाशाली कवि-सम्राट् हुए और आर्यसमाज ने उनके जीवन-काल में भी यथार्थ, रूप से उनकी पूजा नहीं की। फिर निधनोत्तर आजतक उनका कोई समुचित स्मारक भी नहीं बनाया। परन्तु इससे क्या, महाकवि स्वर्गीय शङ्कर की कविता स्वयं उनको अमर बनायेगी। वह किसी दूसरे की अपेक्षा अथवा सहायता के भरोसे थोड़े ही बैठी है।

× × × ×

महाकवि शंकर हरदुआगञ्ज में अपनी शंकर-सदन नामक कुटिया में भी प्रासाद का अनुभव करते रहते थे। महाभारत में धर्म के जो आठ प्रकार के मार्ग बतलाये हैं; उनमें 'अलोभ' मुख्य मार्ग है, और महान् पुरुषों का मार्ग है। कवि शंकर स्वभाव से ही निर्लोभ थे। एक वार एक महाराजा कविजी को पाँच सहस्र रुपये की थैली भेंट करनेकी इच्छा कर रहे थे, केवल वे चाहते थे कि कविजी अपनी कविताओं में से आर्यसामाजिक गन्ध को निकालकर स्वसंग्रह को प्रकाशित करें; किन्तु—

"त्वं राजा वयमप्युपासितगुरुप्रज्ञाभिमानोन्नताः।"

की चलती-फिरती मूर्त्ति इस बात को कब मानती; उसने ता तुरन्त स्पष्ट शब्दों में निषेधपरक उत्तर दिया। एक बार दूसरे एक राजा ने संदेश भेजा कि यदि यह 'अनुराग-रत्न' उनको समर्पण किया जायगा तो वे प्रकाशन का समस्त व्यय देंगे तथा ऊपर से और भी धन भेंट करेंगे, किन्तु अक्खड़ कविराज, कविता-कामिनी-कान्त कब मानते! कविता का विकास, प्रतिभा का विकास दरिद्र की कुटिया में हुआ करता है; सो कवि शंकर की क्रान्तिकारिणी कविता का विकास अथवा उनकी उद्भट प्रतिभा का विकास अर्थदरिद्र (धीदरिद्र नहीं) शंकर-सदन नामक कुटिया में हुआ।

"जीवत्यर्थ दरिद्रोऽपि धीदरिद्रो न जीवति"

संसार में अर्थदरिद्र पुरुष, राष्ट्र, समुदाय किसी प्रकार जीवित रह सकते हैं पर धीदरिद्र व्यक्ति, समुदाय अथवा राष्ट्र जीवित नहीं रह सकते।

कवि शंकर हरदुआगंज छोड़कर बाहर बहुत कम निकलते थे। वे वैद्य भी उत्तम कोटि के थे; किन्तु उनकी वैद्यक भी उपकार का साधन बन गयी थी, धनोपार्जन का साधन कभी नहीं बनी। उनके इलाज से सैकड़ों-सहस्रों ग़रीब रोगी लाभ उठाते थे। वे पीयूषपाणि वैद्य थे। चार-चार छह-छह पैसे के नुसख़े लिखकर बड़े-बड़े रोगों को अच्छा कर देते थे। ऐसे मनस्वी कविराज ने कभी दूसरों के सामने प्रतिग्रह के लिये हाथ नहीं फैलाया। अजगर वृत्ति ही रही। ऐसे क्रान्तदर्शी

प्रतिभाशाली, निर्लोभ कवि शंकर के गुण-गान कोई कहाँ तक करे।

मैं तो प्रायः प्रतिवर्ष शङ्करजी से मिलने हरदुआगंज जाता और वहाँ दो-चार दिन ठहरता था। कविजी अपनी तीक्ष्ण बुद्धि के कारण कभी-कभी दर्शन-विषयक ऐसे विचित्र प्रश्न कर बैठते थे कि उत्तर देना भी कठिन हो जाता था। वे अपने काव्य और दर्शनशास्त्र के विचारों में मग्न रहते थे। मैं जब भी जाता तब अन्य विषयों के साथ वे द्वैताद्वैत की चर्चा भी खूब चलाते और प्रतिदिन घण्टों चर्चा रहती थी। एक वार इसी उलझन में मुझे सतरह दिनों के पश्चात् वहाँ से छुटकारा मिला।

शङ्करजी प्रवास-भीरु बड़े थे, उन्हें कहीं जाना-आना बहुत नापसन्द था। बड़ी मुशकिल से दो-चार वार साहित्य-सभाओं में सम्मिलित होने बाहर गये होंगे। प्रायः प्रतिमास दूर-दूर के साहित्य-सेवी सज्जन उनसे मिलने हरदुआगंज आते रहते थे। शङ्करजी अतिथि-सत्कार ग़ज़ब का करते थे, उनका आतिथ्य प्रसिद्ध है। जब लोग विदा होते तो कविजी की आँखों में आँसू छलक आते थे, वे उस समय कण्ठावरोध के कारण कुछ न कह सकते थे—इतनी थी उनमें मोह की मात्रा! उनके इस प्रेम को वही जान सकते हैं, जिन्हें कभी शङ्करजी के आतिथ्य का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

कवि शंकर अपनी कविता बड़े मधुर कण्ठ से पढ़ते थे। एक तो काव्य की मधुरता दूसरे उन के कण्ठ की मधुरिमा इस प्रकार उनकी माधुरीद्वयी का आनन्द वे ही लूट पाते थे जो हर

दुआगंज जाकर उनके पास दो-चार दिन रहते थे। सबसे अधिक आनन्द साहित्य-कानन-केसरी स्व० पण्डित पद्मसिंह शर्मा लूटते थे, क्योंकि 'वक्ता' कवि शंकर और 'श्रोता' पद्मसिंह शर्मा ! एक-एक महीना वहीं इन दोनों की काव्य-चर्चा चलती थी।

शङ्करजी की कविता पर प्रसन्न होकर लोगों ने उन्हें घड़ी, पगड़ी, दुशाले भेजे थे, सोने चाँदी के बीसियों पदक दिये थे, बड़े-बड़े विद्वानों और विद्वत्समाजों ने उन्हें अनेक उपाधियाँ प्रदान की थीं; परन्तु वे उन पर कभी गर्व न करते थे, उनकी चर्चा भी न चलाते थे। शंकरजी विनम्रता और निरभिमान की मूर्ति थे।

हाल ही में हम हरदुआगंज गये थे। वहाँ शंकरजी की बैठक में रामचन्द्र नामक एक प्रज्ञाचक्षु नवयुवक ने कवि शंकर की अनेक अप्रकाशित कविताऐं सुनाईं, तो जी भर आया। यहाँ कविजी बैठते थे, यहाँ दीवार के साथ सिर टेक कर कविता करते थे, यहाँ सोते थे, यहाँ रात को ही उठकर कविता लिखने लगते थे इत्यादि-इत्यादि स्मृतिपुञ्ज जाग्रत् हुआ और मन की गति विचित्र होगई !

उस दिन महाकवि शङ्करजी के पुत्र प्रियवर हरिशंकर शर्मा की पुत्री चिरञ्जीविनी सौभाग्यवती प्रतिभा के विवाह पर कितना विद्वज्जन-संघट्ट हुआ था ! उस अवसर पर एकत्र हुए विद्वानों और कवियों ने 'शंकर-सदन' को प्रणाम किया और कवि-सम्मेलन में महाकवि शंकर को श्रद्धाञ्जलि समर्पित की। इस अवसर पर कवि शंकर के १३ वर्षीय पौत्र चि० दयाशंकर ने अपने

पितामह को उद्देश्य करके "पितामह के प्रति" शीर्षक स्वनिर्मित करुणापूर्ण कविता पढ़ी थी। इस कविता ने तो विबुध-जनमण्डल अथवा कविजन-समूह की नेत्रद्वयी से साक्षात् करुणारस का प्रवाह बहा दिया। वह कविता यह है :—

कविता के कान्त छोड़ करके अशान्त हमें,
पहुँच गये हैं पूर्ण शान्ति मिलती तहाँ।
बीतते ही वयस तिहत्तर पितामह को–
लेगया कुटिल काल खींच करके वहाँ।
'शंकर-सदन' छोड़ शंकर-सदन में जा,
होगये विलीन अन्य कविगण हैं जहाँ।
'अनुराग' का वे 'रत्न' छोड़ गये हैं परन्तु,
उनका सजीव अनुराग अब है कहाँ!

कविजी अपनी दिव्य काव्यमय कृति के कारण आर्यजगत् में प्रसिद्ध होने के पूर्व ही हिन्दी जगत् में खूब प्रसिद्ध होचुके थे। सरस्वती आदि प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में प्रकाशित आपकी कविताएँ बड़े आदर और चावसे पढ़ी जाती थीं। कवि शंङ्कर तपस्वी थे, उग्र थे, वे थोड़ी-सी भूल पर भी बड़े से बड़े को आड़े हाथ ले बैठते थे। इसका कारण उनकी निःस्पृहता था। 'अलोभ' उनका मुख्य गुण था। स्व० प० पद्मसिंहशर्मा शङ्कर-कव्य के मार्मिक समालोचक और विवेचक थे। आचार्य श्री पं० महावीरप्रसाद द्विवेदीजी भी कवि शंङ्कर की उत्तम-से-उत्तम कृतियों को सरस्वती द्वारा काव्यरसिकों तक पहुँचाते रहे।

स्पष्ट बात कहने में शंकरजी ने बड़े-बड़े राजे-महाराजे, रईसों, विद्वानों, कवियों, सम्पादकों, पत्रकारों, आर्यसमाज के पंडितम्मन्य धुरीणों अथवा अहम्मन्य अग्रेसरों की भी परवा नहीं की। कवि शंकर विशेष परमाणुओं से बनेहुए व्यक्ति थे। वे खास सिद्धान्त के व्यक्ति थे, कविशंकर दम्भ, पाखंड, अत्याचार, अनाचार क्षणभर के लिए भी नहीं सह सकते थे—चाहे उस प्रकार के दम्भ, पाखंड, अत्याचार अनाचार स्वजनों के हों अथवा परजनों के। चाहे वे लोग बड़े हों अथवा कोई हों। कवि शंकर को जो लोग इस दृष्टि से देखेंगे वे उनकी महत्ता, स्पष्टवादिता, असहनशीलता का समादर ही करेंगे, और असली समादर करेंगे उनकी दुर्दमनीय तीक्ष्ण प्रतिभाशालिता का जो कि कवियों की जन्मसिद्ध बपौती है। कवि शंकर व्यक्तिगत जीवन में अत्यन्त विनोदी व्यक्ति थे —प्रत्युत्पन्नमति और प्रसंगावधानी धैर्यशालीपुरुष थे।

कविजी आशु कवि भी थे और आशुतोष महादेव की तरह थोड़ी देर में प्रसन्न भी हो जाते थे। अप्रसन्न हो जाते तो चुप रहते। थोड़ी देर मौन रहकर फिर बोलने लगते। वे हृदय के शुद्ध, वाह्याभ्यन्तरके शुद्ध, व्यवहार के शुद्ध महान् पुरुष थे। करुणारस की चलती-फिरती मूर्ति थे, दयावीर थे। क्षुद्र से क्षुद्र प्राणियों की रक्षा और दरिद्रों की सहायता करने में अपने आपको कृतार्थ समझते थे। ग़रीब रोगी की दवा-दारु बड़ी दक्षता से करते थे। वहमी भी परले सिरे के थे। ज़रा उनको वहम

हुआ कि घोड़ा ठीक नहीं, झट सवारी से उतर पड़ते थे।

कविशंकर जिस बरामदे में बैठकर कविता करते अथवा गुनगुनाते रहते थे वहाँ वे अपना सिर दीवार से लगाये रहते थे। उससे दीवार में एक अच्छा-सा गढ़ा पड़ गया था। वे तकिया नहीं लगाते थे। जब आराम करना होता था तब वहीं उसी जगह लेटते थे और उसी गढ़े में सिर अटका देते थे—उस प्रसिद्ध ऐतिहासिक गढ़े में कवितादेवी फुरने लग जाती थी। बड़े आदमी की बड़ी बात !

कवि शंकर धार्मिक, सामाजिक, साहित्यिक राजनैतिक और क्रान्तिकारी कवि थे। उनकी धार्मिक कविता ने तो ग़ज़ब किया ही है पर राजनैतिक कविता का भी ऐसा पक्का रङ्ग है कि उसको कोई उतार नहीं सकता !

कवि शंकर के कितने ही शिष्य-प्रशिष्य हैं, कोई गुणी हैं, मानी हैं, कोई कृतज्ञ हैं, कोई कृतघ्न भी। कृतज्ञ गुणी शिष्यों का कर्त्तव्य है कि वे शंकर कवि की जीवनी लिखकर उनकी स्मृति को चिरजीविनी बनाने का प्रयत्न करें।

महाविद्यालय ज्वालापुर, कृष्णजन्माष्टमी, संवत् १९९३	कवि शङ्कर का अशक्त भक्त— नरदेव शास्त्री, वेद तीर्थ
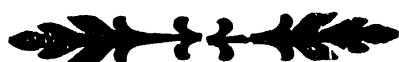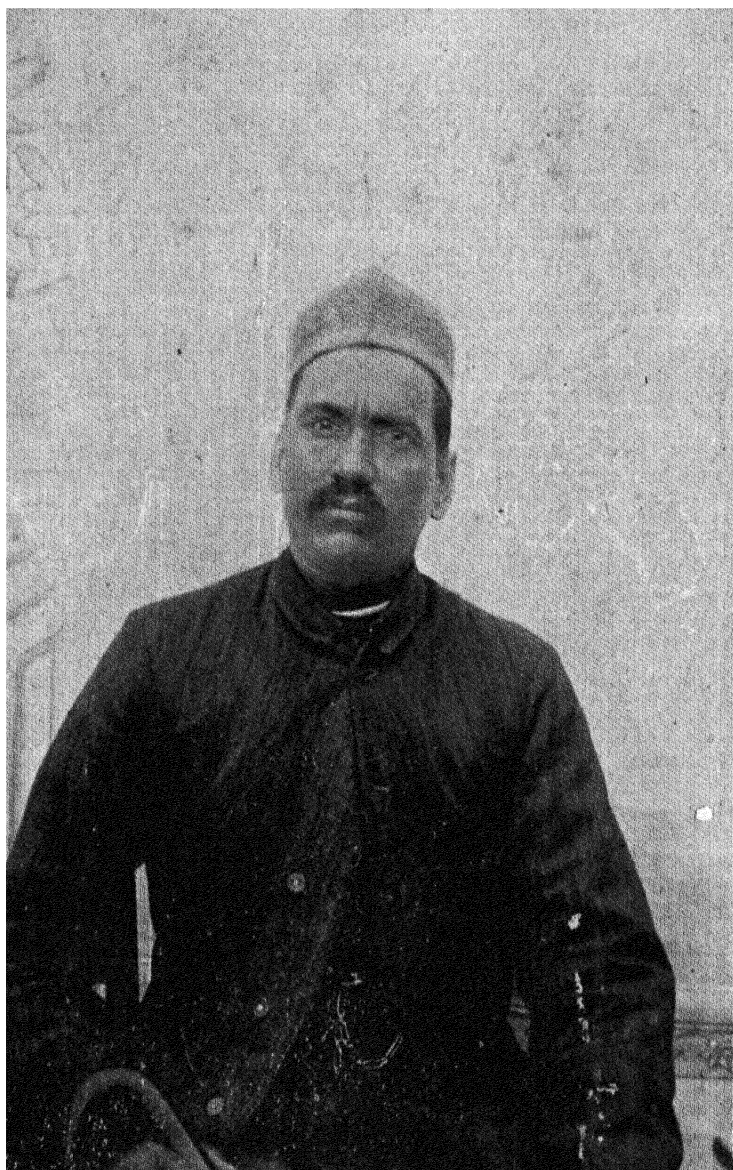
अनुरागरत्न
साहित्य-महारथी
समालोचक-शिरोमणि स्व० श्री पं० पद्मसिंह शर्मा

काव्यमर्मज्ञ

काव्य-कानन-केसरी

साहित्याचार्य

स्व० श्री पं० पद्मसिंह शर्मा

की

विमुक्त आत्मा को

सादर समर्पित।

'शङ्कर'
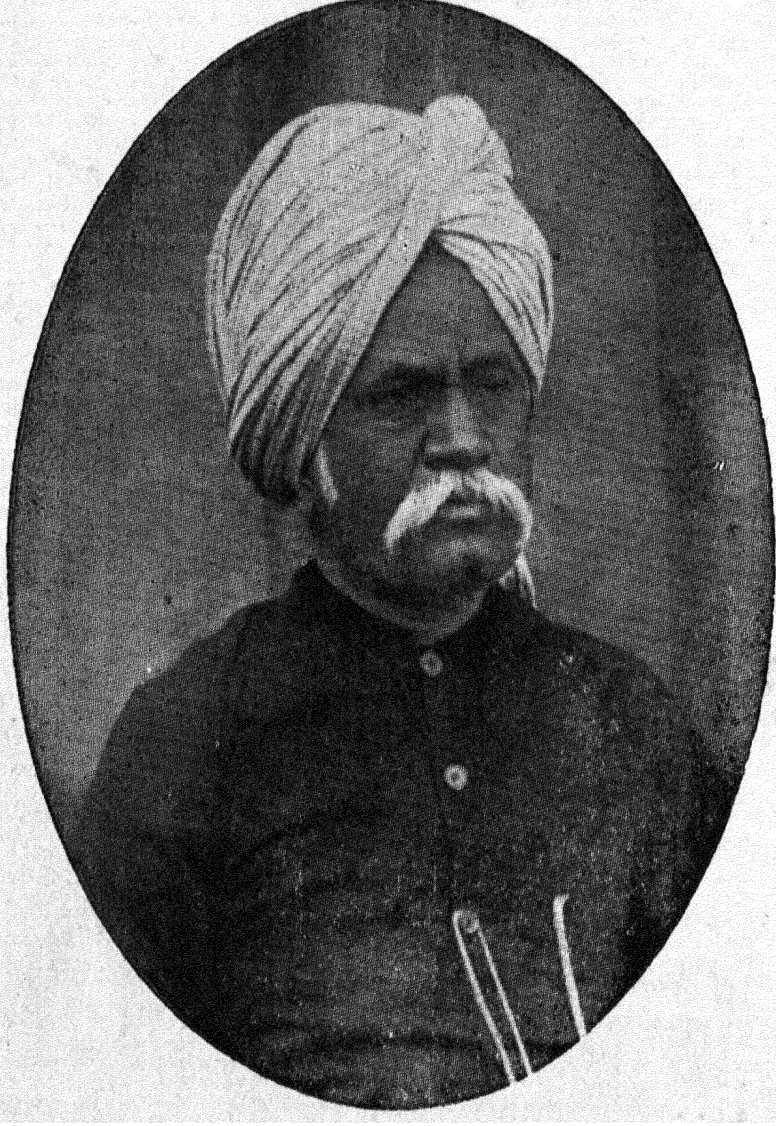
कविता-कामिनी-कान्त

कविराज स्व. श्री पं० नाथूराम शङ्कर शर्मा

जन्म संवत्   मृत्यु-संवत्

१९१६   १९८९

ओ३म्

भूमिकोल्लास

नमःशम्भवाय च मयोभवाय च नमःशंकराय च मयस्कराय च नमःशिवाय च शिवतराय च ॥ य० अ० १६ मं ४१ ॥

शङ्कर को शङ्कर का प्रणाम

(शङ्कर छन्द *)

जो सर्वज्ञ, सुकवि, सुखदाता, विश्व-विलास-विधाता है।
जो नव द्रव्य योग उमगाता, शुद्ध एक रस पाता है॥

---

* (सर्वज्ञ) तत्रनिरतशयं सर्वज्ञ बीजम् ॥ यो० अ० १ पा० १ सू० २५।

(सुकवि) कविर्मनीषी परिभूःस्वयंभूः ॥ य० अ० ४० मन्त्रांश ८-

(कवि) यःकौति शब्दयति सर्वाविद्या स कविरीश्वरः।

"स्वाभाविकी ज्ञान बल क्रियाच"

(श्लोक) नित्यंसर्वगतोह्यात्मा, कूटस्थो दोष वर्जितः,
एकःसभिद्यते शक्त्या, माययानस्वभावतः ॥

(मंत्र) यस्मिन्सर्वाणिभूतान्यात्मैवा भूद्विजानतः।
तत्रको मोहः कः शोक-एकत्वमनुपश्यतः। य०अ०४०मं०७

(नवद्रव्य) पृथिव्यापस्तेजोवायुराकाशं कालोदिगात्मामनइतिद्रव्याणि॥
वै० अ० १ आ० १ सू० ५-

क्रियागुणवत्समवायिकारणमितिद्रव्यलक्षणम् ॥
वै० अ० १ सू० १५

(शंकर) यः शङ्कल्याणं सुखं करोति स शंकरः।

अपनाते हैं जिस अक्षर को, क्षणिक रूप क्षर नाम।
शंकर! उस प्यारे शंकर को, कर कर जोड़ प्रणाम॥

———

तल्लीनोद्गार।

शंकर स्वामी से मिला, बिछुड़ा शंकर दास।
भानु प्रभासाद्वैत का, भिन्न-अभिन्न-विलास॥

———

गूढ़ार्थ गर्भोक्ति

(षट्पदी छन्द ❀)

शंकर सबका ईश, इष्ट मंगल दाता है।
शंकर के गुण गाय, गाय जी सुख पाता है॥
शंकर कर कल्याण, योगियों को अपनावे।
शंकर गौरव-रूप, राम-से जन जन्मावे॥
श्री शंकर की प्यारी उमा +, रवि-सी, हरि-सी भासती।
रे शंकर! विद्या की वही, मूल शारदा भगवती॥

❀ यह पद्य शंकर-परमात्मा का कीर्त्तन करता हुआ शंकर (ग्रन्थकार) के अविद्यमान और विद्यमान कौटुम्बिकों के नामों को भी यथाक्रम प्रकट करता है।

+ "उमाहैमवतीम्" केनोपनिषद् चतुर्थखण्ड।

श्री० स्वामी शंकराचार्यजीने उमा का अर्थ विद्या तथा हैमवती का भाव शोभावाली लिखा है।

प्रार्थना-पञ्चक

शङ्कर स्वामी और है, सेवक शङ्कर और।
भेद-भावना में भरे, नाम रूप सब ठौर॥

(सगणात्मक सवैया)

(१)

द्विज वेद पढ़ें सुविचार बढ़ें,
बल पाय चढ़ें, सब ऊपर को।
अविरुद्ध रहें, ऋजु पन्थ गहें,
परिवार कहें, वसुधा-भर को॥
ध्रुव धर्म धरें, पर दुःख हरें,
तन त्याग तरें, भव-सागर को।
दिन फेर पिता, वरदे सविता,
करदे कविता, कवि शंकर को॥

(२)

विदुषी उपजें, क्षमता न तजें,
व्रत धार भजें, सुकृती वर को।
सधवा सुधरें, विधवा उबरें,
सकलंक करें, न किसी घर को॥
दुहिता न बिकें, कुटनी न टिकें,
कुलबोर छिकें, तरसें दर को।
दिन फेर पिता, वरदे सविता,
करदे कविता, कवि शंकर को॥

(३)

नृपनीति जगे, न अनीति ठगे,

भ्रम-भूत लगे, न प्रजाधर को।

झगड़े न मचें, खल-खर्ब लचें,

मद से न रचें, भट संगर को॥

सुरभी न कटें, न अनाज घटें,

सुख भोग डटें, डपटें डर को।

दिन फेर पिता, वरदे सविता,

करदे कविता, कवि शंकर को॥

(४)

महिमा उमड़े, लघुता न लड़े,

जड़ता जकड़े, न चराचर को।

शठता सटके मुदिता मटके,

प्रतिभा भटके, न समादर को॥

विकसे विमला, शुभ कर्म-फला,

पकड़े कमला, श्रम के कर को।

दिन फेर पिता, वरदे सविता,

करदे कविता, कवि शंकर को॥

(५)

मत-जाल जलें, छलिया न छलें,

कुल फूल फलें, तज मत्सर को।

अघ दम्भ दबें, न प्रपञ्च फबें,

गुरु मान नवें, न निरक्षर को॥

सुमरें जप से, निरखें तप से,

सुरपादप-से, तुझ अक्षर को।

दिन फेर पिता, वरदे सविता,

करदे कविता, कवि शंकर को ॥

———

आनन्द-नाद

तू मुझसे न्यारा नहीं, मैं तुझसे कब दूर।

तेरी महिमा से मिली, मेरी मति भरपूर ॥

(कलाधरात्मक मिलिन्दपाद)

कवि शंकर विश्व के विधाता,

मुद मङ्गल मूल मुक्तिदाता।

प्रणवादि पवित्र नामधारी,

भवसागर-सेतु शोक-हारी।

प्रभु पाय प्रकाश-पुंज तेरा, चमके अनुरागरत्न मेरा।

जिसके उपदेश में दया है,

अति आ धन नन्द छागया है।

जिसने न सरस्वती बिसारी,

विचरा बन बाल ब्रह्मचारी।

उसके तप-तेज का बसेरा, चमके अनुरागरत्न मेरा।

मग-दीपक ब्रह्मज्ञान का है,

उपलक्षण धर्म-ध्यान का है।

लघु लक्ष्य परोपकार का है,

प्रण-पक्ष सभा-सुधार का है।

जगदुन्नति पै जमाय डेरा, चमके अनुरागरत्न मेरा।

गुणगायक धर्मराज का है,

अनुभाव सुधी-समाज का है।

शुभचिन्तक सुप्रजेश का है,

उपहार दरिद्र देश का है।

कवि-मण्डल का कहाय चेरा, चमके अनुरागरत्न मेरा।

अगले कवि ऋक्ष-से सही थे,

तुलसी शशि, सूर सूरही थे।

अब केशव की न होड़ होगी,

फिर कौन बने कबीर योगी।

कविता-कृषि-कर्म का कमेरा, चमके अनुरागरत्न मेरा।

रचना रसराज की निहारी,

जयसिंह सखा बना बिहारी।

विधि वीर-विलास की विराजी,

कवि भूषण को मिला शिवाजी।

कर मेल कुबेर से घनेरा, चमके अनुरागरत्न मेरा।

सबको वह देश-भक्त भाया,

जिसने पद भारतेन्दु पाया।

रच ग्रन्थ घने सुधार बोली,

कविता पर प्रेम-गाँठ खोली।

हरिचन्द हटा रहे अँधेरा, चमके अनुरागरत्न मेरा।

शुभ शब्द--प्रयोग पद्य प्यारे,
रच पिङ्गल-रीति से सुधारे।
रस, भूषण, भावसे भरे हैं,
परखें पटु पारखी खरे हैं।
मन के सुविचार का चितेरा, चमके अनुरागरत्न मेरा।

कवि कोविद ध्यान में धरेंगे,
सदभिज्ञ विवेचना करेंगे।
सब साधन सत्य के गहेंगे,
गुण-दूषण न्याय से कहेंगे।
परखे पर तर्क का तरेरा, चमके अनुरागरत्न मेरा।

सब धान समान तोल डाले,
समझे पिक और काक काले।
समता मणि--काच में बखाने,
अनभिज्ञ भला-बुरा न जाने।
न बने उस ऊँट का कटेरा, चमके अनुरागरत्न मेरा।

भजनीक, सुबोध, भक्त गावें,
न कपोल कुरागिया बजावें।
रचना पर प्रीति हो बड़ों की,
गरजे न गढ़न्त तुक्कड़ों की।
गरिमा न गिरा सके गमेरा, चमके अनुरागरत्न मेरा।

पर पद्य प्रसंग काटते हैं,
यश का रस चोर चाटते हैं।

छलिया छल से न छूटते हैं,

गढ़ ग्रन्थ लबार लूटते हैं।

लगजाय न लालची लुटेरा, चमके अनुरागरत्न मेरा।

चमगिद्दड़ चोर डोलते हैं,

शठ स्यार उलूक बोलते हैं।

बिन भानु-प्रदीप, चन्द्र-तारे,

तम घोर घटा सके न सारे।

रजनी कटजाय हो सबेरा, चमके अनुरागरत्न मेरा।

बल, पौरुष का प्रकाश होगा,

श्रम-साहस का विकाश होगा।

गुरुता गुरु-ज्ञान की बढ़ेगी,

लघुता अभिमान की कढ़ेगी।

प्रभु ने अनुकूल काल फेरा, चमके अनुरागरत्न मेरा।

तन दृश्य जरा अशक्ति का है,

मन भाजन जाति-भक्ति का है।

धनराशि न पास दान को है,

मृदुभाषण मात्र मान को है।

यश उज्ज्वल का उघार घेरा, चमके अनुरागरत्न मेरा।

अनुभूत विवेक-यंत्र डाला,

मथ सत्य-समुद्र को निकाला।

वर वर्ण-सुवर्ण में जड़ा है,

हित के हिय-हार में पड़ा है।

बतलाय न लाख का लखेरा, चमके अनुरागरत्न मेरा।

———

सरस्वती की महावीरता

(सोरठा)

जिसके आनन चार*, उत्तम अन्तःकरण हैं ।
दुहिता परमोदार, उस विरञ्चि की भारती ॥

[भुजङ्ग प्रयात]

महावीरता भारती धारती है ।
प्रमादी महा मोह को मारती है ॥
बड़ों के बड़े कामकी है लड़ाई ।
मिली थी, मिली है, मिलेगी बड़ाई ॥

(घनाक्षरी कवित्त)

(१)

वैदिक विलास करे ज्ञानागार कानन में,
धर्म-राजहंस पै समोद चढ़ती रहे ।
फेर-फेर दिव्य गुण-मालिका प्रवीणता की,
पुस्तक पै मूलमंत्र पाठ पढ़ती रहे ॥
योग-बल वीणा के विचार व्रत-तार बाजें,
अज्झल विशिष्ट वाणी घोर कढ़ती रहे ।
शंकर विवेक प्राणवल्लभा सरस्वती में,
मेधा महावीरता अमित बढ़ती रहे ॥

---

* उत्तम अन्तःकरण = सत्यसम्पन्न मन १, ज्ञानविशिष्टाबुद्धि २, योग-युक्त चित्त ३, आत्मप्रतिष्ठापूर्ण अहंकार ४ ।

(२)

बाल ब्रह्मचारी के विशद भाल-मन्दिर में,
आसन जमाय ज्ञान-दीपक जगाती है ।
सत्य और झूठ की विवेचना प्रचंड शिखा,
कालिमा कुयश की कपट पै लगाती है ॥
प्रेमपालपौरुष प्रकाश की छबीली छटा,
बधिक विरोध अन्धकार को भगाती है ।
शंकर सचेत महावीरता सरस्वती की,
जीव की ठसक ठगियों से न ठगाती है ॥

(३)

आपस के मेल की बड़ाई भरपेट करे,
सामाजिक शक्ति-सुधा पान करती रहे ।
भूले न प्रमाण को तजे न तर्कसाधन को,
युक्ति-चातुरी के गुण-गान करती रहे ॥
मान करे वाद, प्रतिवाद, कोटि कल्पना का,
जाल-जल्पना का अपमान करती रहे ।
शंकर निदान महावीरता सरस्वती की,
मारालिक न्याय सदा दान करती रहे ॥

४

प्रामादिक पोच पक्षपात के न पास रहे,
सत्य को असत्य से अशुद्ध करती नहीं ।
औपाधिक धारणा न सिद्ध के समीप टिके,
स्वाभाविक चिन्तन में भूल भरती नहीं ॥

न्याय की कठोर काट-छाँट को समोद सुने,
कोरे कूटवाद पर कान धरती नहीं ।
शंकर अशंक महावीरता सरस्वती की,
उद्धत अजान जालियों से डरती नहीं ॥

५

मन्द मत-तारों की कुवासना दमक सारी,
वैदिक विवेक तप तेज में बिलाती है ।
ध्येय ध्यान, धारणादि, साधना-सरोवर में,
सामाधिक संयम-सरोरुह खिलाती है ॥
शंकर से पावे सिद्ध चक्र सिद्धि चकई को,
योग दिन में न भेद रजनी मिलाती है ।
ब्रह्म रवि ज्योति महावीरता सरस्वती की,
शुद्ध अधिकारियों को अमृत पिलाती है ॥

६

ब्रह्मा, मनु, अङ्गिरा, वशिष्ठ, व्यास, गोतम-से,
सिद्ध, मुनि-मण्डल के ध्यान में धसी रही ।
राम और कृष्ण के प्रताप की विभूति बनी,
बुद्ध के विशुद्ध ध्रुव लक्ष्य में लसी रही ॥
शंकर के साथ कर एकता कबीरजी की,
सुरत सखी के गास-गास में गसी रही ।
मेंट मत-पन्थ महावीरता सरस्वती की,
देव दयानन्द के वचन में बसी रही ॥

७

मान दान माघ को, महत्त्व दान मम्मट को,
दान कालिदास को सुयश का दिला चुकी।
रामामृत तुलसी को, काव्यसुधा केशव को,
राधिकेश-भक्तिरस सूर को पिला चुकी ॥
मुख्य मान-पान देश-भाषा परिशोधन का,
भारत के इन्दु हरिचन्द को खिलाचुकी।
सुकवि-सभा में महावीरता सरस्वती की,
शंकर-से दीन मतिहीन को मिला चुकी ॥

८

साहसी सुजान को सुपन्थ दिखलाती रहे,
कायर कुचालियों की गैल गहती नहीं।
पुण्यशील भिक्षुक अकिञ्चन को ऊँचा करे,
पापी धनपति को प्रतापी कहती नहीं ॥
उद्यमी उदार के सुकर्म की सुख्याति बने,
आलसी कृपण की बड़ाई सहती नहीं।
शंकर अदम्य महावीरता सरस्वती की,
वञ्चक बनावटी के पास रहती नहीं ॥

९

प्यार भरपूर करे लोकसिद्ध सभ्यता पै,
अधमा असभ्यता पै रोष करती रहे।
ग्रन्थकार लेखक महाशयों की रचना से,
भाषा का विशद बड़ा कोष करती रहे ॥

पक्षपात छोड़ कर सत्य समालोचना से,
लेखों के प्रसिद्ध गुण-दोष करती रहे।
शंकर पवित्र महावीरता सरस्वती की,
प्रेमी पुरुषों का परितोष करती रहे॥

१०

राजभक्ति-भूषिता प्रजा में सुख-भोग भरे,
मंगल महामति महीप का मनाती है।
धीर, धर्मवीर, कर्मवीर, नर नामियों के,
जीवन अनूठे जन-जन को जनाती है॥
बाँध परतंत्रता स्वतंत्रता को समता से,
प्रीति उपजावे भ्रम-भंग न छनाती है।
शंकर उदार महावीरता सरस्वती की,
बानिक सुधार का यथाविधि बनाती है॥

११

दान और भोग से बचाय धन-सम्पदा को,
भागे सब सूम साथ कुछ भी न ले गये।
हिंसक, लबार, राजद्रोही, ठग, जार, ज्वारी,
काल विकराल की कुचाल से दले गये॥
तामसी, बिसासी, शठ, मादकी, प्रमाद-भरे,
लालची मतों के छल-बल से छले गये।
शंकर मिली न महावीरता सरस्वती की,
पातकी बिताय वृथा जीवन चले गये॥

१२

झंझट अड़ाय अड़े झक्कड़ी अजान जूझें,
हारे उपदेशक सुधारक न जीते हैं।
प्रेमामृत बूँद भी मिला न प्रेम-सागर से,
वैर-वारि से न कुविचार घट रीते हैं ॥
काट-काट एकता का शोणित बहाय रहे,
हाय ! न मिलाप-महिमा का रस पीते हैं।
शंकर फली न महावीरता सरस्वती की,
जीवन अधम अनमेल ही में बीते हैं ॥

(सोरठा)

प्रकटे महद्दुद्योत, ब्रह्म विवेक-दिनेश का।
चमकें मत-खद्योत, अब न अविद्या-रातमें ॥

———

कविकुल की मङ्गल-कामना

(षट्पदी छन्द)

सुन्दर शब्द-प्रयोग, मनोहर भाव रसीले।
दूषण-हीन प्रशस्त, पद्य भूषण भड़कीले ॥
प्रिय प्रसादता पाय, मर्म महिमा दरसावे।
रसिकों पर आनन्द, सुधा-सीकर बरसावे ॥
जिन के द्वारा इस भाँति की, परम शुद्ध कविता कढ़े।
उन कविराजों का लोक में, सुयश सदा शंकर बढ़े ॥

———

कवि की सदाशा

रहती है जो शारदा, कविमण्डल के साथ ।
क्या शंकर के शीश पै, वह न धरेगी हाथ ॥

दोहा कविता गाय का, जब दोहा बनजाय ।
तब दोहा साकार हो, तब यश दोहा खाय ॥

सत्कविता के पारखी, प्यारे सुकवि समाज ।
कृपया मेरी ओर भी, देख यथोचित आज ॥

रखता है तू न्याय से, जिस पै हितका हाथ ।
अपनालेता है उसे, फिर न विसारे साथ ॥

जो मेरी मति ने तुझे, कुछ भी किया प्रसन्न ।
तो मन मानेगा उसे, विनय शक्तिसम्पन्न ॥

वर्त्तमान बोली खड़ी, पकड़ी चाल नवीन ।
सारी रचना जाँचले, परख प्रथा प्राचीन ॥

जो सरस्वती आदि में, निकल चुके हैं लेख ।
उनकी भी संशोधना, इस ग्रन्थन में देख ॥

अपनाले साहित्य को, कर भाषा पर प्यार ।
गुण गाले संगीत के, शंकर काव्य सुधार ॥

गद्य, पद्य, चम्पू रचें, सिद्ध सुलेखक लोग ।
उनकी शैली सीखले, कर साहित्य प्रयोग ॥

भारत-भाषा का बढ़े, मान महत्त्व अपार ।
गौरव धारे नागरी, ललित लेख विस्तार ॥
नारद की शिक्षा फले, पाय भरत से मान ।
लोकमित्र संगीत का, उमगे मङ्गल-गान ॥
भव्य कल्पना-शक्ति से, प्रतिभा करे सहाय ।
ब्रह्मानन्द सहोदरा, सत्कविता बनजाय ॥

पद्य-रचना की विशेषता

(शंकर छंद)

अक्षर तुल्य वर्ण वृत्तों में, सहित गणों के आवेंगे ।
मुक्तक छन्द, मात्रिकों में भी, वर्ण बराबर पावेंगे ॥
देखो पद प्रत्येक पद्य के, सकल विधान प्रधान ।
समता से दल, खण्डों में भी, गुरु, लघु गिनो समान ॥

ग्रन्थकार का आत्म-परिचय

(षट्पदी छंद)

पढ़ विद्या भरपूर, न पण्डितराज कहाया ।
बन बलधारी शूर, न यश का स्रोत बहाया ॥
उद्यम को अपनाय, न धनका कोष कमाया ।
जीवन में सदुपाय, न सेवक भाव समाया ॥
हा ! कुछ भी गौरव-कंज का, सौरभ उड़ा न चूक है ।
धिक्कूप हरदुआगंज का, शंकर शठ मण्डूक है ॥

अनुरागरत्न का जन्मकाल

(हरिगीतिका छन्द)

वसु, राग, अङ्क, मयङ्क, संवत, विक्रमीय उदार है।
तिथि पञ्चमी सित पक्ष की मधु, मास मङ्गलवार है॥
मतिमन्द शंकर होचुका अब, ठीक बावन वर्ष का।
"अनुरागरत्न" अमोल पाकर, भोग जीवन हर्ष का॥

आनन्दोद्गार

(कलाधरात्मक राजगीत)

जिस में नटराज ला चुका है,
उस नाटक में नचा चुका है।
जिस के अनुसार खेल खेले,
वह शैशव दूर जा चुका है।
उस यौवन का न खोज पाता,
अपना रस जो चखा चुका है।
तन-पंजर होगया पुराना,
मन मौज नवीन पाचुका है।
अब सीकर सिन्धु में मिलेगा,
शुभ काल समीप आ चुका है।
शिव-शंकर का मिलाप होगा,
दिन अन्तर के विता चुका है।

मङ्गलोद्‌गार

ज्ञानी सिद्ध-समाज में, करले मंगल-गान ।
ज्ञान गायनानन्द का, दे हम सबको दान ॥

गीत

गारे-गारे मंगल बार-बार ।
धर्म धुरीण धीर व्रतधारी, उमग योग-बल धार-धार ।
गारे-गारे मंगल बार-बार ।
ठौर-ठौर अपने ठाकुर को, निरख प्रेम-निधि वार-वार !
गारे-गारे मंगल बार-बार ।
तर भवसिन्धु आप औरों में, अभय भाव भर तार-तार ।
गारे-गारे मंगल बार-बार ।
माँग दयालु देव शंकर से, चतुर ! चारु फल चार-चार ।
गारे-गारे मंगल बार-बार ।

(दोहा)

बाँच लीजिये भूमिका, भाव नहीं कुछ और ।
जागे जाति-सुधार की, नींव जमें सब ठौर ॥

अनुरागरत्न

मंगलोद्भास

विश्वानिदेव सवितर्दुरितानि परासुव ।
यद्भद्रं तन्न आसुव ॥ य० अ० ३ मं० ३ ॥
सर्वात्मा सच्चिदानन्दोऽनन्तो योन्यायकृच्छुचिः ।
भूयात्तमां सहायो नो, दयालुः सर्वशक्तिमान् ॥

ओमुत्कर्ष

शंकर स्वामी के सुने, शंकर नाम अनेक ।
मुख्य सर्वतोभद्र है, मंगलमय ओमेक ॥

(शंकर छन्द)

एक इसी को अपना साथी, अर्थ अशेष बताते हैं ।
उच्चारण के साधन सारे, रसना रोक जताते हैं ॥
ऐसा उत्तम शब्द कोष में, मिला न अब तक अन्य ।
ओमुद्भूत नाम शंकर का, सकल कलाधर धन्य ॥
मुख्य नाम है ईश का, ओमनुभूत प्रसिद्ध ।
योगी जपते हैं इसे, सुनते हैं सब सिद्ध ॥

ओमाराधन

ओमक्षर के अर्थ का, धरले ध्यान पवित्र ।
बोध बना देगा तुझे, अमृत मित्र का मित्र ॥

(ध्रुवपद ❀)

ओमनेक बार बोल,
प्रेम के प्रयोगी ।
है यही अनादि नाद, निर्विकल्प निर्विवाद,
भूलते न पूज्यपाद, वीतराग योगी ।
ओ० बा० बो० प्रे० प्रयोगी ।
वेद को प्रमाण मान, अर्थ-योजना बखान,
गारहे गुणी सुजान, साधु स्वर्ग-भोगी ।
ओ० बा० बो० प्रे० प्रयोगी ।
ध्यान में धरें विरक्त, भाव से भजें सुभक्त,
त्यागते अघी अशक्त, पोच पाप-रोगी ।
ओ० बा० बो० प्रे० प्रयोगी ।
शंकरादि नित्य नाम, जो जपे विसार काम,
तो बने विवेक-धाम, मुक्ति क्यों न होगी ।
ओ० बा० बो० प्रे० प्रयोगी ।

———

❀ यह गीत ब्रह्मदण्डकवृत्त से रचा गया है, इसकी टेक उक्त वृत्त के एक चरण का परार्द्ध मात्र है, आगे के चरण उक्त दण्डक के पूरे चरण स्वरूप हैं ।

ओमर्थज्ञान

ओमक्षर अखिलाधार,
जिसने जान लिया ।
एक, अखण्ड, अकाय, असङ्गी, अद्वितीय, अविकार,
व्यापक, ब्रह्म, विशुद्ध विधाता, विश्व, विश्व भरतार,
को पहँचान लिया ।
ओ० अ० जि० जानलिया ॥
भूतनाथ, भुवनेश, स्वयंभू, अभय, भावभण्डार,
नित्य, निरञ्जन, न्यायनियन्ता, निर्गुण, निगमागार,
मनु को मान लिया ।
ओ० अ० जि० जान लिया ॥
करुणाकन्द, कृपालु, अकर्त्ता, कर्महीन करतार,
परमानन्द-पयोधि, प्रतापी, पूरण परमोदार,
से सुख-दान लिया ।
ओ० अ० जि० जान लिया ॥
सत्य सनातन, श्रीशंकर को, समझा सबका सार,
अपना जीवन-बेड़ा उसने, भवसागर से पार,
करना ठान लिया ।
ओ० अ० जि० जान लिया ॥

दोहा

गूँद ज्ञान के तार में, गुरिया गुरु के नाम ।
इस माला के मेल से, भजन करो निष्काम ॥

भजन-माला

भज भगवान के हैं,
मंगल-मूल नाम ये सारे ।

ओमद्वैत, अनादि, अजन्मा, ईश, असीम, असंग ।
एक, अखण्ड, अर्यमा, अत्ता, अखिलाधार, अनंग ॥
भ० भ० के० मं० मू० नाम ये सारे ॥

सत्य सच्चिदानन्द, स्वयंभू, सद्गुरु ज्ञान गणेश ।
सिद्धोपास्य, सनातन, स्वामी, मायिक, मुक्त, महेश ॥
भ० भ० के० मं० मू० नाम ये सारे ॥

विश्वविलासी, विश्वविधाता, धाता, पुरुष, पवित्र ।
माता, पिता, पितामह, त्राता, बन्धु, सहायक, मित्र ॥
भ० भ० के० मं० मू० नाम ये सारे ॥

विश्वनाथ, विश्वम्भर, ब्रह्मा, विष्णु, विराट्, विशुद्ध ।
वरुण, विश्वकर्मा, विज्ञानी, विश्व, बृहस्पति, बुद्ध ॥
भ० भ० के० मं० मू० नाम ये सारे ॥

शेष, सुपर्ण, शुक्र, श्रीस्रष्टा, सविता, शिव, सर्वज्ञ ।
पूषा, प्राण, पुरोहित, होता, इन्द्र, देव, यम, यज्ञ ॥
भ० भ० के० मं० मू० नाम ये सारे ॥

अग्नि, वायु, आकाश, अङ्गिरा, पृथिवी, जल, आदित्य ।
न्याय-निधान, नीति-निर्माता, निर्मल, निर्गुण, नित्य ॥
भ० भ० के० मं० मू० नाम ये सारे ॥

ब्रह्म, वेद-वक्ता, अविनाशी, दिव्य, अनामय, अन्न ।
धर्मराज, मनु, विद्याधारी, सद्गुण-गण-सम्पन्न ॥

भ० भ० के० मं० मू० नाम ये सारे ॥
सर्वशक्तिशाली, सुखदाता, संसृति-सागर-सेतु ।
काल, रुद्र, कालानल, कर्त्ता, राहु, चन्द्र, बुध, केतु ॥
भ० भ० के० मं० मू० नाम ये सारे ॥
गरुत्मान, नारायण, लक्ष्मी, कवि, कूटस्थ, कुबेर ।
महादेव, देवी, सरस्वती, तेज, उरुक्रम, फेर ॥
भ० भ० के० मं० मू० नाम ये सारे ॥
भक्तो ! नाम सुने शंकर के, अटल एकसौ आठ ।
अर्थ विचारो इस माला के, कर से घिसो न काठ ॥
भ० भ० के० मं० मू० नाम ये सारे ॥

ईश्वर-प्रणिधान-पंचक

(हरिगीतिका छन्द)

(१)

अज, अद्वितीय, अखण्ड, अक्षर, अर्यमा, अविकार है ।
अभिराम, अव्याहत, अगोचर, अग्नि, अखिलाधार है ॥
मनु, मुक्त, मङ्गलमूल, मायिक, मानहीन, महेश है ।
करतार ! तारक है तुही यह, वेद का उपदेश है ॥

(२)

वसु, विष्णु, ब्रह्मा, बुध, बृहस्पति, विश्वव्यापक, बुद्ध है ।
वरुणेन्द्र, वायु, वरिष्ठ, विश्रुत, वन्दनीय, विशुद्ध है ॥

गुणहीन, गुरु, विज्ञान-सागर, ज्ञान-गम्य, गणेश है ।
करतार ! तारक है तुही यह, वेद का उपदेश है ॥

(३)

निरुपाधि नारायण, निरञ्जन, निर्भयामृत–नित्य है ।
अत्ता, अनादि, अनन्त, अनुपम, अन्न, जल, आदित्य है ॥
परिभू, पुरोहित, प्राण, प्रेरक, प्राज्ञ-पूज्य-प्रजेश है ।
करतार ! तारक है तुही यह, वेद का उपदेश है ॥

(४)

कवि, काल, कालानल, कृपाकर, केतु, करुणा-कन्द है ।
सुखधाम, सत्य, सुपर्ण, सच्छिव, सर्व-प्रिय, स्वच्छन्द है ॥
भगवान्, भावुक-भक्त-वत्सल, भू, विभू भुवनेश है ।
करतार ! तारक है तुही यह, वेद का उपदेश है ॥

(५)

अव्यक्त, अकल, अकाय, अच्युत, अङ्गिरा, अविशेष है ।
श्रीमच्छुभाशुभशून्य, शंकर, शुक्र, शासक, शेष है ॥
जगदन्त-जीवन-जन्मकारण, जातवेद, जनेश है ।
करतार ! तारक है तुही यह, वेद का उपदेश है ॥

दोहा

ज्ञान-गम्य सर्वज्ञ है, शंकर तुही स्वतंत्र ।
तेरे ही उपदेश हैं, विश्रुत वैदिक मंत्र ॥

शंकर-कीर्त्तन

(रुचिरा छन्द)

(१)

हे शंकर कूटस्थ अकर्त्ता, तू अजरामर अत्ता है ।
तेरी परम शुद्ध सत्ता की, सीमारहित महत्ता है ॥
जड़ से और जीव से न्यारा, जिसने तुझको जाना है ।
उस योगीश महाभागी ने, पकड़ा ठीक ठिकाना है ॥

(२)

हे अद्वैत, अनादि अजन्मा, तू हम सबका स्वामी है ।
सर्वाधार, विशुद्ध, विधाता, अविचल अन्तर्यामी है ॥
भक्ति-भावना की ध्रुवता से, जो तुझको अपनाता है ।
वह विद्वान्, विवेकी, योगी, मनमाना सुख पाता है ॥

(३)

हे आदित्य देव अविनाशी, तू करतार हमारा है ।
तेजोराशि अखण्ड प्रतापी, सब का पालन हारा है ॥
जो धर ध्यान धारणा तेरी, प्रेम-भाव में भरता है ।
तू उसके मस्तिष्क-कोष में, ज्ञान-उजाला करता है ॥

(४)

हे निर्लेप निरंजन, प्यारे, तू सब कहीं न पाता है ।
सब में पाता है, पर सारा, सब में नहीं समाता है ॥
जो संसार-रूप-रचना में, ब्रह्म-भावना रखता है ।
वह तेरे निर्भेद भाव का, पूरा स्वाद न चखता है ॥

(५)

हे भूतेश महा बलधारी, तू सब संकट-हारी है।
तेरी मङ्गलमूल दया का, जीव-यूथ अधिकारी है॥
धर्म धार जो प्राणी तुझ से, पूरी लगन लगाता है।
विद्या, बल देता है उसको, भ्रम का भूत भगाता है॥

(६)

हे आनन्द महा सुखदाता, तू त्रिभुवन का त्राता है।
मुक्तक, माता-पिता हमारा, मित्र, सहायक, भ्राता है॥
जो सब छोड़ एक तेरा ही, नाम निरन्तर लेता है।
तू उस प्रेमाधार पुत्र को, मन्त्र-बोध, बल देता है॥

(७)

हे बुध, जातवेद, विज्ञानी, तू वैदिक बलदाता है।
कर्मोपासन, ज्ञान इन्हीं से, जीवन जीव बिताता है॥
जो समीपता पाकर तेरी, जो कुछ जी में भरता है।
अर्थ समझ लेता है जैसा, वह वैसा ही करता है॥

(८)

हे करुणा—सागर के स्वामी, तू तारक पद पाता है।
अपने प्रिय भक्तों का बेड़ा, पल में पार लगाता है॥
तेरी पारहीन प्रभुता से, जिस का जी भरजाता है।
वह योगी संसार-सिन्धु को, मोह त्याग तर जाता है॥

(९)

हे सर्वज्ञ, सुबोध विहारी, तू अनुपम विज्ञानी है।
तेरी महिमा गुरुलोगों ने, वचनातीत बखानी है॥

जिसने तू जाना-जीवन को, संयम-रस में साना है।
उस संन्यासी ने अपने को, सिद्ध-मनोरथ माना है॥

(१०)

हे सुविश्वकर्मा, शिव, स्रष्टा, तू कब ठाली रहता है।
निर्विराम तेरी रचना का, स्रोत सदा से बहता है॥
जो आलस्य विसार विवेकी, तेरे घाट उतरता है।
उस उद्योग-शील के द्वारा, सारा देश सुधरता है॥

(११)

हे निर्दोष प्रजेश, प्रजा को, तू उपजाय बढ़ाता है।
तेरे नैतिक दण्ड न्याय से, जीव कर्म-फल पाता है॥
पक्षपात को छोड़ पिता जो, राज-धर्म को धरता है।
वह सम्राट् सुधी देशों का, सच्चा शासन करता है॥

(१२)

हे जगदीश, लोक-लीला के, तू सब दृश्य दिखाता है।
जिनके द्वारा हमलोगों को, शिल्प अनेक सिखाता है॥
जिसको नैसर्गिक शिक्षा का, पूरा अनुभव होता है।
वह अपने आविष्कारों से, बीज सुयश के बोता है॥

(१३)

हे प्रभु यज्ञ, देव, आनन्दी, तू मंगलमय होता है।
तप्त भानु-किरणों से तेरा, होम निरन्तर होता है॥
जो जन तेरी भाँति अग्नि में, हित से आहुति देता है।
वह सारे भौतिक देवों से, दिव्य सुधा-रस लेता है॥

(१४)

हे कालानल, काल, अर्यमा, तू यम, रुद्र, कहाता है।
धर्म-हीन दुष्टों के दल में, दुःख-प्रवाह बहाता है॥
जो तेरी वैदिक पद्धति से, टेढ़ा-तिरछा चलता है।
वह पापी, उद्दण्ड, प्रमादी, घोर ताप से जलता है॥

(१५)

हे कविराज-वेदमंत्रों के, तू कविकुल का नेता है।
गद्य, पद्य-रचना की मेधा, दिव्य दया कर देता है॥
सर्व काल तेरे गुण गाता, जो कवि-मण्डल जीता है।
शंकर भी है अंश उसी का, ब्रह्म–काव्य-रस पीता है।

मित्र-मिलाप

(साखी)

मैं समझता था कहीं भी, कुछ पता तेरा नहीं।
आज शंकर तू मिला तो, अब पता मेरा नहीं॥

(योगोद्गार गीत)

मिल जाने का ठीक ठिकाना,
अब तो जाना रे।

बैठ गया विज्ञान-कोष पै, गुरु-गौरव का थाना,
प्रेम-पन्थ में भेड़-चाल से, पड़ा न मेल मिलाना,
बदला बानारे। अब तो जानारे।

मतवालों की भाँति न भावे, वाद-विवाद बढ़ाना,
समता ने सारे अपनाये, किस को कहूँ बिराना,

कुनवा मानारे । अपनो जानारे ।

देख अखण्ड-एक में नाना, दृश्य महा सुख माना,
बाजें साथ अनाहत बाजे, थिरके मन मस्ताना,

महिमा गानारे । अब तो जानारे ।

विद्याधार-वेद ने जिसको, ब्रह्म-विशुद्ध बखाना,
भागी भूल आज उस प्यारे, शंकर को पहँचाना,

मिलना ठानारे । अब तो जानारे,

परमात्म-प्रशस्ति

शंकर स्वामी एक है, सेवक जीव अनेक ।
वे अनेक हैं एक में, वह अनेक में एक ॥

विश्व-विलासी ब्रह्म का, विश्व रूप सब ठौर ।
विश्वरूपता से परे, शेष नहीं कुछ और ॥

होना सम्भव ही नहीं जिस में सैक, निरेक ।
जाना उस अद्वैत को, किसने विना विवेक ॥

जिस की सत्ता का कहीं, नादि, न मध्य, न अन्त ।
योगी हैं उस बुद्ध के, बिरले सन्त-महन्त ॥

सर्व-शक्ति-सम्पन्न है, स्वगत-सच्चिदानन्द ।
भूले, भेद, अभेद में, मान रहे मतिमन्द ॥

शंकर स्वामी से न हो, शंकर सेवक दूर ।
न्याय दया माँगे मिले, ज्ञान भक्ति भरपूर ॥

शंकर सर्वाधार है, शंकर ही सुखधाम ।
शंकर प्यारे मंत्र हैं, शंकर के सब नाम ॥

अनुकम्पा आनन्द की, जब होगी अनुकूल ।
तब ही होंगे जीव के, कष्ट विनष्ट समूल ॥

सोरठा

मंगलमूल महेश, दूर अमंगल को करे ।
ब्रह्मविवेक दिनेश, मोह महातम को हरे ॥

ब्रह्मविवेकाष्टक

(घनाक्षरी कवित्त)

(१)

एक शुद्ध सत्ता में अनेक भाव भासते हैं,
भेद-भावना में भिन्नता का न प्रवेश है ।
नानाकार द्रव्य, गुणधारी, मिले नाचते हैं,
अन्तर दिखाने वाले देश का न लेश है ॥
औपाधिक नाम रूप-धारी महा माया मिली,
माया मानी जीव जुड़े मायिक महेश है ।
न्यारे न कहाओ, बनो ज्ञानी मिलो शङ्कर से,
सत्यवादी वेद का यही तो उपदेश है ॥

(२)

आदि, मध्य, अन्तहीन भूमा भद्र भासता है,
पूरा है, अखण्ड है, असंग है, अलोल है।
विश्व का विधाता परमाणु से भी न्यारा नहीं,
विश्वता से बाहरो न ठोस है न पोल है।
एक निराकार ही की नानाकार कल्पना है,
एकता अतोल में अनेकता की तोल है।
भेदहीन नित्य में सभेदों की अनित्यता है,
खोजले तू शंकर जो ब्रह्म की टटोल है।

(३)

एक में अनेकता, अनेकता में एकता है,
एकता, अनेकता का मेल चकाचूर है।
चेतना से जड़ता को, जड़ता से चेतना को,
भिन्न करे कौन-सा प्रमाता महा शूर है॥
ठोस को न छोड़े पोल, पोल को न त्यागे ठोस,
ठोस नाचती है, टिकी पोलसे न दूर है।
भावरूप सत्ता में असत्ता है, अभावरूप,
शंकर यों अत्ता में महत्ता भरपूर है॥

(४)

सत्य-रूप सत्ता की महत्ता का न अन्त कहीं,
नेति-नेति बार-बार वेद ने बखानी है।

चेतन-स्वयंभू सारे लोकों में समाय रहा,
जीव प्यारे पुत्र हैं, प्रकृति महारानी है ॥
जीवन के चारों फल बाँटे भक्त-योगियों को,
पूरण प्रसिद्ध ऐसा दूसरा न दानी है।
शंकर जो राजा-महाराजों का महेश उसी,
विश्वनाथ ब्रह्म की बड़ाई मन मानी है ॥

(५)

पावक से रूप, स्वाद पानी से, मही से गन्ध,
मारुत से छूत, शब्द अम्बर से पाते हैं।
खाते हैं अनेक अन्न, पीते हैं पवित्र पय,
रोम, पाट, छाल, तूल, ओढ़ते, बिछाते हैं ॥
अन्य प्राणियों को जाति-योग से मिले हैं भोग,
ज्ञान-सिद्ध-साधनों से मानव कमाते हैं।
शंकर दयालु दानी देता है दया से दान,
पाय-पाय प्यारे जीव जीवन बिताते हैं ॥

(६)

माने अवतार तो अनङ्गता की घोषणा है,
अङ्गहीन सारे अङ्गियों का सिरमौर है।
पूजें प्रतिमा तो विश्व-व्यापकता बोलती है,
नारायण स्वामी का ठिकाना सब ठौर है ॥
खोजें घने देवता तो एकता निषेध करे,
एक महादेव कोई दूसरा न और है।

अन्तको प्रपञ्च ही में पाया शुद्ध शंकर जो,
भावना से भिन्न है न श्याम है, न गौर है ॥

(७)

एक मैं ही सत्य हूँ, असत्य मुझे भासता है,
ऐसी अवधारणा अवश्य भूल भारी है ।
पूजते जड़ों को, गुण गाते हैं मरों के सदा,
कर्म अपनाये महा, चेतना विसारी है ॥
मानते हैं दिव्य दूत, पूत, प्यारे शंकर के,
जानते हैं नित्य निराकार तन धारी है ।
मिथ्या मत वालों को सचाई कब सूझती है,
ब्रह्म के मिलाप का विवेकी अधिकारी है ॥

(८)

योग साधनों से होगा चित्त का निरोध और,
इन्द्रियों के दर्प की कुचाल रुक जावेगी ।
ध्यान, धारणा के द्वारा सामाधिक धर्म धार,
चेतना भी संयम की ओर झुक जावेगी ॥
मूढ़ता मिटाय महा मेधा का बढ़ेगा वेग,
तुच्छ लोक-लालच की लीला लुक जावेगी ।
शंकर से पाय परा विद्या यों मिलेंगे मुक्त,
बन्धन की वासना अविद्या चुक जावेगी ॥

भूल की भरमार

ऊत अविद्या के बने, पढ़ प्रामादिक पाठ ।
ऊलें आपस में लड़ें, सब के उलटे ठाठ ॥
भारी भूल में रे,
भोले भूले-भूले डोलें ॥
डाल युक्ति के बाट न जिसको, तर्क-तुला पर तोलें,
अन्धों की अटकल से उस को, टेक टिकाय टटोलें ।
भा० भू० भो० भू० भू० डोलें ।
पाय प्रकाश सत्य सविता का, आँख उलूक न खोलें,
अभिमानी अन्धेर अधम की, जाग-जाग जय बोलें ।
भा० भू० भो० भू० भू० डोलें ॥
पोच प्रपञ्च पसार प्रमादी, झंझट को झकझोलें,
स्वर्ग-सहोदर प्रेमामृत में, वज्र वैर-विष घोलें ।
भा० भू० भो० भू० भू० डोलें ॥
हम तो शठता त्याग सँगाती, सदुपदेश के हो लें,
शंकर समता की सरिता में, तन, मन, वाणी, धो लें ।
भा० भू० भो० भू० भू० डोलें ॥

कूटस्थ-कूटोक्ति

खेल चुका खोटे, खरे, निपट खोखले खेल ।
आज मोह माया तजी, शंकर से कर मेल ॥

(राजगीत)

कुछ नहीं, कुछ में समाया, कुछ नहीं,
कुछ न कुछ का भेद पाया, कुछ नहीं।
एकरस कुछ है नहीं कुछ, दूसरा,
कुछ नहीं बिगड़ा, बनाया, कुछ नहीं।
कुछ न उलझा, कुछ नहीं के, जाल में,
कुछ पड़ा पाया, गमाया, कुछ नहीं।
बन गया कुछ और से कुछ, और ही,
जान कर कुछ भी जनाया, कुछ नहीं।
कुछ न मैं, तू कुछ नहीं, कुछ, और है,
कुछ नहीं अपना, पराया, कुछ नहीं।
निधि मिली जिसको न कुछके, मेलकी,
उस अबुध के हाथ आया, कुछ नहीं।
वह वृथा अनमोल जीवन, खो रहा,
धर्म-धन जिसने कमाया, कुछ नहीं।
अब निरन्तर मेल शंकर, से हुआ,
कर सको अनमेल माया, कुछ नहीं।

सद् सम्मेलन

ज्ञान बिना होते नहीं, सिद्ध यथोचित कर्म।
रचते हैं संसार को, जड़ चेतन के धर्म॥

पाया सदसदुभय संयोग ॥
चतुर चातुरी से कर देखो, अमित यत्न उद्योग,
इनका हुआ न, है न, न होगा, अन्तर युक्त वियोग।
पाया सदसदुभय संयोग ॥
कौन मिटावे जड़ चेतन का, स्वाभाविक अतियोग,
ठोस पोल से अलग न होगी, वृथा उपाय-प्रयोग।
पाया सदसदुभय संयोग ॥
अटका यही सकल जीवों से, बाधक बन्धन-रोग,
जीवन, जन्म, मरण के द्वारा, रहे कर्म-फल भोग।
पाया सदसदुभय संयोग ॥
जीवनमुक्त महापुरुषों के, मान अमोघ नियोग,
धार विवेक बुद्ध बनते हैं, शंकर विरले लोग।
पाया सदसदुभय संयोग ॥

ब्रह्म की विश्वरूपता

भूलों की भरमार के, भूल भयानक भेद।
बतलाता है ब्रह्म को, इस प्रकार से वेद ॥
यों शुद्ध सच्चिदानन्द,
ब्रह्म को बतलाता है वेद ॥
केवल एक अनेक बना है, निर्विवेक, सविवेक बना है,
रूपहीन बन गया रँगीला, लोहित, श्याम, सफ़ेद।
ब्रह्म को बतलाता है वेद ॥

टिका अखंड समष्टि रूप से, खंडित विचरे व्यष्टि रूप से,
जड़ चैतन्य विशिष्ट रूप से, रहे अभेद सभेद।
ब्रह्म को बतलाता है वेद ॥
पूरण प्रेम-पयोधि प्रतापी, मङ्गल-मूल महेश मिलापी,
सिद्ध एक रस सर्व-हितैषी, कहीं न अन्तर, छेद।
ब्रह्म को बतलाता है वेद ॥
विश्व विधायक विश्वम्भर है, सत्य सनातन श्रीशंकर है,
विमल-विचारशील भक्तों के, दूर करे भ्रम खेद।
ब्रह्म को बतलाता है वेद ॥

————

जागती ज्योति

प्यारे प्रभु की ज्योति का, देख अखण्ड प्रकाश।
सत्य मान हो जायगा, मोह-तिमिर का नाश ॥
निरखो नयन ज्ञान के खोल,
प्रभु की ज्योति जगमगाती है ॥
देखो दमक रही सब ठौर, चमके नहीं कहीं कुछ और,
प्यारी हम सब की सिरमौर, उज्ज्वल अङ्कुर उपजाती है।
नि० न० ज्ञा० खो० प्र० ज्यो० जगमगाती है ॥
जिसने त्यागे विषय-विकार, मनमें धारे विमल विचार,
समझा सदुपदेश का सार, उसको महिमा दरसाती है।
नि० न० ज्ञा० खो० प्र० ज्यो० जगमगाती है ॥

जिस को किया कुमति ने अन्ध, बिगड़ा जीवन का सुप्रबन्ध,
कुछ भी रहा न तप का गन्ध, झलके, पर न उसे पाती है।
नि० न० ज्ञा० खो० प्र० ज्यो० जगमगाती है ॥
जिसने झंझट की झर झेल, परखे जड़ चेतन के खेल;
अपना किया निरन्तर मेल, शङ्कर उसको अपनाती है ॥
नि० न० ज्ञा० खो० प्र० ज्यो० जगमगाती है ॥

ब्रह्म विज्ञान

स्वामी सब संसार का, वह अविनाशी एक।
जिसके माया-जाल में, उलझे जीव अनेक ॥ १ ॥
भेद न सूझे वेद में, जान लिया जगदीश।
पूजे पग विज्ञान के, फोड़ कुमति का शीश ॥ २ ॥
होते हैं जिस एक से, हम सब के जन्मादि।
सत्ता है उस ईश की, शुद्ध अनन्त, अनादि ॥ ३ ॥
सर्व-शक्ति-सम्पन्न है, रचना रचे अनेक।
साथ सर्व-संघात के, रहे एक-रस एक ॥ ४ ॥
सब जीवों का मित्र है, जो जगदीश पवित्र।
उपजावे धारे, हरे, वह संसार विचित्र ॥ ५ ॥

ब्रह्मज्योति

(मालती वृत्त)

ज्योति अखण्ड निरञ्जन की, भरपूर प्रशस्त प्रकाश रही है।
दिव्य छटा निरखी जिस ने, उस ने दुविधा भ्रम की न गही है॥
सिद्ध त्रिलोक बखान रहे, सब ने छवि एक अनन्य कही है।
तू कर योग निहार चुका, अब शंकर जीवनमुक्त सही है॥

मिलाप की उमंग

(सगणात्मक सवैया)

अबलों न चले उस पद्धति पै, जिसपै व्रत-शील विनीत गये।
वह आज अचानक सूझ पड़ी, भ्रम के दिन बाधक बीत गये॥
प्रभु शंकर की सुधि साथ लगी, मुख मोड़ हठी विपरीत गये।
चलते चलते हम हार गये, पर पाय मनोरथ जीत गये॥

परमात्मा सर्व-शक्तिमान् है

(सगणात्मक सवैया)

जिसने सब लोक रचे सब को, उपजाय, बढ़ाय विनाश करे।
सबका प्रभु, साथ रहे सब के, सब में भरपूर प्रकाश करे॥
सब अस्थिर दृश्य दुरें दरसें, सब का सब ठौर विकाश करे।
वह शङ्कर मित्र हितू सब का, सब दुःख हरे न हताश करे॥

ब्रह्म की निर्लेपता

तुझ में रहै सर्व-संघात,
फिर भी सब से न्यारा तू है।

उमगा ज्ञान-क्रिया का मेल, ठानी गौणिक ठेलमठेल,
खोला चेतन जड़ का खेल, इसका कारण सारा तू है।
तु० र० स० सं० फि० स० न्यारा तू है॥

उपजा सारहीन संसार, आकर चार अनेकाकार,
जिन में जीवों के परिवार, प्रकटे, पालन हारा तू है।
तु० र० स० सं० फि० स० न्यारा तू है॥

सब का साथी, सब से दूर, सब में पाता है भरपूर,
कोमल, कड़े, क्रूर, अक्रूर, सबका एक सहारा तू है।
तु० र० स० सं० फि० स० न्यारा तू है॥

जिन पै पड़े भूल के फन्द, क्या समझेंगे वे मतिमन्द,
उन को होगा परमानन्द, शंकर जिन का प्यारा तू है।
तु० र० स० सं० फि० स० न्यारा तू है॥

विश्व की विश्वरचना

(षट्पदी छन्द)

प्रकटे भौतिक लोक, मेघ, तड़िता, ग्रह, तारे।
झील, नदी, नद, सिन्धु, देश, वन, भूधर भारे॥

तन, स्वेदज, उद्भिज्ज, जरायुज, अण्डज, सारे ।
अमित अनेकाकार, चराचर जीव निहारे ॥
नव द्रव्यों के अति योगसे, उपजा सब संसार है ।
इस अस्थिर के अस्तित्व का, शंकर तू करतार है ॥

परमात्मा का पूरा प्यार

अपना लेता है जिसे, शंकर परमोदार ।
देता है उस जीवको, जीवनके फल चार ॥

(भजन)

जगदाधार दयालु उदार,
जिस पर पूरा प्यार करेगा ॥

उस की बिगड़ी चाल सुधार, सिर से भ्रम का भूत उतार,
देकर मङ्गल-मूल विचार, उर में उत्तम भाव भरेगा ।
ज० द० उ० जि० पूरा प्यार करेगा ॥

दैहिक, दैविक, भौतिक, ताप, दाहक, दम्भ, कुकर्म-कलाप,
अगले, पिछले, सञ्चित पाप, लेकर साथ प्रमाद मरेगा ।
ज० द० उ० जि० पूरा प्यार करेगा ॥

कर के तन, मन, वाणी शुद्ध, जीवन धार धर्म अविरुद्ध,
बन कर बोध-विहारी बुद्ध, दुस्तर मोह-समुद्र तरेगा ।
ज० द० उ० जि० पूरा प्यार करेगा ॥

अनुचित भोगों से मुख मोड़, अस्थिर विषय-वासना छोड़,
बन्धन जन्म-मरण के तोड़, शंकर मुक्त-स्वरूप धरेगा।
ज० द० उ० जि० पूरा प्यार करेगा ॥

महादेव रुद्र से सब डरते है

(दोहा)

जिसने जीता काल को, भूत किये भय भीत।
वे प्यारे उस ईश के, जो न चलें विपरीत ॥

(भजन)

जिस अविनाशी से डरते है,
भूत, देव, जड़, चेतन सारे ॥

जिसके डर से अम्बर बोले, उग्र मन्द-गति मारुत डोले,
पावक जले, प्रवाहित पानी, युगल वेग वसुधा ने धारे।
जि० अ० ड० भू० दे० ज० चे० सारे ॥

जिसका दण्ड दसों दिस धावे, काल डरे, ऋतु-चक्र चलावे,
बरसें मेघ, दामिनी दमके, भानु तपे, चमकें शशि, तारे।
जि० अ० ड० भू० दे० ज० चे० सारे ॥

मनको जिसका कोप डरावे, घेर प्रकृति को नाच नचावे,
जीव कर्म-फल भोग रहे हैं, जीवन, जन्म, मरण के मारे।
जि० अ० ड० भू० दे० ज० चे० सारे ॥

जो भय मान धर्म धरते हैं, शंकर कर्मयोग करते हैं,
वे विवेक-वारिधि बड़भागी, बनते हैं उस प्रभु के प्यारे।
जि० अ० ड० भू० दे० ज० चे० सारे ॥ १ ॥

रुद्र दण्ड

(दोहा)

करता है जो पातकी, विधि निषेध का लोप।
होता है उस नीच पै, शंकर प्रभु का कोप ॥

(शुद्धगात्मक-राजगीत)

खलों में खेलते खाते, भलों को जो जलाते हैं,
विधाता न्यायकारी से, सदा वे दण्ड पाते हैं।
प्रतापी तीन तापों से, प्रमत्तों को तपाता है,
कुटुम्बी, मित्र, प्यारे भी, बचाने को न आते हैं।
अजी जो अङ्ग-रक्षा पै, न पूरा ध्यान देते हैं,
मरें वे नारकी पीछा, न रोगों से छुड़ाते हैं।
प्रमादी, पोच, पाखंडी, अधर्मी, अन्ध-विश्वासी,
अविद्या के अँधेरे में, मतों की मार खाते हैं।
अभागी, आलसी, ओछे, अनुत्साही, अनुद्योगी,
पड़े दुर्दैव को कोसें, मरे जीते कहाते हैं।
पराये माल से मोधू, बने प्रारब्ध के पूरे,
मिलाते धूलि में पूँजी, कुकर्मों को कमाते हैं

दुराचारी, दुरारम्भी, कृतघ्नी, जालिया, ज्वारी,
घमण्डी, जार, अन्यायी, कुलों को भी लजाते हैं।
हठीले, हीज, अज्ञानी, निकम्मे मादकी, कामी,
गपोड़ू, दुर्गुणी, गुण्डे, प्रतिष्ठा को डुबाते हैं।
कुचाली, चोर, हत्यारे, बिसासी, धर्म-विद्रोही,
प्रजा, राजा, किसीकी भी, न सत्ता में समाते हैं।
बिचारी बालिकाओं को, वृथा वैधव्य के द्वारा,
घरों में जो रुलाते हैं, न वे खाते अघाते हैं।
गिराते गर्भ राँडों के, बिगोते जो अहिंसाको,
गिरें वे ज्ञान-गंगा के, प्रवाहों में न न्हाते हैं।
न पालें जो अनाथों को, खिलाते माल संडों को,
गढ़े में पुण्य की ऊँची, प्रथा को वे गिराते हैं।
किसी भी आततायी का, कभी पीछा न छूटेगा,
हरें जो प्राण औरों के, गले वे भी कटाते हैं।
बचेंगे शंकरागामी, दिनों में वे कुचालों से,
जिन्हें ये दण्ड के थोड़े, नमूने भी डराते हैं।

———

अपौरुषेय वेद

(दोहा)

मंत्रों के मुनि योग से, अर्थ विचार विचार।
करते हैं संसार में, वैदिक धर्म-प्रचार॥

(गीत)

उस अद्वैत वेद की महिमा,
ठौर-ठौर गुरुजन गाते हैं ॥

शब्द न जिस में नर-भाषा के, भाव न भ्रम की परिभाषा के,
लिखा न कल्पित लेख-प्रथा से, लौकिक लोग न पढ़ पाते हैं।
उ० अ० वे० म० ठौ० गु० गाते हैं ॥
जिस के मंत्र विवेक बढ़ाते, मोह-महीधर पै न चढ़ाते,
मेंट अनर्थ, सदर्थ पसारें, ध्रुव—धर्मामृत बरसाते हैं ॥
उ० अ० वे० म० ठौ० गु० गाते हैं ॥
ज्ञान-योग बल से बुध बाँचें, कर्म-योग अनुभव से जाँचें,
विधि-निषेध कर न्यारे-न्यारे, क्रम से सब को समझाते हैं।
उ० अ० वे० म० ठौ० गु० गाते हैं।
जो वैदिक उपदेश न होता, तो फिर कौन अमंगल खोता,
मनुज मान शिक्षा शंकर की, भव-सागर को तर जाते हैं ॥
उ० अ० वे० म० ठौ० गु० गाते हैं ॥

नैसर्गिक शिक्षा-निदर्शन

(दोहा)

व्यापक हैं संसार में, विधि, निषेध विख्यात।
शिक्षा मानव जाति को, मिलती है दिन-रात ॥

(शंकर छन्द)

जिसकी सत्ता भाँति-भाँति के, भौतिक दृश्य दिखाती है।
जीवों को जीवन धारण के, नाना नियम सिखाती है॥
सर्व नियन्ता, सर्व हितैषी, वह चेतन भुवनेश।
नैसर्गिक विधि से देता है, हम सब को उपदेश॥

[२]

न्यायशील शंकर जीवों से, कहिये क्या कुछ लेता है।
सुखदा सामग्री का सब को, दान दया कर देता है॥
सर्व सृष्टि-रचना को देखो, नयन सुमति के खोल।
ठौर-ठौर शिक्षा मिलती है, गुरु-मुख से बिन मोल॥

[३]

देखो भानु अखण्ड प्रतापी, तम को मार भगाता है।
तेजहीन तारा-मण्डल में, उज्ज्वल ज्योति जगाता है॥
ज्ञान-उजाला बाँट रहा है, यों प्रभु परम सुजान।
तत्व तेजधारी बनते हैं, भ्रम-तम त्याग अजान

[४]

तारे भी तम-तोप रात में, दिव्य दृश्य दरसाते हैं।
चन्द्र बिम्बकी भाँति उजाला, बाँट सुधा बरसाते हैं॥
यों अपने ज्ञानी पुरुषों से, पढ़ कर मंत्र प्रयोग।
छोड़ अविद्या सुख पाते हैं, गुरु–मुख लौकिक लोग॥

[५]

जो शिव से स्वाभाविक शिक्षा, जाति क्रमागत पाते हैं।
सुलभ साधनों से ये प्राणी, जीवन-काल बिताते हैं॥

मानव जाति नहीं जीती है, उन सब के अनुसार।
साधन पाया हम लोगों ने, केवल विमल विचार॥

[६]

जो योगी जिस ज्ञेय वस्तु में, पूरी लगन लगाता है।
मर्म जान लेता है उस का, मनमाना फल पाता है॥
वह अपने आविष्कारों का, कर सब को उपदेश।
ठीक-ठीक समझा देता है, फिर-फिर देश-विदेश॥

[७]

जो बड़भागी ब्रह्मज्ञान के, जितने टुकड़े पाते हैं।
वे सब साधारण लोगों को, देकर बोध बढ़ाते हैं॥
तर्क-सिद्ध सद्भाव अनूठे, विधि-निषेधमय मंत्र।
संग्रह ग्रन्थाकार उन्हीं के, प्रकटे प्रचलित तंत्र॥

[८]

लेख अनोखे, भाव अनूठे, अक्षर, शब्द, निराले हैं।
दुर्गम गूढ़ ब्रह्मविद्या के, बिरले पढ़ने वाले हैं॥
ज्ञानागार घने भरते हैं, विषय बटोर बटोर।
पाठकवृन्द नहीं पावेंगे, इति कर इस का छोर॥

[९]

तर्क-युक्तियों की पटुता से, जब जड़ता को खोते हैं।
सत्यशील वैदिक विद्या के, तब अधिकारी होते हैं॥
बाल ब्रह्मचारी पढ़ते हैं, सोच, समझ, सुन देख।
पाठ-प्रणाली जाँच लीजिये, पढ़ कतिपय उल्लेख॥

[१०]

जन्म-काल में जिस के द्वारा, जननी का पय पीते थे।
साथ वही साधन लाये थे, इतर गुणों से रीते थे॥
ज्ञान-योग से गुरु लोगों के, उमगे विशद विचार।
कर्मयोगबल से पाते हैं, तप-तरु के फल चार॥

[११]

जाँच लीजिये जितने प्राणी, जो कुछ बोला करते हैं।
वे उस भाँति मनोभावों की, खिड़की खोला करते हैं॥
स्वाभाविक भाषा का हम को, मिला न प्रचुर प्रसाद।
शब्द पराये बोल रहे हैं, कर वर्णिक अनुवाद॥

[१२]

अपने कानों में ध्वनि रूपी, जितने शब्द समाते हैं।
मुख से उन्हें निकालें तो वे, वर्ण-रूप बन जाते हैं॥
वेही अक्षर कहलाते हैं, स्वर व्यञ्जन-समुदाय।
यों आकाश बना भाषण का, कारण सहित उपाय॥

[१३]

जिनके स्वाभाविक शब्दों को, पास दूर सुन पाते हैं।
वे अनुभूत हमारे सारे, अर्थ समझ में आते हैं॥
यों शिव से भाषा रचने का, सुनकर उक्त उपाय।
कल्पित शब्द साथ अर्थों के, समुचित लिये मिलाय॥

[१४]

भूतों के गुण और भूत यों, दशक दशों का जाना है।
इन में नौ प्रत्यक्ष शेष को, अटकल ही से माना है॥

तारतम्यता देख इन्हीं की, उपजा गणित-विवेक।
आँक लिये नौ अङ्क असङ्गी, शून्य सकल धर एक॥

[१५]

जिन के खुर, पंजे पैरों के, चिन्ह मही पर पाते हैं।
पामर, पक्षी, मानवादि वे, याद उसी दम आते हैं॥
जब यों अर्थ बताते देखे, अमित चिह्न ऋजु बङ्क।
मान लिये तब संकेतों में, लिख-लिख अक्षर, अङ्क॥

[१६]

नीचे ❀ मध्यम, ऊँचे स्वर से, कुक्कुट बाँग लगाता है।
जागे आप सदैव सबों को, पिछली रात जगाता है॥
तीन भाँति के उच्चारण का, समझे सरल प्रयोग।
ब्रह्म-काल में उठना सीखे, इस विधि से हम लोग॥

[१७]

जागें + पिछली रात प्रभाती, राग मनोहर गाते हैं।
हेल-मेल से जल-क्रीड़ा को, कारण्डव सब जाते हैं॥

❀ अनुदात्त = नीचेस्वरसे, स्वरति = मध्यम स्वरसे, उदात्त = ऊँचेस्वर से इस प्रकार ३ प्रकार का शब्दोच्चारण होता है; जो कि कुक्कुट से सीखा गया है।

+ कारण्डव (बतख़) ये पक्षी ब्रह्ममुहूर्त्त में उठकर इकट्ठे होकर गाते हुए स्नान को जाते हैं।

यों सीखे प्रभु के गुण गाना, सुन कर स्वर गन्धार।
भानूदय से पहले न्हाना, तरना विविध प्रकार॥

[१८]

आतप-ताप स्नेह रसों को, मेघ-रूप कर देता है।
सार सुगन्ध सर्व द्रव्यों के, मारुत में भर देता है॥
होते हैं जल-वायु शुद्ध यों, बल बर्द्धक अनुकूल।
भानुदेव से सीखा हम ने, हवन-कर्म सुखमूल॥

[१९]

देखो वैदिक यज्ञकुण्ड में, हव्य-कवलिका पाता है।
न्याय-धर्म से सब देवों को, सार भाग पहुँचाता है।
भस्म छोड़ कर होजाता है, हुतभुक् अन्तरधान।
दान करें यों विद्या-धन का, बुध याजक यजमान॥

[२०]

नीर मेघ से, मेघ भाप से, भाप नीर बन जाता है।
पिघले, जमे, उड़े यों पानी, कौतुक तीन दिखाता है॥
ये रस, अन्न, प्राण दाता के, द्रव, दृढ़, वायु, विकार।
देवो, देवो, ऋषियो, पितरो, करिये जगदुपकार॥

[२१]

औषध, अन्न आदि सामग्री, सुखदा सब को देती है।
अपने उपजाऊ बीजों को, सावधान रख लेती है॥
जीव जन्म लेते मरते हैं, जिस पर जीवन भोग।
उस वसुन्धरा माता की-सी, सुगति गहो गुरु लोग॥

[२२]

देखो फल स्वादिष्ट रसीले, अपने आप न खाते हैं।
बाँट-बाँट सर्वस्व सबों को, अचल प्रतिष्ठा पाते हैं॥
छाया-दान दिया करते हैं, प्रखर ताप शिर धार।
सीखो, पादप सिखलाते हैं, करना परउपकार॥

[२३]

तीन※ भाँति के जंगम प्राणी, जो कुछ रुचि से खाते हैं।
भिन्न भाव से भेद उसी के, अन्न अनेक कहाते हैं॥
वे अभक्ष्य हैं जान लिये जो, गत रस स्वाद सुवास।
परखाता है ईश सबों को, वदन, घ्राण, रच पास॥

[२४]

आमिष-भक्षी क्रूर, तामसी, निष्ठुर, हिंसक होते हैं।
कन्द, मूल, फल खानेवाले, उग्र विलास न बोते हैं॥
पल, फल खौओं को पाते हैं, उभयाचरण विशिष्ट।
ऐसा देख निरामिषभोजी, सदय बनो सब शिष्ट॥

[२५]

शब्द, गन्ध, आलोक, दूर से, कर्ण, घ्राण, दृग पाते हैं।
तीनों के उपभोग किसी के, मन को नहीं तपाते हैं॥
जिह्वा, सिस्न, करें विषयों से, निपट निरन्तर योग।
विधि की बाग देख दोनों के, समुचित करो प्रयोग॥

※ तीन भाँति के जङ्गम प्राणी = स्वेदज, अण्डज और जरायुज।

[२६]

विधि की परिपाटी से न्यारे, जितने प्राणी चलते हैं।
वे आजन्म निषेधानल के, तीव्र ताप से जलते हैं॥
ऊलें उद्धत न्याय-धर्म से, रहित रहें बिन जोड़।
देखो झुण्ड मृगी मृगादि के, तज पशुपन की होड़॥

[२७]

सारसादि चिड़ियों के जोड़े, दम्पति-भाव दिखाते हैं।
जोड़े से रहने की हम को, उत्तम रीति सिखाते हैं॥
देते फिरें गृहस्थ-धर्म का, परमोचित उपदेश।
इन के प्रेमाचार-चक्र में, हिल-मिल करो प्रवेश॥

[२८]

जोड़ मिले मादा-नर प्राणी, प्रेमादर्श विचरते हैं।
मिथ्याहार-विहार न जाने, अत्याचार न करते हैं॥
गर्भाधान करें व्रत-धारी, पाय समय सविधान।
त्यागें भोग प्रसव लों दोनों, समझो रसिक सुजान॥

[२९]

जिन के जोड़ नहीं जन्मे वे, अस्थिर मेल मिलाते हैं।
नारी एक घने नर घेरें, खेल असभ्य खिलाते हैं॥
कट्टर कामुक हो जाते हैं, विकल-अङ्ग विकराल।
देखो श्वान, शृगाल आदि को, चलो न अनुचित चाल॥

[३०]

जिन ❀ जोड़ों के जीव अभागे, एक एक मरजाते हैं।
शेष बचे वे जाति-वृन्द को, शोक-पुकार सुनाते हैं ॥
रचते हैं रँडुआ, राँडों के, सकल पञ्च पुनि जोड़ ।
यों उद्धारो विधवा-दल को, कुमत, पन्थ, छल, छोड़ ॥

[३१]

मानव जाति सुता, पुत्रों को, साथ नहीं उपजाती है ।
दो कुनबों से कन्या, बर को, लेकर जोड़ मिलाती है ॥
वे दुलही-दुलहा होते हैं, नवल गृही प्रण ठान ।
रखते हैं दो परिवारों से, हिल-मिल मेल समान ॥

[३२]

चारा चुगते अण्डज-बच्चे, दूध जरायुज पीते हैं ।
मात-पिता अथवा माता के, पास वास कर जीते हैं ॥
वे समर्थ होते ही उनसे, अलग रहें तज सङ्ग ।
यों कृतघ्नता का मनुजों पै, चढ़े न कुयश-कुरङ्ग ॥

❀ जोड़े वाले जीव, खण्डित जोड़ों के फुट्टैल राँड और रँडुओं को मिला कर, पुनः जोड़े बना लेते हैं । एक बार किसी शिकारी ने सारस के एक जोड़े में से एक पक्षी को मार डाला, वह बचा हुआ विहँग कई दिनों तक चिल्लाता रहा । एक दिन उस के पास आस-पास के अनेक सारस आये और शाम को चले गये, उस स्थान पर एक जोड़ा रह गया । इस से सिद्ध है कि वे उस फुट्टैल का जोड़ा मिला गये । यह दृश्य ग्रन्थकार तथा अन्य अनेक मनुष्यों ने देखा था ।

[३३]

वस्त्र बनाने की पटुता के, मकड़ी दृश्य दिखाती है।
सूत कात कर ताना-बाना, बुनना सदा सिखाती है॥
गोल-गोल भीतों पर पोते, धवलावरण अनेक।
कागज़ की रचना का सूझा, हमको सरल विवेक॥

[३४]

न्योले, मूषिकादि बिल खोदें, तन्तुक जाल बिछाते हैं।
तोते, चटके आदि पखेरू, कोटर, झोंझ, बनाते हैं॥
घरुआ रचें घिरोली, चिट्टे, कच कच कीचड़ लाय।
यों हम गेह बनाने सीखे, निरख अनेक उपाय॥

[३५]

अपने मान अन्य जीवों के, विवरों में घुस जाते हैं।
खोज-खोज रहने वालों को, खा कर खोज मिटाते हैं॥
कालकूट उगलें औरों के, बन कर अन्तिम काल।
रक्षा करिये, उरगों की-सी, गहो न गृह-पति चाल॥

[३६]

देख लीजिये सब जीवों को, नेक न ठाली रहते हैं।
भोगें भोग दरिद्रासुर की, भूखे मार न सहते हैं॥
करते हैं उद्योग अड़ीले, कुल-पद्धति अपनाय।
तो हम क्यों आलस्य न छोड़ें, शुभ साधन बल पाय॥

[३७]

नाड़ी और नसों से जिनके, अङ्ग रसादिक पाते हैं।
जन्म धार जीवन को भोगें, देह-त्याग मर जाते हैं।

ज्ञान, क्रिया धारी उपजाते, निज तन से तन अन्य ।
वे सजीव प्राणी पहँचाने, परख चराचर धन्य ॥

[३८]

रचना एक विश्वकर्मा की, चारों ओर चमकती है ।
इसमें विद्या भाँति-भाँति की, भद्राधार दमकती है ॥
शिल्प, कलाकारी, ज्योतिष के, उमग रहे सब अङ्ग ।
उठते हैं शिक्षा-सागर में, विविध प्रसङ्ग-तरङ्ग ॥

[३६]

जितने पुण्य-श्लोक प्रतापी, जीवन-मुक्त कहाते हैं ।
वे बुध बुद्ध महाविद्या के, शुद्ध प्रवाह बहाते हैं ॥
ऐसे गुरुओं से पढ़ते हैं, सब निर्धन, धनवान ।
किसको शिक्षा दे सकते हैं, गुरुकुल पण्य समान ॥

[४०]

जो कवि कहे इन्हीं बातों को, तो जीवन चुक जावेगा ।
पर प्यारे के उपदेशों का, अन्तिम अंक न आवेगा ॥
सर्वशिरोधर वेदों के ये, आशय अटल अनूप ।
जानो भाव भरी कविता को, निपट निदर्शन रूप ॥

[४१]

जो जन इन प्यारे पद्यों के, अर्थ यथाविधि जानेंगे ।
वे इस नैसर्गिक शिक्षा को, सत्य सनातन मानेंगे ॥
जिनको भाव नहीं भावेंगे, परम प्रमाणित गूढ़ ।
वे समझेंगे शंकर को भी, कुकवि मनोमुख मूढ़ ॥

———

पावस-प्रमोद

(दोहा)

हे शंकर स्वामी तुही, मङ्गल-मूल महेश।
पाया जीव-समूह ने, गुरु तेरा उपदेश॥

(रौलाछन्द)

शंकर देख! विचित्र, सृष्टि-रचना शंकर की।
बोल! किसे कब थाह, मिली संसृति-सागर की॥
जड़-चेतन के खेल, मनोहर दृश्य खरे हैं।
इन में मङ्गल-मूल, निरे उपदेश भरे हैं॥

(२)

इस प्रसंग के अङ्ग, अखिल विद्या के घर हैं।
अर्थ अमोघ विशुद्ध, शब्द अद्भुत अक्षर हैं॥
इस का अनुसन्धान, यथासम्भव जब होगा।
अनुभवात्मक ज्ञान, अन्यथा तब कब होगा॥

(३)

स्वाभाविक गुणशील, अन्य सब जीव निहारे।
पर मनुष्य को मंत्र, मिले जड़-चेतन सारे॥
ब्रह्मशक्ति जिस भाँति, यथाविधि सिखा रही है।
पावस के मिस दिव्य, निदर्शन दिखा रही है॥

(४)

ऊपर को जल सूख, सूख कर उड़ जाता है।
सरदी से सकुचाय, जलद पदवी पाता है॥

पिघलावे रवि-ताप, धरातल पै गिरता है।
बार-बार इस भाँति, सदा हिरता फिरता है॥

(५)

पाय पवन का योग, घने घन घुमड़ाते हैं।
कर किरणों से मेल, विविध रङ्गत पाते हैं॥
समझो, जिस के पास, प्रकाश न जा सकता है।
क्या वह भौतिक भाव, रङ्ग दिखला सकता है॥

(६)

चपला चञ्चल चाल, दमकती, दुर जाती है।
वज्रघात घनघोर, गगन में पुर जाती है॥
दोनों चल कर साथ, विषमगति से आते हैं।
प्रथम उजाला देख, शब्द फिर सुन पाते हैं॥

(७)

जब दिनेश की ओर, झोर-झरने झड़ते हैं।
इन्द्र-चाप तब अन्य, घने घन पै पड़ते हैं॥
नील, अरुण के साथ, पीत छवि दिखलाते हैं।
हम को मिश्रित रंग, बनाना सिखलाते हैं॥

(८)

जब चादर-सा अभ्र, गगन में तन जाता है।
दिव्य परिधि का केन्द्र, इन्दु तब बन जाता है॥
शशि का कुण्डल-गोल, समझ में आया जब से।
बुध-मण्डल ने वृत्त, विधान बनाया तब से॥

(९)

भूधर से सब श्याम, धवल धाराधर धाये।
घूम-घूम चहुँ ओर, घिरे गरजे झर लाये॥
वारि-प्रवाह अनेक, चले अचला पर दीखे।
इस विधि कुल्या-कूल, बहाना हम सब सीखे॥

(१०)

झाबर, झील, तड़ाग, नदी, नद, सागर सारे।
हिलमिल एकाकार, हुए पर हैं सब न्यारे॥
सब के बीच विराज, रहा पावस का जल है।
व्यापक इस की भाँति, विश्व में ब्रह्म अचल है॥

(११)

निरख नदी की बाढ़, वृष्टि पिछली पहचानी।
समझे मेघ निहार, अवस बरसेगा पानी॥
प्रकट भूमि की चाल, करे अस्तोदय रवि का।
यों अनुमान-प्रमाण, मिला पावस की छवि का॥

(१२)

अँधियारी निशि पाय, विचरते हैं चरते हैं।
दोनों परघर तोड़, फोड़ ऊजड़ करते हैं॥
इन का सिद्ध-प्रसिद्ध, चरित साधर्म्य घना है।
अटके चोर, उलूक, उड़ें उपमान बना है॥

(१३)

मल गोबर के ग्रास, पाय गप-गप खाते हैं।
गढ़-गढ़ गोले गोल, लुड़कते लुड़काते हैं॥

गुबरीले इस भाँति, क्रिया-विधि जो न जनाते।
तो वटिका कविराज, कहो किस भाँति बनाते॥

(१४)

उलहे पादप-पुञ्ज, पाय सुख-रस चौमासा।
केवल आक अचेत, पड़े जल गया जवासा॥
समझें, जो प्रतिकूल, सलिल, मारुत पाता है।
रहता है वह रुग्ण, त्याग तन मरजाता है॥

(१५)

अधिक अँधेरी रात, झमक झिंगुर झिंगारें।
तिलका + तान उड़ाय, रहे निशिअलि† गुंजारें॥
यदि ये गाल फुलाय, राग अविराम न गाते।
तो बरुआ स्वर साध, वेणु, बँसुरी न बजाते॥

(१६)

जल में जोंक भुजंग, भूमि-तल पै लहराते।
फुदकें मेंढक, काक, कुदकती चाल दिखाते॥
मन्द-मन्द गति हंस, कबूतर की जब जानी।
तब तो धमनी बात, पित्त, कफ की पहचानी॥

(१७)

दिन में विचरें साथ, रहें रजनी-भर न्यारे।
सरिता की इस पार, और उस पार पुकारे॥

+ तिलका = चित्तीदार कीट। † निशिअलि = बड़ा गुबरीला जो रात को गुंजारता हुआ उड़ता है।

यों चकई-चक-जोड़, सुधा-विष बरसाते हैं।
मिलने का सुख-दुःख, विरह का दरसाते हैं।

(१८)

चपला के चर दूत, कि रजनी-पति के चेरे।
चम-चम चारों ओर, चमकते हैं बहुतेरे॥
जो तम का उर फाड़, तेज खद्योत न भरते।
तो हम दिये जलाय, अँधेरा दूर न करते॥

(१९)

पिस्सुक, मच्छर, डाँस, कूतरी, खटमल काटें।
दिन में रहें अचेत, रात-भर खाल उपाटें॥
यों अविवेक प्रधान, महातम की बनि आई।
काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह अटके दुखदाई॥

(२०)

दीपक पै कर प्यार, पतङ्ग प्रताप दिखाते।
त्याग-त्याग तन प्राण, प्रीति रस-रीति सिखाते॥
जाना अविचल प्रेम, निठुर से जो करते हैं।
वे उस प्रिय के रूप, अग्नि में जल मरते हैं॥

(२१)

पिछली रात सचेत, आँख उठ कुक्कुट खोलें।
अब सब सोते जाग, पड़ें इस कारण बोलें॥
सुनते ही शुभ नाद, द्विजाचर नींद विसारें।
वक्ता स्वर अनुदात्त, उदात्त, स्वरित उचारें॥

(२२)

दिन में विकसें कंज, पाय रजनी सकुचाते।
निशि में खिलें कुमोद, दिवस में कोश दुराते॥
ये रवि, शशि के भक्त, यथा क्रम सकुचें फूलें॥
यों सामयिक सुकर्म, करें हम लोग न भूलें॥

(२३)

प्राण-पवन को रोक, भेक जीवित रहते थे।
विवरों में चुपचाप, घोर आतप सहते थे॥
अब तो पाय अगाध, सलिल मंगल गाते हैं।
इनसे सीख समाधि, सिद्ध मुनि सुख पाते हैं॥

(२४)

बगले ध्यान लगाय, मौन मुनि बन जाते हैं।
मन मैले तन श्वेत, पकड़ मछली खाते हैं॥
साधु वेश बटमार, मूढ़ इस भाँति बने हैं।
ठग पाखण्ड प्रमाद, भरे वकवृत्ति घने हैं॥

(२५)

कारण्डव कलहंस, करें जल-केलि न हारें।
पनडुब्बी चहुँ ओर, फिरें फिर डुबकी मारें॥
जो हम इनके काम, सीख अभ्यास न करते।
कूद-कूद कर तो न, ताल नदियों में तरते॥

(२६)

किचुआ अन्ध अनेक, अधोमुख गाढ़ रहे हैं।
निगल रहे जो कीच, वही मल काढ़ रहे हैं॥

स्वाभाविक निज धर्म, जगत को जता रहे हैं।
बस्ति कर्म इस भाँति, विलक्षण बता रहे हैं॥

(२७)

इन्द्रबधू कल कीट, अरुण पाये मन भाये।
समझे विधि ने लाल, प्रवाल सजीव बनाये॥
इनका कुनबा रंग, रहा उपजा जंगल में।
हमने भी यह रंग, ढङ्ग ढाला मख़मल में॥

(२८)

विविध अनूठे रूप, रङ्ग धारण करती हैं।
साँग अनेक प्रकार, तितलियाँ क्यों भरती हैं॥
जो इनके अनुसार, ठीक अभ्यास न करते।
तो नट नाटक में न, वेश मनमाने धरते॥

(२९)

अब गिजाइयाँ देख, पौध उनकी बढ़ती है।
पकड़ एक को एक, बना वाहन चढ़ती है॥
आरोहण इस भाँति, कई ढबका जब दीखा।
तब तो चढ़ना अश्व, आदि पर हमने सीखा॥

(३०)

उगलें तार पसार, बुनाई से लग पड़ना।
जटिल फन्द में फाँस, फाँस आखेट पकड़ना॥
मकड़ी ने अनमोल, अनेक सुदृश्य दिखाये।
तन्तु, वस्त्र, गुण, जाल बनाने सविधि सिखाये॥

(३१)

पहले से सुप्रबन्ध, यथोचित कर लेते हैं।
कर उद्योग अनाज, विवर में भर लेते हैं॥
वर्षाभर वह अन्न, चतुर चिउँटे खाते हैं।
धन सञ्चय का लाभ, भोग-सुख समझाते हैं॥

(३२)

सारस भोग-विलास, सदा सुख से करते हैं।
इनकी भांति अनेक, नभग जोड़े चरते हैं॥
धन्य पवित्र चरित्र, अनामय द्विज जीते हैं।
जान, मान गृह-धर्म, प्रेम रस हम पीते हैं॥

(३३)

नाचें मगन मयूर, मोरनी मन हरती है।
पी-पी पिय-चख-नीर, गर्भ धारण करती है॥
जो न थिरकते रास, रंग रच रसिया केकी।
तो न मटकते भाँड़, पण्ढ, कत्थक अविवेकी॥

(३४)

स्वांति-सलिल की चाह, चहकते चातक डोलें।
अन्योदक अवलोक, तृपातुर चोंच न खोलें॥
अटल टेक से सिद्ध, मनोरथ कर लेते हैं।
प्रण-पालन की धीर, सुमति-सम्मति देते हैं॥

(३५)

अपनी सन्तति काक कृपण से पलवाती है।
पेड़-पेड़ पर बैठ, मुदित मंगल गाती है॥

कोयल की करतूत, चतुर अबला गहती है।
तनुज धाय को सौंप, आप युवती रहती है॥

(३६)

कब देखा सहवास, प्रकट कौओं का कहिये।
वायस-व्रत की वीर, बड़ाई करते रहिए॥
जो इनके प्रतिकूल, चाल चलते नर-नारी।
तो पशु-दल की भाँति, न रहती लाज हमारी॥

(३७)

जिन के भीतर धूप, न जाय न शीत सतावे।
बरसे मूसल धार, मेह पर बूँद न आवे॥
गेह रचें सुख-धाम, चतुर चटकों के जाये।
हम ने इन का काम, देख तृण-मण्डप छाये॥

(३८)

मौन अधोमुख भीग, रहे बानर मन मारें।
पंख निचोड़-निचोड़, द्रुमों पर मोर पुकारें॥
समझे जितने जीव, न सदन बनाते होंगे।
वे सब इनकी भाँति, अबस दुख पाते होंगे॥

(३९)

सब को ऊपर, डांग, शैल, बन बांट दिये हैं।
उपजाऊ चक-वार, धरातल छांट दिये हैं॥
विधि ने मंगलमूल, यथोचित न्याय किया है।
कृपि द्वारा हम लोग, जियें उपदेश दिया है॥

(४०)

काढ़ काँप विकराल, सबल शूकर आते हैं।
खोद-खोद कर खेत, गाँठ-गुड़हर खाते हैं॥
जो इनके दृढ़ तुण्ड, न भूतल मुण्ड उड़ाते।
तो कुलवीर किसान, कभी हल जोत न पाते॥

(४१)

फूल, फले, वन, बाग़, सरस हरियाली छाई।
वसुधा ने भरपूर, सस्यमय सम्पति पाई॥
उद्यम की जड़ मुख्य, जगत-जीवन खेती है।
एक बीज उपजाय, बहुत-से कर देती है॥

(४२)

बेलि, लता, तरु, गुल्म, पसारें छदन छबीले।
पल्लव लटकें फूल, फली, फल धार फबीले॥
जो हम को करतार, न सुन्दर दृश्य दिखाता।
तो कृत्रिम फुलवाड़, विरचना कौन सिखाता॥

(४३)

उपजे छत्रक-पुञ्ज, सुकोमल श्वेत सुहाये।
इन्द्रफलक पद पाय, कुकुरमुत्ता कहलाये॥
यदि इन के आकार, गुणी जन देख न पाते!
तो फिर छतरी, छत्र, कहो किस भाँति बनाते॥

(४४)

मूल, दण्ड, दल, गोंद, फूल, फल, सार, रसीले।
बीज, तेल, तृण, तूल, गन्ध, रँग, काठ कसीले॥

करते हैं दिन-रात, दान प्रिय पादप सारे।
सीखे परउपकार, इन्हीं से सुहृद् हमारे॥

(४५)

जिन की घोर पुकार, सदा सब सुन पाते हैं।
वे बिन जीव, सजीव, सकल समझे जाते हैं॥
यदि स्वाभाविक शब्द, अर्थ अपने न बताते।
कल्पित भाषण तो न, मनोगत भाव जताते॥

(४६)

फूल गये अब काँस, जरा पावस पर छाई।
जलदों ने जय पाय, कूच की गरज सुनाई॥
केश पकाय असंख्य, वृद्ध जन मर जाते हैं।
विरले घन की भाँति, सर्वहित कर जाते हैं॥

(४७)

अब लों जितना भाव, जाँच कर जान लिया है।
क्या अनुभव का अन्त, वही बस मान लिया है॥
नहीं-नहीं जिस भाँति, सुमति की उन्नति होगी।
तदनुसार उद्योग, करेंगे गुरुजन योगी॥

(४८)

अमित ज्ञान की कौन, इतिश्री कर सकता है।
सागर गागर में न, कभी भी भर सकता है॥
जिन को तत्व प्रकाश, मिला है शिव सविता से।
उन का अनुसन्धान, बढ़ेगा इस कविता से॥

——

सगुण ब्रह्म

(दोहा)

ब्रह्म सच्चिदानन्द का, देखा सबल स्वरूप।
शंकर तू भी होगया, परम रङ्क से भूप॥

(षट्पदी छन्द)

प्रकटे शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध धार तू।
सर्व, सर्वसंघात, ख, मारुत, अग्नि, आप, भू॥
शुद्ध सच्चिदानन्द, विश्वव्यापक, बहुरंगी।
मन, दिगात्मा, काल, सत्त्व, रज, तम का संगी॥
हे अद्वितीय, तू एक ही, अविचल चले अनेक में।
यों पाया शंकर को तुही, शंकर विमल विवेक में॥

(सोरठा)

समझा चेतन और, जान लिया जड़ और है।
युगल एक ही ठौर, दरसें भिन्न, अभिन्न-से॥

प्रपंच-पंचक

(दोहा)

माया मायिक ब्रह्म की, उमगी गुण विस्तार।
ठोस, पोल के मेल में, विचरे खेल पसार॥ १॥
देश, काल की कल्पना, ज्ञान, क्रिया बल पाय।
जागी जगदम्बा अजा, नाम, रूप अपनाय॥ २॥

इन्द्र, इन्द्रियों से हुआ, तन का मन का मेल।
भूत बने दो भाँति के, हिल-मिल खेलें खेल ॥ ३ ॥
साधन पाया जीव ने, मन द्रुतगामी दूत।
सारहीन संसार है, उस का ही अनुभूत ॥ ४ ॥
भर जाते हैं स्वप्न में, जाग्रत के सब ढंग।
पाय गाढ़ निद्रा रहे, चेतन एक असंग ॥ ५ ॥

हिरण्यगर्भ

(दोहा)

तू सब का स्वामी बना, सेवक हैं हम लोग।
नाथ ! न छूटेगा कभी, यह स्वाभाविक योग ॥

(भजन)

सुखदाता तू प्रभु मेरा है ॥
तेरी परम शुद्ध सत्ता में, सब का विशद बसेरा है।
सुखदाता तू प्रभु मेरा है ॥
केवल तेरे एक देश ने, घटक प्रकृति का घेरा है ॥
सुखदाता तू प्रभु मेरा है ॥
तू सर्वस्व सकल जीवों का, किस पर प्यार न तेरा है।
सुखदाता तू प्रभु मेरा है ॥
दीनबन्धु तेरी प्रभुता का, जड़मति शंकर चेरा है ॥
सुखदाता तू प्रभु मेरा है ॥

सत्य विश्वास

(दोहा)

तेरी शुभ सत्ता बिना, हे प्रभु मंगल-मूल ।
पत्ता भी हिलता नहीं, खिलता कहीं न फूल ॥

(भजन)

जिस में तेरा नहीं विकास,
वैसा विकसा फूल नहीं है ॥

मैंने देख लिया सब ठौर, तुझ-सा मिला न कोई और,
पाया तू सब का सिरमौर, प्यारे इसमें भूल नहीं है ।
जि० ते० न० वि० वै० फूल नहीं है ॥

तेरे किंकर करुणाकन्द, पाते हैं अविरल आनन्द,
तुझ से भिन्न सच्चिदानन्द, कोई मंगलमूल नहीं है ।
जि० ते० न० वि० वै० फूल नहीं है ॥

प्रेमी भक्त प्रमाद बिसार, माँगें मुक्ति पुकार-पुकार,
सब का होगा सर्व सुधार, जो पै तू प्रतिकूल नहीं है ।
जि० ते० न० वि० वै० फूल नहीं है ॥

जिन को मिला बोध विश्राम, जीवनमुक्त बने निष्काम,
उन को हे शंकर श्रीधाम, तेरा न्याय त्रिशूल नहीं है ।
जि० ते० न० वि० वै० फूल नहीं है ॥

विनय

(दोहा)

प्यारे तू सब में बसे, तुझ में सब का वास।
ईश हमारा है तुही, हम सब तेरे दास॥

(शुद्धगात्मक राजगीत)

विधाता तू हमारा है, तुही विज्ञान दाता है।
बिना तेरी दया कोई, नहीं आनन्द पाता है॥
तितिक्षा की कसौटी से, जिसे तू जाँच लेता है।
उसी विद्याधिकारी को, अविद्या से छुड़ाता है॥
सताता जो न औरों को, न धोखा आप खाता है।
वही सद्भक्त है तेरा, सदाचारी कहाता है॥
सदा जो न्याय का प्यारी, प्रजा को दान देता है।
महाराजा ! उसी को तू, बड़ा राजा बनाता है॥
तजे जो धर्म को, धारा, कुकर्मों की बहाता है।
न ऐसे नीच पापी को, कभी ऊँचा चढ़ाता है॥
स्वयंभू शंकरानन्दी, तुझे जो जान लेता है।
वही कैवल्य सत्ता की, महत्ता में समाता है॥

———
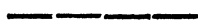
जिज्ञासु की जिज्ञासा

(दोहा)

जो मुझ से न्यारा नहीं, नित्य निरन्तर साथ।
हा ! वह विद्या के बिना, अबलों लगा न हाथ॥

(गीत)

प्रभु रहता है पास,
हा पर हाथ न आवे ॥
प्राणों से भी अति प्यारा, होता है कभी न न्यारा,
मुझ में करे निवास, भीतर बाहर पावे ।
प्र० र० पा० हा० हा० न आवे ॥
स्वामी स्वाभाविक सङ्गी, अङ्गों में टिका अनङ्गी,
अस्थिर भोग-विलास, रोचक रचे रिझावे ।
प्र० र० पा० हा० हा० न आवे ॥
जो दोप देख लेता है, तो उग्र दण्ड देता है,
उपजावे भय-त्रास, ताँस-ताँस तरसावे ।
प्र० र० पा० हा० हा० न आवे ॥
मेरे उद्योग न रोके, कर्मों को सदा विलोके,
मन में करे विकास, शंकर खेल खिलावे ।
प्र० र० पा० हा० हा० न आवे ॥
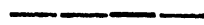
युगल विलास

(षट्पदी छन्द)

मन के हर्ष, विपाद, करें मोटा, कृश तन को ।
तन के रोग, विकास, दुःख सुख देते मन को ॥
ज्ञान, क्रिया उपजाय, फुरें चेतनता, जड़ता ।
इनका अन्तर भेद, निराला सूझ न पड़ता ॥

अद्वैत सर्व संघात के, पुरुष प्रकृति दो नाम हैं।
कूटस्थ शंकरानन्द में, सब मायिक परिणाम हैं॥

जलाले एज़्दी

(दोहा)

मत वालों को ब्रह्म का, मिलना है दुशवार।
क्या समझावेंगे उन्हें, शंकर के अशआर॥

(ग़ज़ल)

हर शाख़ से अयाँ है, हर सू जलाल तेरा।
माशूके बुलबुलाँ है, ऐ गुल जमाल तेरा॥
नाज़िर न देखता है, इन्साफ़ की नज़र से।
मन्ज़र दिखा रहे हैं, कामिल कमाल तेरा॥
वाइज़ बजा रहा है, तसलीम की सितारी।
माहिरे मुसल्लमा है, दिल बेमिसाल तेरा॥
मख़्लूत मानता है, मख़लूक़ में ख़ुदा को।
मुश्ताक़े मारिफ़त है, ख़ालिस ख़याल तेरा॥
अल्लाह को अलहदा, साबित करें जहाँ से।
दल्लाल हल न होगा, क्या यह सुआल तेरा॥
बे ख़ौफ़ कर रहा है, गुमराह जाहिलों को।
शैतान इस बदी से, जल जाय जाल तेरा॥

ग़ारत नहीं करेगा, उसको जहाने-फ़ानी ।
शंकर नसीब होगा, जिसको विसाल तेरा ॥

सच्ची सूचना

(दोहा)

खोल खिलोने खोखले, खेल पसार न खेल ।
प्रेमामृत पीले सखा, शंकर से कर मेल ॥

(सुन्दरात्मक राजगीत)

वह पास ही खड़ा है, पर दूर मानता है ।
किस भूल में पड़ा है, कुछ भी न जानता है ॥
हठवाद से हठीले, हरि का न मेल होगा ।
छल की कहानियों को, बस क्यों बखानता है ॥
सुनते कुराग तेरे, अब कान वे नहीं हैं ।
फिर तान बेतुकी को, किस हेतु तानता है ॥
जगदीश को भुलाया, जड़ का बना पुजारी ।
समझा पिसान पाया, पर धूलि छानता है ॥
लड़ती लड़ा रही है, अविवेकता मतों की ।
पशुता प्रमाद ही से, उसकी समानता है ॥
छलिया छुपा रहा है, अपनी अजानकारी ।
इस दम्भ की प्रथा में, भ्रम की प्रधानता है ॥
जिस वेद का सदा से, उपदेश हो रहा है ।
उसके विचारने का, प्रण क्यों न ठानता है ॥

कवि शंकरादि ने भी, जिसका न अन्त पाया।
उस ब्रह्म से निराली, कुछ भी न मानता है।

उपासना पञ्चक

(दोहा)

एक महत्ता में मिला, तुझको मुझको वास।
मेरी भाँति करे नहीं, पर तू भोग-विलास॥

(भुजङ्गप्रयातात्मक मिलिन्दपाद)

अजन्मा न आरम्भ तेरा हुआ है।
किसी से नहीं जन्म मेरा हुआ है॥
रहेगा सदा अन्त तेरा न होगा।
किसी काल में नाश मेरा न होगा॥
खिलाड़ी खुला खेल तेरा रहेगा।
मिटेगा नहीं मेल मेरा रहेगा॥१॥

अजा को अकेली न तू छोड़ता है।
मुझे भी जगज्जाल में जोड़ता है॥
न तू भोग भोगे बना विश्व योगी।
किया कर्मयोगी मुझे भोग-भोगी॥
निराला न तेरा बसेरा रहेगा।
मिटेगा नहीं मेल मेरा रहेगा॥२॥

निराकार आकार तेरा नहीं है।
किसी भाँति का मान मेरा नहीं है॥

सखा सर्व संघात से तू बड़ा है ।
मुझे तुच्छता में समाना पड़ा है ॥
उजाला रहेगा अँधेरा रहेगा ।
मिटेगा नहीं मेल मेरा रहेगा ॥३॥
अनेकत्व होगा न एकत्व तेरा ।
न एकत्व होगा अनेकत्व मेरा ॥
न त्यागे तुझे शक्ति सर्वज्ञता की ।
लगी है मुझे व्याधि अल्पज्ञता की ॥
दुई का घटाटोप घेरा रहेगा ।
मिटेगा नहीं मेल मेरा रहेगा ॥४॥
तुझे बन्ध-बाधा सताती नहीं है ।
मुझे सर्वदा मुक्ति पाती नहीं है ॥
प्रभो शंकरानन्द आनन्द-दाता ।
मुझे क्यों नहीं आपदा से छुड़ाता ॥
दया-दान का दीन चेरा रहेगा ।
मिटेगा नहीं मेल मेरा रहेगा ॥५॥

आरती

(दोहा)

भानु, चन्द्र, तारे, शिखी, चपला, उलका, पात❀ ।
शंकर तेरी आरती, करते हैं दिन रात ॥

❀ पात = ध्रुवज्योति

(मानस मराल छन्द)

जय शंकर स्वामी,
जय श्रीशंकर स्वामी।
अविचल अन्तर्यामी, एक अपरिणामी ॥
जय शंकर स्वामी ॥

मङ्गलमूल महत्ता, अतुलित श्रीमत्ता।
सत्य सनातन सत्ता, अजरामर अत्ता ॥
जय शंकर स्वामी ॥

व्यापक, विश्व-विहारी, अव्यय, अविकारी।
मुक्त, महाबल धारी, जन संकट हारी ॥
जय शंकर स्वामी ॥

लोचनहीन निहारे, मुख बिन उच्चारे।
बिन मस्तिष्क विचारे, निर्गुण गुण धारे ॥
जय शंकर स्वामी ॥

रच-रच न्यारे-न्यारे, भुवन भानु धारे।
तैजस पिण्ड पसारे, चमकें शशि, तारे ॥
जय शंकर स्वामी ॥

जल की तीत उड़ावे, बादल बरसावे।
अन्नादिक उपजावे, जगदुन्नति पावे ॥
जय शंकर स्वामी ॥

प्रकृति जीव को जोड़े, फिर उलटे मोड़े।
आप मिलाप न छोड़े, नेक न त्रिक तोड़े ॥

जय शंकर स्वामी ॥

अखिलाधार विधाता, सुख-जीवन-दाता ।
मित्र, बन्धु, गुरु, त्राता, परम पिता, माता ॥
जय शंकर स्वामी ॥

विरचे भोग अभोगी, सब के उपयोगी ।
कर्मविपाक वियोगी, अनघ, अनुयोगी ॥
जय शंकर स्वामी ॥

कपट-जाल से छूटें, छल के गढ़ टूटें ।
लण्ठ, लबार न लूटें, भ्रम के मठ फूटें ॥
जय शंकर स्वामी ॥

ललना जन्म न खोवें, कुल-विदुषी होवें ।
हा, कुलटा न बिगोवें, राँड न दुख रोवें ॥
जय शंकर स्वामी ॥

बालक ऊत न ऊलें, वीर न बल भूलें ।
वंश-कल्पतरु फूलें, जीवन-फल भूलें ॥
जय शंकर स्वामी ॥

सुख भोगें हम सारे, सब सब के प्यारे ।
जियें प्रजेश हमारे, कुल पालन हारे ॥
जय शंकर स्वामी ॥

वैर, विरोध विसारें, वैदिक व्रत धारें ।
धर्म सुकर्म प्रचारें, परहित विस्तारें ॥
जय शंकर स्वामी ॥

सामाजिक बल पावें, यश को अपनावें ।
सभ्य, सुबोध कहावें, प्रभु के गुण गावें ॥
जय शंकर स्वामी ॥

धर्मजिज्ञासा

(गीत)

हे जगदीश देव मन मेरा,
सत्य सनातन धर्म न छोड़े ॥

सुख में तुझको भूल न जावे, नेक न संकट में घबरावे,
धीर कहाय अधीर न होवे, तमक न तार क्षमा का तोड़े ।
हे ज० दे० म० मे० स० स० ध० न छोड़े ॥

त्याग जीव के जीवन-पथ को, टेढ़ा हाँक न दे तन-रथ को,
अति चञ्चल इन्द्रिय घोड़ों की, भ्रम से उलटी बाग न मोड़े ।
हे ज० दे० म० मे० स० स० ध० न छोड़े ॥

होकर शुद्ध महाव्रत धारे, मलिन किसी का माल न मारे,
धार घमण्ड क्रोध-पाहन से, हा ! न प्रेम-रस का घट फोड़े ।
हे ज० दे० म० मे० स० स० ध० न छोड़े ॥

ऊँचे विमल विचार चढ़ावे, तप से प्रातिभ ज्ञान बढ़ावे,
हठ तज मान करे विद्या का, शंकर श्रुति का सार निचोड़े ।
हे ज० दे० म० मे० स० स० ध० न छोड़े ॥

महा मनोरथ

(दोहा)

तन, मन, वाणी, आत्मा, बुद्धि, चरित्र, पवित्र ।
जो कर लेता है वही, परम मित्र का मित्र ॥

(भजन)

हितकारी तुझ-सा नाथ,
न अपना और कहीं कोई ॥

शुद्ध किया पानी से तन को, सत्यामृत से मैले मन को,
बुद्धि मलीन ज्ञान-गङ्गा में, बार-बार धोई ।
हि० तु० ना० न० औ० क० कोई ॥

ज्वलित ज्योति विद्या की जागी, रही न भूल अविद्या भागी,
कर्म सुधार मोह की माया, खोज-खोज खोई ।
हि० तु० ना० न० औ० क० कोई ॥

मार तपोबल के अङ्गारे, पातक-पुञ्ज पजारे सारे,
उमगा योग आत्मा अपना, भाव भूल भोई ।
हि० तु० ना० न० औ० क० कोई ॥

शंकर पाय सहारा तेरा, होगा सिद्ध मनोरथ मेरा,
दीनदयालु इसीसे मैंने, प्रेम-बेलि बोई ।
हि० तु० ना० न० औ० क० कोई ॥

———

कृपाभिलाषी

(दोहा)

तारक तेरा नाम है, जो शंकर भगवान।
तो हमको भी तारदे, छोड़ न अपनी बान॥

(गीत)

ऐसी अमित कृपा कर प्यारे॥

मेघ महा भ्रम के उड़ जावें, तर्क-पवन के मारे,
दिव्य ज्ञान-दिनकर के आगे, खिलें न दुर्मति-तारे।

ऐसी अमित कृपा कर प्यारे॥

वैदिक सिद्ध सुधारें हम को, छूटें अवगुण सारे,
न्याय, नीति बलसे अपनावें, हमको मित्र हमारे।

ऐसी अमित कृपा कर प्यारे॥

रहें न सब देशी परदेशी, सुख–समाज से न्यारे,
डूब मरें संकट-सागर में, पतित प्रेम हत्यारे।

ऐसी अमित कृपा कर प्यारे॥

अबतो सुन पुकार पुत्रों की, हे पितु पालन हारे,
शंकर क्या हम से बहुतेरे, अधम नहीं उद्धारे।

ऐसी अमित कृपा कर प्यारे॥

———

पाँच पिशाच

(दोहा)

शोणित पीते हैं सदा, अटके पाँच पिशाच।
पाँचों में मुखिया बना, प्रबल पञ्च नाराच॥

(गीत)

पाँच पिशाच रुधिर पीते हैं।
काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह से, हा किस के तन-मन रीते हैं।
पाँच पिशाच रुधिर पीते हैं॥
पूरे रिपु चेतन-कुरङ्ग के, हरि, वृक, भालु, बाघ, चीते हैं।
पाँच पिशाच रुधिर पीते हैं॥
छुटें न इन से पिण्ड हमारे, अगणित जन्म वृथा बीते हैं।
पाँच पिशाच रुधिर पीते हैं॥
शंकर वीर बलिष्ठ वही है, जिस ने ये प्रतिभट जीते हैं।
पाँच पिशाच रुधिर पीते हैं॥

व्याकुल-विलाप

(दोहा)

घेर रहे छोड़ें नहीं, अटके पाप कठोर।
दीनानाथ निहार तू, मुझ व्याकुल की ओर॥

(गीत)

हे प्रभु मेरी ओर निहार।

एक अविद्या का अटका है, पचरंगी परिवार,
मेल मिलाय एषणा तीनों, करती हैं कुविचार।
हे प्रभु मेरी ओर निहार॥

काट रहे कामादि कुचाली, धार कुकर्म-कुठार,
जीवन-वृक्ष खसाया, सूखा, पौरुष-पाल-पसार।
हे प्रभु मेरी ओर निहार॥

घेर रहे वैरी विषयों के, बन्धन रूप विकार,
लाद दिये सब ने पापों के, सिर पर भारी भार।
हे प्रभु मेरी ओर निहार॥

जो तू करता है पतितों का, अपनाकर उद्धार,
तो शंकर मुझ पापी को भी, भव-सागर से तार।
हे प्रभु मेरी ओर निहार॥

अपनी अधमता

(दोहा)

लोगो मन-मानी कहो, कुछ न करो संकोच।
और न मेरे जोड़ का, पतित पातकी पोच॥

(गीत)

मुझसा कौन अबोध अधम है।

समता मिटी सत्व, रज, तम की, गौणिक विकृति विषम है,

सुखद विवेक-प्रकाश कहाँ है, नरक रूप भ्रम-तम है।

मुझसा कौन अबोध अधम है॥

मन में विषय-विकार भरे हैं, तन में अकड़ न कम है,

रहा न प्रेम-विलास वचन में, तनक न त्रिक संयम है।

मुझसा कौन अबोध अधम है॥

विकट वितण्डावाद निगम है, कपट जटिल आगम है,

मंगलमूल मनोरथ अपना, अनुपकार अनुपम है।

मुझसा कौन अबोध अधम है॥

अब कुछ धर्म-भाव उपजा है, यह अवसर उत्तम है,

पर करुणासागर शंकर का, न्याय न निपट नरम है।

मुझसा कौन अबोध अधम है॥

हताश की हा! हा!

(दोहा)

डूबे संसृति-सिंधु में, देह-पोत बहु बार।

शंकर! बेड़ा दीन का, अब तो करदे पार॥

(गीत)

डगमग डोले दीनानाथ !

नैया भव-सागर में मेरी ॥

मैं ने भर-भर जीवन-भार, छोड़े तन-बोहित बहुबार,

पहुँचा एक नहीं उस पार, यह भी काल-चक्र ने घेरी।

ड० डो० दी० नै० भ० मेरी ॥

मुड़का मेरुदण्ड-पतवार, कर-पग-पाते चलें न चार,

सकुचा मन-माझी हिय हार, पूरी दुर्गति रात अँधेरी।

ड० डो० दी० नै० भ० मेरी ॥

ऊलें अघ, झष, नक्र, भुजंग, झटकें-पटकें ताप-तरंग,

तरती कर्म-पवन के संग, भागे भरती है चकफेरी।

ड० डो० दी० नै० भ० मेरी ॥

ठोकर मरणाचल की खाय, फट कर डूब जायगी हाय,

शंकर अबतो पार लगाय, तेरी मार सही बहुतेरी।

ड० डो० दी० नै० भ० मेरी ॥
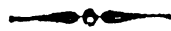
(दोहा)

भक्ति-भूमिका पै बना, मंदिर दृढ़ विश्वास।

राग-रत्न का हो रहा, मंगलकर उल्लास ॥

अनुराग-रत्न

भद्रोद्भास

(यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति)

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः ।
दिवीव चक्षुराततम् ॥ ऋ० १।२।७।२० ॥

(ब्रह्मनाद)

समाधिनिर्धूत मलस्य चेतसो, निवेशि तस्यात्मनि यत्सुखं भवेत् ,
नशक्यते वर्णयितुं गिरा तदा, स्वयं तदन्तःकरणेन गृह्यते ॥

सत्य का महत्त्व

(महालक्ष्मी वृत्त)

सत्य संसार का सार है । सत्य का शुद्ध व्यापार है ॥
सत्य सद्धर्म का धाम है । सत्य सर्वज्ञ का नाम है ॥

गुरु-गुण-गान

(रुचिरा छंद)

जिस अखिलेश अकाय एक ने, खेल अनेक पसारे हैं।
जिस असीम चेतन के वश में, जीव चराचर सारे हैं॥
जिस गुण हीन ज्ञान-सागर ने, सब गुण धारी धारे हैं।
उसके परम भक्त बुध योगी, श्रीगुरुदेव हमारे हैं॥

सद्गुरु-गौरव

(दोहा)

जिसके ज्ञानागार में, प्रतिभा करे विलास।
बीज विश्व-विज्ञान का, समझो उसके पास॥

(गीत)

जिसमें सत्य सबोध रहेगा,
कौन उसे सद्गुरु न कहेगा॥
जो विचार विचरेगा मन में, अर्थ बसेगा वही वचन में,
भेद न होगा कर्म, कथन में, तीन भाँति रस एक बहेगा।
जि० स० स० र० कौ० उ० स० न कहेगा॥
सद्गुण-गण-गौरव तोलेगा, पोल कपट, छल की खोलेगा,
जय प्रमाण-प्रण की बोलेगा, मार मार-भट की न सहेगा॥
जि० स० स० र० कौ० उ० स० न कहेगा॥
मोह-महासुर से न डरेगा, कुटिलों में ऋजु भाव भरेगा,
उन्नति के उपदेश करेगा, गैल अधोगति की न गहेगा।
जि० स० स० र० कौ० उ० स० न कहेगा॥

धर्म सुधार अधर्म तजेगा, योग सिद्ध शुभ साज सजेगा,
शंकर को धर ध्यान भजेगा, दुःख-हुताशन में न दहेगा॥
जि० स० स० र० कौ० उ० स० न कहेगा॥

जीवनमुक्तों के नाम

(दोहा)

होने लगता है जहाँ, परम-धर्म का ह्रास।
योगी करते हैं वहाँ, दूर अधर्मज त्रास॥

(गीत)

सुनो रे साधो,
मङ्गल-मण्डित नाम॥

अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा, प्रकटे पूरण काम,
ब्रह्मा, मनु, वसिष्ठ ने पाया, उच्च विशद विश्राम।
सु० सा० मं० मं० नाम॥

धर्माधार अखण्ड प्रतापी, राम लोकअभिराम,
योगिराज अद्वैत विवेकी, यादवेन्द्र घनश्याम।
सु० सा० मं० मं० नाम॥

विद्या-वारिधि व्यास देव ने, समझे ऋग्यजु साम,
सिद्ध प्रसिद्ध महा विज्ञानी, शुद्ध बुद्ध सुखधाम।
सु० सा० मं० मं० नाम॥

शंकरादि नामी पुरुषों के, गाय-गाय गुण-ग्राम,
करिये दयानन्द स्वामी को, श्रद्धा सहित प्रणाम।
सु० सा० मं० मं० नाम ॥

मोक्ष पर सदुक्ति

(अभिनव वृत्त)

कौन मानेगा नहीं, इस उक्ति को—
गाढ़ निद्रा-सी कहें, यदि मुक्ति को।
खोखली है भावना, उस अन्ध की—
मानता है जो नहीं, दृढ़ युक्ति को॥

प्रशस्त पाठ

(दोहा)

नाना कारण दुःख के, सुख के हेतु अनेक।
साधन है कैवल्य का, केवल एक विवेक॥

(सगणात्मक सवैया)

(१)

बिन वास बसे वसुधा-भर में, द्रवता रसहीन बहे वन में।
चमके बिन रूप हुताशन में, विचरे बिन छूत प्रभञ्जन में॥
गरजे बिन शब्द खमण्डल में, बिन भेद रहे जड़-चेतन में।
कवि शंकर ब्रह्म विलास करे, इस भाँति विवेक-भरे मन में॥

(२)

शुभ सत्य सनातन धर्म वही, जिस में मत-पन्थ अनेक नहीं ।
बल वर्द्धक वेद वही जिस में, उपदेश अनर्थक एक नहीं ॥
अविकल्प समाधि वही जिसमें, सुख-संकट का व्यतिरेक नहीं ।
कवि शंकर बुद्ध विशुद्ध वही, जिस के मन में अविवेक नहीं ॥

(३)

मिल वैदिक मंत्र-पयोद घने, सुविचार-महाचल पै बरसें ।
विधि और निषेध प्रवाह बहें, उपदेश-तड़ाग भरे दरसें ॥
व्रत-साधन -वृक्ष बढ़ें विकसें, लटकें फल चार पकें सरसें ।
कवि शंकर मूढ़ विवेक बिना, इस रूपक के रस को तरसें ॥

(४)

जड़-चेतन भूत अधीन रहें, गुण साधन दान करें जिसको ।
सब को अपनाय सुधार करें, शुभचिन्तक रोक रहें रिस को ॥
बन जीवनमुक्त सुखी विचरें, तज मौखिक दंत घिसाघिस को ।
कवि शंकर ब्रह्म विवेक बिना, इतने अधिकार मिलें किसको ॥

(५)

गिन खेट भकूट खमण्डल में, फल ज्योतिष के पहचान लिये ।
कर शिल्प रसायन की रचना, रच भौतिक तत्व विधान लिये ॥
समझे गुण-दोष चराचर के, नव द्रव्य यथाक्रम मान लिये ।
कवि शंकर ज्ञान-विशारद ने, सब के सब लक्षण जान लिये ॥

(६)

परिवार विलास विसार दिये, क्षणभंगुर भोग भरे घर में ।
समता उपजी ममता न रही, अपवित्र अनित्य कलेवर में ॥

अभिमान मरा भ्रम-दोष मिटे, अनुराग रहा न चराचर में।
कवि शंकर पाय विवेक टिके, इस भाँति महा मुनि शंकर में॥

(७)

भ्रम-कुम्भ असार असत्य भरे, गिर सत्य-शिला पर फूट गये।
हठवाद, प्रमाद, न पास रहे, दृढ़ मायिक बन्धन टूट गये॥
समझे अज एक सदाशिव को, कुविचार, कुलक्षण छूट गये।
कवि शंकर सिद्ध, प्रसिद्ध, सुधी, सुख-जीवन का रस लूट गये॥

(८)

सुरपादप निर्भय न्याय बने, घनश्याम घटा बन जाय दया।
रुचि-भू पर प्रीति-सुधा बरसे, बन ब्यार बहे करनी अभया॥
उपकार मनोहर फूल खिलें, सब को दरसे नय दृश्य नया।
कवि शंकर पुण्य फले उसका, जिस में गुरु-ज्ञान समाय गया॥

(९)

कब कौन अगाध पयोनिधि के, उस पार गया जलयान बिना।
मिल प्राण, अपान, उदान, रहें, तन में न समान, सव्यान बिना॥
कहिये ध्रुव ध्येय मिला किस को, अविकल्प अचञ्चल ध्यान बिना।
कवि शंकर मुक्ति न हाथ लगी, भ्रम नाशक निर्मल ज्ञान बिना॥

(१०)

पढ़ पाठ प्रचण्ड प्रमाद भरे, कपटी जन जन्म गमाय गये।
रण रोप भयानक आपस में, भट केवल पाप कमाय गये॥
धन, धाम बिसार धरातल में, धनवान असंख्य समाय गये।
कवि शंकर सिद्ध मनोरथ की, जड़ शुद्ध सुबोध जनाय गये॥

(११)

उपदेश अनेक सुने मन को, रुचि के अनुसार सुधार चुके ।
धर ध्यान यथाविधि मन्त्र जपे, पढ़ वेद पुराण विचार चुके ।।
गुरु-गौरव धार महन्त बने, धन धाम कुटुम्ब विसार चुके ।
कवि शंकर ज्ञान बिना न तरे, सब ओर फिरे झख मार चुके ।।

(१२)

निगमागम, तंत्र, पुराण पढ़े, प्रतिवाद प्रगल्भ कहाय खरे ।
रच दम्भ प्रपञ्च पसार घने, बन वञ्चक वेश अनेक धरे ।।
विचरे कर पान प्रमाद-सुरा, अभिमान-हलाहल खाय मरे ।
कवि शंकर मोह-महोदधि को, वकराज विवेक बिना न तरे ।।

(१३)

गुरु-गौरव हीन कुचाल चलें, मत भेद पसार प्रपञ्च रचें ।
दिन-रात मनोमुख मूढ़ लड़ें, चहुँ ओर घने घमसान मचें ।।
व्रत-बन्धन के मिस पाप करें, हठ छोड़ न हाय लबार लचें ।
कवि शंकर मोह-महासुर से, विरले जन पाय विवेक बचें ।।

(१४)

घर बार विसार विरक्त बने, मुनि वेश बनाय प्रमत्त रहें ।
वकवाद अबोध गृहस्थ सुनें, शठ शिष्य अनन्य सुजान कहें ।।
घुस घोर घमण्ड महा वन में, विचरें कुलबोर कुपन्थ गहें ।
कवि शंकर एक विवेक बिना, कपटी उपताप अनेक सहें ।।

(१५)

तन सुन्दर रोग विहीन रहे, मन त्याग उमङ्ग उदास न हो ।
मुख धर्म प्रसङ्ग प्रकाश करे, नर-मण्डल में उपहास न हो ।।

धन की महिमा भरपूर मिले, प्रतिकूल मनोज-विलास न हो ।
कवि शंकर ये उपभोग वृथा, पटुता, प्रतिमा यदि पास न हो ॥

(१६)

दिन-रात समोद विलास करें, रस-रङ्ग भरे सुख-साज बने ।
शिर धार किरीट कृपाण गहें, अवनी-भर के अधिराज बने ॥
अनुकूल अखण्ड प्रताप रहे, अविरुद्ध अनेक समाज बने ।
कवि शंकर वैभव ज्ञान विना, भवसागर के न जहाज बने ॥

(१७)

जिस पै करतूत चली न किसी, नर, किन्नर, नाग, सुरासुर की ।
बल साहस के फल से न भिड़ी, हठ भीरु, भगोड़ भयातुर की ॥
गति उद्यम के मग में न रुकी, अति उच्च उमङ्ग भरे उरकी ।
कवि शंकर पै बिन ज्ञान उसे, प्रभुता न मिली प्रभुके पुरकी ॥

(१८)

अनमेल अनीति प्रचार करें, अपवित्र प्रथा पर प्यार करें ।
खल-मण्डल का उपकार करें, बिगड़े न समाज-सुधार करें ॥
अपकार अनेक पुकार करें, व्यभिचार सुकर्म विसार करें ।
कवि शंकर नीच विचार करें, बिन बोध बुरे व्यवहार करें ॥

(१९)

कुलबोर कठोर महा कपटी, कब कोमल-कर्म-कलाप करें ।
पशु पोच प्रचण्ड प्रमाद भरे, भर-पेट भयानक पाप करें ॥
प्रण रोप लड़ें लघु आपस में, तज वैर न मेल-मिलाप करें ।
कवि शंकर मूढ़ विवेक बिना, अपना गल-बन्धन आप करें ॥

(२०)

बिन पावक देव न पा सकते, अभिमन्त्रित आहुतियाँ हवि की ।
रसराज न सुन्दर साज सजे, छिटके मिल जो न छटा छवि की ॥
ग्रह ऋत्त खिलें नखमण्डल में, यदि प्यार करे न प्रभा रवि की ।
कवि शंकर तो बिन ज्ञान किसे, पदवी मिलजाय महाकवि की ॥

ब्रह्मचर्य का महत्त्व

(दोहा)

रहे जन्म से मृत्यु लों, ब्रह्मचर्य व्रत धार ।
समझो ऐसे वीर को, पौरुष पुरुषाकार ॥१॥
बाल ब्रह्मचारी जहाँ, उपजें परमोदार ।
शंकर होता है वहाँ, सबका सर्व-सुधार ॥२॥
बाल ब्रह्मचारी रहे, पाय प्रताप-अखण्ड ।
पाठक आगे देखलो, पाँच प्रमाण प्रचण्ड ॥३॥

प्रशस्त पञ्चक

(त्रिविरामात्मक मिलिन्दपाद)

(१)

पुरुषोत्तम परशुराम

चूका कहीं न, हाथ गले, काटता रहा ।
पैना कुठार, रक्त वसा, चाटता रहा ॥

भागे भगोड़, भीरु भिड़ा, धीर न कोई ।
मारे महीप, वृन्द बचा, वीर न कोई ॥
सुप्रसिद्ध राम, जामदग्न्य, का कुदान ❀ है ।
महिमा अखण्ड, ब्रह्मचर्य, की महान है ॥

(२)

महावीर हनुमान

सुग्रीव का सु, मित्र बड़े, काम का रहा ।
प्यारा अनन्य, भक्त सदा, राम का रहा ॥
लङ्का जलाय, काल खलों, को सुझा दिया ।
मारे प्रचण्ड, दुष्ट दिया, भी बुझा दिया ॥
हनुमान बली, वीर वरों, में प्रधान है ।
महिमा अखण्ड, ब्रह्मचर्य, की महान है ॥

(३)

राजर्षि भीष्मपितामह

भूला न किसी, भाँति कड़ी, टेक टिकाना ।
माना मनोज, का न कहीं, ठीक ठिकाना ॥
जीते असंख्य, शत्रु रहा, दर्प दिखाता ।
शय्या शरों की, पाय मरा, धर्म सिखाता ॥
अब एक भी न, भीष्म बली, सा सुजान है ।
महिमा अखण्ड, ब्रह्मचर्य, की महान है ॥

❀ कुदान = भूमिदान, खोटादान, उछलकूद ।

(४)

महात्मा शंकराचार्य

संसार सार, हीन सड़ा, सा उड़ा दिया।
अल्पज्ञ जीव, मन्द दशा, से छुड़ा दिया॥
अद्वैत एक, ब्रह्म सबों, को बता दिया।
कैवल्य-रूप, सिद्धि-सुधा, का पता दिया॥
भ्रम-भेद भरा, शंकरेश, का न ज्ञान है।
महिमा अखण्ड, ब्रह्मचर्य, की महान है॥

(५)

स्वामी दयानन्द सरस्वती

विज्ञान पाठ, वेद पढ़ों, को पढ़ा गया।
विद्या-विलास, विज्ञ वरों, का बढ़ा गया॥
सारे असार, पन्थ मतों, को हिला गया।
आनन्द-सुधा, सार दया, का पिला गया॥
अब कौन दया, नन्द यती, के समान है।
महिमा अखण्ड, ब्रह्मचर्य, की महान है॥

महर्षि दयानन्द का उपकार

(राजगीत)

आनन्द सुधासार दयाकर पिला गया।
भारत को दयानन्द दुबारा जिला गया॥

डाला सुधार वारि बढ़ी बेल मेल की।
देखो समाज फूल फबीले खिला गया॥
काटे कराल जाल अविद्या अधर्म के।
विद्या-वधू को धर्म्म-धनी से मिला गया॥
ऊँचे चढ़े क्रूर कुचाली गिरा दिये।
यज्ञाधिकार वेद पढ़ों को दिला गया॥
खोली कहाँ न पोल ढके ढोंग ढोल की।
संसार के कुपंथ मतों को हिला गया।
'शंकर' दिया बुझाय दिवाली को देह का।
कैवल्य के विशाल वदन में विला गया॥

सद्गुरु-प्रसाद

(दोहा)

विज्ञ वेद-वक्ता मिले, श्री गुरु देव दयालु।
ब्रह्मानन्दी बन गये, सेवक सब श्रद्धालु॥

(गीत)

श्री गुरु दयानन्द से दान,
हमने ब्रह्मानन्द लिया है॥
लेकर वेदों का उपदेश, देखा परम धर्म का देश,
जाना मंगलमूल महेश, ज्ञानागार पवित्र किया है।
श्री० द० दा० ह० ब्र० लिया है॥

पाये युक्ति-प्रमाण प्रचण्ड, जिन से जीत लिया पाखण्ड ,
मारा देकर दण्ड घमण्ड, हठ का भण्डा फोड़ दिया है ।
श्री० द० दा० ह० ब्र० लिया है ॥

भ्रम की तारतम्यता तोड़, उलझे जाल मतों के छोड़ ,
उलटे पन्थों से मुख मोड़, प्रतिभा का पीयूष पिया है ।
श्री० द० दा० ह० ब्र० लिया है ॥

मुनि की शिक्षा का बल धार, पूजा प्रेम विरोध विसार ,
शंकर कर दे बेड़ा पार, जीवनदाता योग जिया है ।
श्री० द० दा० ह० ब्र० लिया है ॥

सद्गुरु-घोषणा

(षट्पदी छन्द)

ब्रह्म विचार प्रचार, ध्यान शंकर का धरना ।
जाल, प्रपंच, पसार, न पूजा जड़ की करना ॥
भूत, प्रेत, अवतार, और तज श्राद्ध मरों के ।
धर्म सुयश, विस्तार, गहो गुण विज्ञवरों के ॥
भ्रम, भूलों की संशोधना, शुभ सामयिक सुधार है ।
यह वेदों की उद्बोधना, सुन गुरु गौरव सार है ॥

सद्गुरु का सच्छिष्य

(दोह)

सीखे श्रीगुरुदेव से, ज्ञान-कथा अति गूढ़ ।
तो भी महिमा ब्रह्म की, हाय ! न समझे मूढ़ ॥

(गीत)

श्रीगुरु गूढ़ ज्ञान के दानी ॥
देख सर्व संघात ब्रह्म की, अटल एकता जानी ,
भेदों से भरपूर अविद्या, भूल-भरी पहचानी ।
श्रीगुरु गूढ़ ज्ञान के दानी ॥
एक वस्तु में तीन गुणों की, मायिक महिमा मानी ,
ठोस, पोल की तारतम्यता, मूल प्रकृति ने ठानी ।
श्रीगुरु गूढ़ ज्ञान के दानी ॥
देश, दिशा, आकाश, काल, भू , मारुत, पावक, पानी ,
इन के साथ जीव की जागी, ज्योति मनोरस सानी ।
श्रीगुरु गूढ़ ज्ञान के दानी ॥
छोटासा उपदेश दिया है, बढ़िया बात बखानी ,
तो भी मूढ़ नहीं समझेंगे, शङ्कर कूट कहानी ।
श्रीगुरु गूढ़ ज्ञान के दानी ॥

(दोहा)

विज्ञानी गुरु देव ने, दूर किया भ्रम-रोग
आज अविद्या-बन्ध से, मुक्त हुए हम लोग ॥

———

वैदिक वीरों की प्रतिज्ञा

(रूपघनाक्षरी कवित्त)

पद्धति न छोड़ेंगे प्रतापी धर्म धारियों की,
पापी वक्र गामियों की गैल न गहेंगे हम।
सेवक बनेंगे ब्रह्मचारी, साधु, पण्डितों के,
मानी मूढ़ मण्डल के साथी न रहेंगे हम॥
पावे शुद्ध सम्पदा तो भोगें सुख-भोग सदा,
आपदा पड़े तो सारे संकट सहेंगे हम।
जीवन सुधारें एक तेरी भक्ति भावना से,
दीनानाथ शंकर सँगाती से कहेंगे हम॥

भारतोदय

(दोहा)

देगी शंकर की दया, अब आनन्द अपार।
देखो ! भारत का हुआ, उदय दूसरी बार॥

(गीतिकात्मक मिलिन्दपाद)

(१)

ब्रह्मचारी ब्रह्म-विद्या, का विशद विश्राम था।
धर्मधारी धीर योगी, सर्व सद्गुण-धाम था॥
कर्मवीरों में प्रतापी, पर निरा निष्काम था।
श्री दयानन्दर्षि स्वामी, सिद्ध जिस का नाम था॥

बीज विद्या के उसी का, पुण्य-पौरुष बोगया।
देख लो लोगो दुबारा, भारतोदय होगया॥

(२)

सत्यवादी वीर था जो, वाचनिक संग्राम का।
साहसी पाया किसी को, भी न जिस के काम का॥
प्राण दे प्रेमी बना जो, प्रेम के परिणाम का।
क्या दया आनन्द धारी, धीर था वह नाम का॥
धन्य सच्छिक्षा-सुधा से, धर्म का मुख धोगया।
देख लो लोगो दुबारा, भारतोदय होगया॥

(३)

साधु-भक्तों में सुयोगी, संयमी बढ़ने लगे।
सभ्यता की सीढ़ियों पै, सूरमा चढ़ने लगे॥
वेदमन्त्रों को विवेकी, प्रेम से पढ़ने लगे।
वंचकों की छातियों में, शूल-से गढ़ने लगे॥
भारती जागी अविद्या, का कुलाहल सोगया।
देख लो लोगो दुबारा, भारतोदय होगया॥

(४)

कामना विज्ञान वादी, मुक्ति की करने लगे।
ध्यान द्वारा धारणा में, ध्येय को धरने लगे॥
आलसी, पापी, प्रमादी, पाप से डरने लगे।
अन्ध विश्वासी सचाई, भूल में भरने लगे॥

धूलि मिथ्या की उड़ादी, दम्भ दाहक रोगया।
देख लो लोगो दुबारा, भारतोदय होगया॥

(५)

तर्क—झंझा के झकोले, झाड़ते चलने लगे।
युक्तियों की आग चेती, जालिया जलने लगे॥
पुण्य के पौधे फबीले, फूलने फलने लगे।
हाथ हत्यारे हठीले, मादकी मलने लगे॥
खेल देखे चेतना के, जड़ खिलौना खोगया।
देख लो लोगो दुबारा, भारतोदय होगया॥

(६)

तामसी थोथे मतों की, मोह-माया हट गई।
ऐंठ की पोली पहाड़ी, खण्डनों से फट गई॥
छूतछैया की अछूती, नाक लम्बी कट गई।
लालची, पाखण्डियों की, पेट-पूजा घट गई॥
ऊत-भूतों का बखेड़ा, डूब मरने को गया।
देख लो लोगो दुबारा, भारतोदय होगया॥

(७)

राजसत्ता की महत्ता, धन्य मङ्गलमूल है।
दण्ड भी काँटा नहीं है, न्याय-तरु का फूल है॥
भावना प्यारी प्रजा की, धर्म के अनुकूल है।
जो बना वैरी, विरोधी, हाय उसकी भूल है॥

क्या जिया जो दुष्टता का, भार आकर ढोगया।
देख लो लोगो दुबारा, भारतोदय होगया॥

(८)

सत्य के साथी विवेकी, मृत्यु को तर जायँगे।
ज्ञान-गीता गाय भोलों, का भला कर जायँगे॥
अन्ध-अज्ञानी अँधेरे, में पड़े मर जायँगे।
आप डूबेंगे अविद्या, देश में भर जायँगे॥
शंकरानन्दी वही है, जान शिवको जो गया।
देखलो लोगो दुबारा, भारतोदय होगया॥

उद्‌बोधनाष्टक

(दोहा)

भूल न दीनानाथ को, कर्म, विचार सुधार।
यों हो सकता है सखा, भव-सागर से पार॥

(सरसी छन्द)

काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह की, पँचरंगी कर दूर।
एक रंग तन, मन, वाणी में, भर ले तू भरपूर॥
प्रेम पसार न भूल भलाई, वैर, विरोध विसार।
भक्ति-भाव से भज शंकर को, धर्म दया उर धार॥ १॥

देख, कुदृष्टि न पड़ने पावे, पर वनिता की ओर।
विवश किसी को नहीं सुनाना, कोई वचन कठोर॥

अबला, अबलों को न सताना, पाय बड़ा अधिकार।
भक्ति-भाव से भज शंकर को, धर्म दया उर धार॥ २॥

आय न उलझें मत वालों के, छल, पाखण्ड, प्रमाद।
नेक न जीवन-काल बिताना, कर कोरे बकवाद॥
बांटें मुक्ति ज्ञान बिन उनको, जान अजान लबार।
भक्ति-भाव से भज शंकर को, धर्म दया उर धार॥ ३॥

हिंसक, मद्यप, आमिष-भोजी, कपटी, वञ्चक, चोर।
ज्वारी, पिशुन, चबोर, कृतघ्नी, जार, हठी, कुलबोर॥
असुर, आततायी, नृप-द्रोही, इन सब को धिक्कार।
भक्ति-भाव से भज शंकर को, धर्म दया उर धार॥ ४॥

जो सब छोड़ सदा फिरते हैं, निर्भय देश-विदेश।
तर्क-सिद्ध श्रेयस्कर जिन से, मिलते हैं उपदेश॥
ऐसे अतिथि महापुरुषों का, कर सादर सत्कार।
भक्ति-भाव से भज शंकर को, धर्म दया उर धार॥ ५॥

माता, पिता, सुकवि, गुरु, राजा, कर सबका सम्मान।
रुग्ण, अनाथ, पतित, दीनों को, दे जल, भोजन दान॥
सुभट, गदारि, शिल्पकारों को, पूज सुयश विस्तार।
भक्ति-भाव से भज शंकर को, धर्म दया उर धार॥ ६॥

लगन लगाय धर्मपत्नी से, कुल की बेलि बढ़ाय।
कर सुधार दुहिता, पुत्रों का, वैदिक पाठ पढ़ाय॥

सज्जन, साधु, सुहृद्, मित्रों में, बैठ विचार प्रचार।
भक्ति-भाव से भज शंकर को, धर्म दया उर धार ॥७॥

पाल कुटुम्ब सदुद्यम द्वारा, भोग सदा सुख भोग।
करना सिद्ध ज्ञान-गौरव से, निश्रेयस-प्रद योग ॥
जप, तप, यज्ञ, दान, देवेंगे, जीवन के फल चार।
भक्ति-भाव से भज शंकर को, धर्म दया उर धार ॥८॥

प्रबोध पञ्चक

(दोहा)

जानेगा जगदीश को, जो जन छोड़ कुकर्म।
क्यों न सुधारेगा उसे, सत्य सनातन धर्म ॥

(प्रमाणिकात्मक मिलिन्दपाद)

सुधार धर्म कर्म को। विसार दो अधर्म को ॥
बढ़ाय वेलि प्रीति की। कथा सुनीति रीति की ॥
सुना करो अनेक से।
मिलो महेश एक से ॥ १ ॥

बनाय ब्रह्मचर्य को। मनाय विज्ञवर्य को ॥
षडङ्ग वेद को पढ़ो। सुबोध शैल पै चढ़ो ॥
सुधी बनो विवेक से।
मिलो महेश एक से ॥ २ ॥

रिझाय धर्मराज को । भजो भले समाज को ।
मिटाय जाति-पाँति के । विरोध भाँति-भाँति के ॥
छुड़ाय छेक छेक से ।
मिलो महेश एक से ॥ ३ ॥

जगाय ब्रह्म-योग को । भगाय कर्म-भोग को ॥
बसाय ज्ञेय ज्ञान में । धसाय ध्येय ध्यान में ॥
समाधि सीख भेक से ।
मिलो महेश एक से ॥ ३ ॥

जनाय जाल-जल्पना । करो न कूट कल्पना ॥
विचार शंकरादि के । रहस्य हैं ऋगादि के ॥
उन्हें टिकाय टेक से ।
मिलो महेश एक से ॥ ५ ॥

सावधान रहो

(दोहा)

जाना जिसने आपको, भ्रम के भेद विसार ।
मित्र उसी तल्लीन का, है शंकर करतार ॥

(भुजंग्यात्मक राजगीत)

महादेव को भूल जाना नहीं,
किसी और से लौ लगाना नहीं ॥

बनो ब्रह्मचारी पढ़ो वेद को,
द्विजाभास कोरे कहाना नहीं ॥
करो प्यार पूरा सदाचार पै,
दुराचार से जी जलाना नहीं ॥
निरालस्य विद्या बढ़ाते रहो,
अविद्या-नटी को नचाना नहीं ॥
रहो खोलते पोल पाखण्ड की,
खलों की प्रतिष्ठा बढ़ाना नहीं ॥
बड़ाई करो ज्ञान-विज्ञान की,
महामोह की मार खाना नहीं ॥
अहिंसा न छोड़ो दया-दान दो,
किसी जीव को भी सताना नहीं ॥
सुना के रसीली कथा जाल की,
मरी मण्डली को रिझाना नहीं ।
विना याचना और की वस्तु को,
ठगी से न लेना चुराना नहीं ॥
छुआछूत से जाति के मेल को,
घृणा के गढ़े में गिराना नहीं ॥
न छूना छड़ी जाति-विद्रोह की,
प्रजा की प्रशंसा घटाना नहीं ॥
महाशोक सन्ताप के सिन्धु में,
गिरा नारियों को डुबाना नहीं ॥

चलाना सदुद्योग से जीविका,
दिखा लोभ-लीला कमाना नहीं ॥
न चूको मिलो शंकरानन्द से,
निरे तर्क के गीत गाना नहीं ॥

सदुपदेश

(दोहा)

मत पन्थों में जाल के, देख चुका सब देश ।
भोले अब तो मानले, शंकर का उपदेश ॥

(रुचिरात्मक राजगीत)

शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म का, भक्ति भाव से ध्यान करो,
कर्मयोग साधन के द्वारा. सिद्ध ज्ञान-विज्ञान करो ।
वेद-विरोधी पन्थ विसारो, मन्द मतों से दूर रहो,
करते रहो सत्य की सेवा, गुरु लोगों का मान करो ।
शुभ सुदृश्य देखो विद्या के, धूलि अविद्या पर डालो,
अपने गुण, आविष्कारों का, सब देशों को दान करो ।
चारों ओर सुयश विस्तारो, पुण्य-प्रतिष्ठा को पकड़ो,
जाति-भक्ति के साथ प्रजा की, पूजा का अभिमान करो ।
छोड़ो उन कामों को जिनसे, औरों का उपकार न हो,
वैर त्याग, पीयूष प्रेम का, सभ्य-सभा में पान करो ।

प्राण हरो आलस्यासुर के, रक्षा करो सदुद्यम को,
सेवक बनो धर्मवीरों के, दुष्टों का अपमान करो।
हे मित्रो, दुर्लभ जीवन पै, कोई दोष न लगने दो,
अपनालो शंकर स्वामी को, बैठे मंगल-गान करो।

हितवार्त्ता

(दोहा)

जीव अविद्या-व्याधि को, कर देगा जब दूर ।
शंकर दाता की दया, तब होगी भरपूर ॥

(गीत)

अब चेतो भाई,
चेतना न त्यागो जागो सो चुके ॥

समता सटकी पटुता पटकी, अटकी कटुता छल-बल की,
भूल भरी जड़ता अपनाली, विद्या के सहारे न्यारे हो चुके।
अ० चे० भा० चे० त्या० जा० सो चुके ॥

अपनी गुरुता लघुता करली, परखी प्रभुता पर-घर की,
कायर कर्म-कलाप तुम्हारे, वीरों की हँसी के मारे रो चुके।
अ० चे० भा० चे० त्या० जा० सो चुके ॥

बिगड़ी सुविधा सुख-साधन की, उलटी गति अस्थिर धन की,
सोंप दरिद्र सदुद्यम डूबे, खेलों में कमाना-खाना खो चुके।
अ० चे० भा० चे० त्या० जा० सो चुके ॥

उतरी पगड़ी बढ़ियापन की, घुड़कें अगुआ अवनति के,
सेवक शंकर के न कहाये, पन्थों में मतों के काँटे बो चुके।
अ० चे० भा० चे० त्या० जा० सो चुके ॥

कर भला, होगा भला

(दोहा)

शैशव खोया खेल में, यौवन काल समेत ।
थोड़ा जीवन शेष है, अबतो चेत अचेत ॥

(गीत)

अब तो चेत भला कर भाई ॥
बालकपन में रहा खिलाड़ो, निकल गई तरुणाई,
बहुत बुढ़ापे के दिन बीते, उपजी पर न भलाई।
अब तो चेत भला कर भाई ॥
धर्म, प्रेम, विद्या, बल, धन की, करी न प्रचुर कमाई,
इनके विना बटोर न पाई, सुयश बगार बड़ाई।
अब तो चेत भला कर भाई ॥
पिछले कर्म बिगाड़ चुका है, अगली विधि न बनाई,
चलने की सुधि भूल रहा है, सुमति समीप न आई।
अब तो चेत भला कर भाई ॥
संकट काट नहीं सकती है, कपट भरी चतुराई,
ब्रह्मज्ञान बिन हाय किसी ने, शंकर सुगति न पाई।
अब तो चेत भला कर भाई ॥

नरक-निदर्शन

(दोहा)

जन्मे एक प्रकार से, भोग-विलास समान ।
मरना भी है एक-सा, समझें भेद अजान ॥१॥
एक पिता के पुत्र हैं, धर्म सनातन एक ।
हा, मत वालों ने रचे, जाल-कुपन्थ अनेक ॥२॥

(गीत)

हम सब एक पिता के पूत ॥
हा, विशाल मानव-मण्डल में, उपजे उद्धत ऊत,
मान लिये इन मतवालों ने, भिन्न-भिन्न मत-भूत ।
हम सब एक पिता के पूत ॥
सामाजिक बल को लग बैठी, छल की छूत-अछूत,
जल कर जाति-पाँति ने तोड़ा, सुख-साधन का सूत ।
हम सब एक पिता के पूत ॥
प्रभुता पाय दहाड़ रहे हैं, सबल रुद्र के दूत,
पिण्ड पड़ी कुटिला कुनीति की, रोप भरी करतूत ।
हम सब एक पिता के पूत ॥
भड़क रही तीनों नरकों में, अड़ की आग अकूत,
शंकर कौन बुझावे इसको, बिन विवेक जीमूत ।
हम सब एक पिता के पूत ॥

———

प्रेम-पञ्चक

(दोहा)

यद्यपि दोनों में रहे, जड़ता मूलक मोह ।
तोभी प्रभुता प्रेम की, प्रकटें चुम्बक लोह ॥१॥

यों निर्जीव सजीव का, समझो प्रेम प्रसङ्ग ।
प्यारे दीपक से मिले, प्राण विसार पतङ्ग ॥२॥

तरु, बल्ली, फूलें, फलें, आपस में लिपटाय ।
माने महिमा मेल की, बढ़ें प्रेम-बल पाय ॥३॥

घेर रहे संसार को, प्रेम, वैर, भरपूर ।
पहले की पूजा करो, पिछले को कर दूर ॥४॥

बैठ प्रेम की गोद में, हिलमिल खेलो खेल ।
प्रेम बिना होगा नहीं, प्रभु शंकर से मेल ॥५॥

सच्ची बात

(सुमनात्मक राजगीत)

मेल का मेला लगा है, मार खाने को नहीं,
धर्म-रक्षा को टिके हो, जी दुखाने को नहीं ।
जन्म होता है भलों का, देश के उद्धार को,
प्रेम की पूजा, भलाई, भूल जाने को नहीं ।

द्रव्य दाता ने दिया है, दान, भोगों के लिये,
गाढ़ने को दीन-हीनों, के सताने को नहीं।
वीरता धारो प्रमादी, मोह के संहार को,
जाति-विद्रोही खलों में, मान पाने को नहीं।
लौ लगी है ब्रह्म से तो, छोड़ दो संसार को,
ढोंग अज्ञों के अखाड़ों, में दिखाने को नहीं।
शंकरानन्दी बनो तो, वेद-विद्या को पढ़ो,
पण्डिताई के कटीले, गीत गाने को नहीं॥

आत्म-शोधन

(दोहा)

जो कुछ भूलों से हुआ, उस का सोच विसार।
नाता तोड़ बिगाड़ से, चेत, चरित्र सुधार॥

(गीत)

बिगड़ा जीवन-जन्म सुधार॥
खेल न खेल मूढ़-मण्डल में, कर विवेक पर प्यार,
छल-बल छोड़ मोह-माया के, हित कर सत्य पसार।
बिगड़ा जीवन-जन्म सुधार॥
बन्धन काट कड़े विषयों के, वश कर मन को मार,
अस्थिर भोग भोग मत भूले, सब को समझ असार।
बिगड़ा जीवन-जन्म सुधार॥

छाक न छल से छीन पराई, बाँट सुकृत-उपहार,
मत सोचे अपकार किसी का, करले परउपकार।
बिगड़ा जीवन-जन्म सुधार ॥

पल भर भी भूले मत भाई, हरि को भज हर बार,
चेत चार फल देगा तुझ को, शंकर परम उदार।
बिगड़ा जीवन-जन्म सुधार ॥

निषिद्ध जीवन

(दोहा)

मिलता है जो मित्र से, तो कुचरित्र सुधार।
प्रेमामृत पीले सखा, जाति-विरोध विसार ॥

(षट्पदी छन्द)

बालक, दीन, अनाथ, हाय! अपनाय न पाले।
दलित देश के साथ, प्रेम कर कष्ट न टाले ॥
संकट किया न दूर, अभागे विधवा-दल से।
मान-दान भरपूर, न पाया मुनि-मण्डल से ॥
गरिमा न गही गोपाल की, ज्ञान न गुणियों से लिया।
शठ शंकर, लोभी लालची, पाय प्रचुर पूँजी जिया ॥

अबतो भला बनजा

(दोहा)

खोटा जन्म सुधार ले, जीवन यों न बिगाड़ ।
क्यों रखता है पीठ पै, कपटी, पाप-पहाड़ ॥

(गीत)

अब तो जीवन-जन्म सुधार,
क्यों विष उगले भूल भलाई ॥

उत्तम करनी से मुख मोड़, किलके कुल की पद्धति छोड़,
विचरे मृदुता का घर फोड़, मन को उलटी चाल चलाई।
अ० जी० ज० सु० क्यों० उ० भू० भलाई ॥

परहित के उद्यान उजाड़, कुचले विधि-निषेध के हाड़,
उमगा धर्म-प्रबन्ध बिगाड़, छलिया छल की दाल गलाई।
अ० जी० ज० सु० क्यों उ० भू० भलाई ॥

अकड़े हेकड़ उन्नत काय, उछले बल का दर्प दिखाय,
सब को लूट-लूट कर खाय, ठगिया निगले दूध-मलाई।
अ० जी० ज० सु० क्यों० उ० भू० भलाई ॥

पटके लोक-लाज पर डेल, खेला खल-दल में मिल खेल,
रे शठ, शंकर से कर मेल, योगानल में हठ न जलाई।
अ० जी० ज० सु० क्यों० उ० भू० भलाई ॥

कुमार्ग-गामी

(दोहा)

खोटे कर्मकलाप से, प्रकटे मन का मैल ।
मत्त प्रमादी बैल ने, पकड़ी उलटी गैल ॥

(मालती सवैया)

जाल प्रपञ्च पसार घने, कुल-गौरव का उर फाड़ रहा है।
मानव मण्डल में मिल दाहक, दानव दुष्ट दहाड़ रहा है॥
जाति समुन्नति की जड़ को कर, घोर कुकर्म उखाड़ रहा है।
भूल गया प्रभु शंकर को जड़, जीवन-जन्म बिगाड़ रहा है॥

———

सुधार की शिक्षा

(दोहा)

हाय अभागे खो चुका, विद्या, बल, धन, धाम ।
दाता से भिक्षुक बना, उलट राम का नाम ॥

(किरीट सवैया)

सभ्य-समागम के प्रतिकूल न, मूढ़ भयानक चाल चलाकर।
वञ्चक बान विसार बुरी रच, दम्भ किसी कुल को न छलाकर॥
देख विभूति महाजन की पड़, शोक हुताशन में न जला कर।
शंकर को भजरे भ्रम को तज, रे भव का भरपूर भला कर॥

———

भूल की भड़क

(दोहा)

औरों के अगुआ बने, गैल सुगति की भूल ।
नाश करेंगे देश का, ऐसे असुर समूल ॥

(कुण्डलिया छन्द)

भूले भूल न त्यागते, पकड़ी छल की चाल ।
भोलों के अगुआ बने, जड़ वंचक वाचाल ॥
जड़ वंचक वाचाल, वैर की बेलि बढ़ाते ।
पशु पाखण्ड पसार, पाप के पाठ पढ़ाते ॥
ऊल रहे मद-मत्त, मोह-कानन में फूले ।
सत्य, धर्म, शुभ कर्म, छोड़ शंकर को भूले ॥

उलाहना

(दोहा)

उलझा माया-जाल में, मूढ़ कुटुम्ब समेत ।
आता है दिन अन्त का, अब तो चेत अचेत ॥

(गीत)

चूका चाल अचेत अनारी ।
नारायण को भूल रहा है ॥
जीवन-जन्म वृथा खोता है, बीज अमङ्गल के बोता है,
खेल पसार मोह-माया के, अज्ञों के अनुकूल रहा है ।
चू० चा० अ० अ० ना० भूल रहा है ॥

यह मेरा है, वह तेरा है, ममता, परता ने घेरा है,
झंझट, झगड़ों के झूले पै, झकझोटों से झूल रहा है।
चू० चा० अ० अ० ना० भूल रहा है॥

भोग-विलास रसीले पाये, दारा, पुत्र मिले मन भाये,
मानो मृग-तृष्णा के जल में, व्योम-पुष्प-सा फूल रहा है।
चू० चा० अ० अ० ना० भूल रहा है॥

शंकर अन्त-काल आवेगा, कुछ भी साथ न लेजावेगा,
झूँठी उन्नति के अभिमानी, क्यों कुसंग में ऊल रहा है।
चू० चा० अ० अ० ना० भूल रहा है॥

———

चेतावनी

(राजगीत)

जब तलक तू हाथ में मन का न मनका लायगा।
तब तलक इस काठ की माला से क्या फल पायगा॥
भूल कर अज को अजा का आजलों चेरा रहा।
क्या इसी पाखण्ड से परमात्मा मिल जायगा॥
धर्म्म का धन छोड़ कर पूँजी बटोरी पाप की।
बस इसी करतूत से धर्म्मात्मा कहलायगा॥
चाह की चिनगी से चेंका चैन फिर चित को कहाँ।
देख धरकर आग पै पारा न ठिक ठहरायगा॥

दान दीनों को न देकर नाम का दानी बना।
भोग के भूखे वहाँ जाकर बता क्या खायगा॥
लोभ-लीला के लिये रच रंगशाला राग की।
बोल बहुरंगी रँगीले गीत कबतक गायगा॥
स्वारथी उपकार औरों का कभी करता नहीं।
फिर तुझे संसार सारा किस लिये अपनायगा॥
जो तुझे भाती नहीं सबकी भलाई तो भला।
क्यों न भोले भाइयों को भूल में भरमायगा॥
प्रेम का जल दे रहा परिवार के आराम को।
फल नहीं देगा किसी दिन फूल कर मुरझायगा॥
खेल में खोया लड़कपन भोग में जोबन गया।
भूल में भागी जरा क्या और जीवन आयगा॥
दूर प्यारे की पुरी है दिन किनारे आचुका।
चल नहीं तो इस झमेले में पड़ा पछतायगा॥
कंठ की घर घर सुनेंगे अन्त को घर के खड़े।
उस घड़ी 'शंकर' घिरा घर घेर में घबरायगा॥

उपालम्भ

(दोहा)

प्रभुता का प्रेमी बना, प्रभु से किया न मेल।
रे धर्मध्वज पाप के, खुल-खुल खेला खेल॥

(गीत)

दुर्लभ नर-तन पाय के,
कुछ कर न सका रे॥

घोर कुकर्म महा पापों से, पल भर भी पछताय के,
ठग डर न सका रे।
दु० न० पा० कु० कर न सका रे॥

हा! प्यारे मानव-मण्डल में सुकृत-सुधा बरसाय के,
यश भर न सका रे।
दु० न० पा० कु० कर न सका रे॥

वैदिक देवों के चरणों पै, सेवक सरल कहाय के,
सिर धर न सका रे।
दु० न० पा० कु० कर न सका रे॥

दीनबन्धु शंकर स्वामी से, मन की लगन लगाय के,
भव तर न सका रे।
दु० न० पा० कु० कर न सका रे॥ १॥

(दोहा)

शंकर से न्यारा रहा, धर्म, सुकर्म विसार।
कौन उतारेगा तुझे, भव-सागर से पार॥

———

मनोमुख धूर्त

(उग्रदंडक)

सारे धर्म-कर्म छोड़े, गोड़े उद्यम के तोड़े।
मारें ज्ञान के गपोड़े, गीत गौरव के गाते हैं॥
प्यारी वाणी फटकारी, दाया रोंद-रोंद मारी।
दारी सभ्यता विसारी, सींग सत्य को दिखाते हैं॥
मूढ़-मण्डली में ऊले, स्वामी शंकर को भूले।
फिरें सेंजने से फूले, नाश को न देख पाते हैं॥
ऊँची जाति को लजाते, नीचता की मार खाते।
पूरे पातकी कहाते, जालों जीवन विताते हैं॥

हठ से बिगाड़

(दोहा)

कर्म सुधारेगा नहीं, कुटिल कुकर्मारूढ़।
कोरा हठ-वादी बना, मन्द-मनोमुख-मूढ़॥

(गीत)

जिस का हठ से हुआ बिगाड़,
उस को कौन सुधार सकेगा॥
हठ को तजे न हट का दास, फटके न्याय न पशु के पास,
सब का करे सदा उपहास, ऐंठू अड़ न विसार सकेगा।
जि० ह० हु० वि० उ० कौ० सु० सकेगा॥

वंचक चतुरों से बद होड़, अटके टाँग अकड़ की तोड़,
उजबक बात कहे बेजोड़, हेकड़ नेक न हार सकेगा।
जि० ह० हु० वि० उ० कौ० सु० सकेगा ॥

मन का मित्र प्रमाद प्रचण्ड, तन का पोषक प्रिय पाखण्ड,
धन से उपजा घोर घमण्ड, दुर्मति क्यों न प्रचार सकेगा।
जि० ह० हु० वि० उ० कौ० सु० सकेगा ॥

अपनी जड़ता को जड़ जार, समझे प्रतिभा का अवतार,
शठ के सिर से भ्रम का भार, शंकर भी न उतार सकेगा।
जि० ह० हु० वि० उ० कौ० सु० सकेगा ॥

हेत्वाभास का उपहास

(दोहा)

मिथ्या से मिलता नहीं, वैदिक मत का मर्म।
पूरा शत्रु असत्य का, सत्य सनातनधर्म ॥

(गीत)

साधन धर्म का रे,
कर्माभास न हो सकता है ॥

पैर पसार प्रसुप्तों के से, कपटी सो सकता है,
निद्राहीन बोध विषयों का, कभी न खो सकता है।
सा० ध० क० न हो सकता है ॥

पढ़-पढ़ बोझा सद्ग्रन्थों का, पढ़ुवा ढो सकता है,
बिन विज्ञान पराविद्या का, बीज न बो सकता है।
सा० ध० क० न हो सकता है॥

भक्त कहाने को ठाकुर का, ठग भी रो सकता है,
क्या शंकर के प्रेमामृत में, चंचु भिगो सकता है।
सा० ध० क० न हो सकता है॥

बनावट से बचो

(दोहा)

लूट रहा संसार को, रच-रच कोरे ढोंग।
क्या न बिसारेगा कभी, तू अपने हरभोंग॥

(षट्पदी छन्द)

ढोंग बनावट से न, किसी का काम चलेगा।
कृत्रिम नीरस वृक्ष, न कोई फूल फलेगा॥
बना न वाहन-राज, कभी लड़की का हाथी।
सार विहीन असत्य, सत्य का सुना न साथी॥
कुछ मिथ्या से होता नहीं, आँख उघार निहार लो।
सुख चाहो तो सद्भाव से, शंकर को उर धार लो॥

बुढ़ापे की भगतई

(दोहा)

औरों को ठगता रहा, बैठा अब अनुपाय।
माला सटकाता फिरे, भोंदू भगत कहाय ॥

(दादरा)

ठग बन गया,
ठग बन गया, भगत बुढ़ापे में ॥
छोड़ा डकैतों की फेंटी में जाना, झांके न वीरों के टापे में।
ठ० ब० ठ० ब० भ० बुढ़ापे में ॥
बैठा ठिकाने पै देवों को पूजे, पूंजी लगादी पुजापे में।
ठ० ब० ठ० ब० भ० बुढ़ापे में ॥
बीती जवानी की मैली पिछौरी, धोने को आया है आपे में।
ठ० ब० ठ० ब० भ० बुढ़ापे में ॥
खो जायगा शंकरादर्श तेरा, जोपै छपेगा न छापे में।
ठ० ब० ठ० ब० भ० बुढ़ापे में ॥

संशयसंपन्न

(दोहा)

कोरे तर्क-वितर्क में, उलझे वाद-विवाद।
अस्थिर जी पाता नहीं, शंकर सत्य-प्रसाद ॥

(मालती सवैया)

तीन अनादि, अनन्त मिला कर ऋग्यजु साम अथर्व बखाने।
नित्य स्वभाव रचे सब को करतार निरीश्वर-वाद न माने॥
शंकर का मत ब्रह्म बना जगदद्भुत को भ्रम का फल जाने।
सत्य कथा समझें किसकी अगुआ अपनी अपनी तक ताने॥

तार्किक का परोक्ष पञ्चक

(दोहा)

है कब से, संसार का, कब तक होगा नाश।
क्या देगा इस प्रश्न का, उत्तर युक्ति-प्रकाश॥१॥
जन्म लिया, जीता रहा, जोड़ शुभाशुभ कर्म।
छोड़ गया जो देह को, उसका मिला न मर्म॥२॥
कौन विराजे स्वर्ग में, नरक निवासी कौन।
मुक्त जीव पाया किसे, सबका उत्तर मौन॥३॥
तर्क-प्रमाणों से परे, पितरों का परलोक।
सुनते हैं, देखा नहीं, मान लिया रुचि रोक॥४॥
लोगों पै खुलते नहीं, जिन विषयों के भेद।
साधें शब्द-प्रमाण से, उन को, उन के वेद॥५॥

दंभ-दशक

(दोहा)

जिन में देखोगे नहीं, पौरुष, धर्म, विवेक ।
ठगते हैं वे देश को, रच पाखण्ड अनेक ॥१॥

विश्व-नाथ, माता, पिता, सद्गुरु, साधु-समाज ।
पाँचों से पहले पुजें, मूढ़-मनोमुख-राज ॥२॥

घेर रहे संसार को, पोच प्रपञ्च पसार ।
दम्भासुर के सूरमा, विचरें लण्ठ, लबार ॥३॥

छुआछूत छोंकें छटे, छलिया गाल बजाय ।
चाल न चूकें ढोंग की, नीच निरंकुश हाय ॥४॥

कल्पित ग्रन्थों को कहें, सत्य सनातन वेद ।
अन्ध जालिया जाति में, भरते हैं मतभेद ॥५॥

मान सच्चिदानन्द के, दूत, पूत, अवतार ।
भूले महिमा ब्रह्म की, अबुध, अविद्याधार ॥६॥

पोच पुजारी पेट के, पुण्य कलुष को मान ।
देते हैं करतार को, पशुओं के बलिदान ॥७॥

दाता को परलोक में, मिलते हैं सुख-भोग ।
ऐसे वचनों से बने, दान-वीर लघु लोग ॥८॥

फैल रहे संसार में, जटिल मतों के जाल ।
अज्ञानी उलझे पड़े, अटका बन्ध-विशाल ॥९॥

धोखा है, भ्रम-जाल है, कोरा कपट-प्रयोग।
बचते हैं पाखण्ड से, साधु-सरल-उद्योग ॥१०॥

मतवादीवक्ता

(दोहा)

बांके बकवादी वृथा, करते हैं बकवाद।
हाय सुधारेगा किसे, इनका केहरी-नाद ॥

(गीत)

वैर-विरोध बढ़ाने वाले,
बांके बकवादी बकते हैं ॥

चारों ओर दहाड़ रहे हैं, पेट प्रेम का फाड़ रहे हैं,
थोथी बातें कहते-कहते, बक्कू नेक नहीं थकते हैं।
वै० वि० ब० वा० बां० ब० बकते हैं ॥

गर्व-गपोड़े सिखलाते हैं, दर्प दम्भ का दिखलाते हैं,
कपटी पोल खोल औरोंकी, अपने पापों को ढकते हैं।
वै० वि० ब० वा० बां० ब० बकते हैं ॥

मूढ़ मंत्र देते फिरते हैं, धन्यवाद लेते फिरते हैं,
छी! छी! छाक दरिद्र देशकी, छैला छीन-छीन छकते हैं।
वै० वि० ब० वा० बां० ब० बकते हैं ॥

धींग-धसोड़ी हांक रहे हैं, धूलि धर्म की फांक रहे हैं,
शंकर काम सूझतों के-से, ये अन्धे क्या कर सकते हैं।
वै० वि० ब० वा० बां० ब० बकते हैं॥

धर्म-शत्रु

(दोहा)

बैठे सभ्य-समाज में, सुन डाले उपदेश।
जड़ ज्यों के त्यों ही रहे, सुधरे कर्म न लेश॥

(गीत)

जड़ ज्यों के त्यों मतिमन्द हैं,
उपदेश घने सुन डाले॥

आप न छोड़ें पाप प्रमादी, औरों को बरजें बकबादी,
रसना बनी धर्म की दादी, कटुमुख मूसलचन्द हैं,
शुभ कर्म कुचलने वाले।
उपदेश घने सुन डाले॥

सरल सभ्यता से रीते हैं, भोग भ्रष्ट जीवन जीते हैं,
आमिष खाय, सुरा पीते हैं, कपट-कञ्ज-मकरन्द हैं,
रसिया-मिलिन्द-मन काले।
उपदेश घने सुन डाले॥

गीत समुन्नति के गाते हैं, पास न उद्यम के जाते हैं,
ठग-ठग भोलों को खाते हैं, नटखट अति स्वच्छन्द हैं,
निरखे अलमस्त निराले ।
उपदेश घने सुन डाले ॥

प्रेम-कथा कहते रोते हैं, बीज वैर-विष के बोते हैं,
दुर्लभ काल वृथा खोते हैं, विषधर हैं कब कन्द हैं,
शंकर परखे, परखा ले ।
उपदेश घने सुन डाले ॥

प्रचण्ड-प्रमादी

(दोहा)

समझा दारा, द्रव्य को, अबुध जीवनाधार ।
अन्ध किया अन्धेर ने, पामर पुरुषाकार ॥

(त्रिविरामात्मक राजगीत)

बीते अनेक, वर्ष वृथा, आयु खो रहा ।
सूझे तुझे न, ईश अरे, अन्ध हो रहा ॥
कामादिशत्रु, घेर रहे, नाचता फिरे ।
मारे न इन्हें, मार सहे, भीरु रो रहा ॥
पाला अधर्म, धर्म कभी, धारता नहीं ।
जागे कुकर्म, बोल कहाँ, सत्य सो रहा ॥

सीधा सुपन्थ, भूल गया, भेड़-चालिया ।
लादे बटोर, पाप घने, भार ढो रहा ॥
विद्या-विलास, मान रहा, छद्मवाद को ।
आनन्द-कथा, व्याधि-नदी, में डुबो रहा ॥
माने न व्यास, कौन गिने, शंकरादि को ।
कोरा लबार, लण्ठ बड़ों, को बिगो रहा ॥

अर्थाभिमानी

(दोहा)

भूला तू भगवान को, रे! मदमत्त अजान ।
पोच प्रतिष्ठा का वृथा, करता है अभिमान ॥

(गीत)

तेरे अस्थिर हैं सब ठाठ,
बाबा क्यों घमण्ड करता है ।
भिक्षुक और मेदिनी-नाथ, भव तज भागे रीते हाथ,
क्या कुछ गया किसी के साथ, तो भी तू न ध्यान धरता है ।
ते० अ० स० बा० घ० करता है ॥
उतरी लड़काई की भङ्ग, तड़का तरुणाई का तङ्ग,
जमने लगा जरा का रङ्ग, भूला नेक नहीं डरता है ।
ते० अ० स० बा० घ० करता है ॥

होगा मरण-काल का योग, तुझ से छूटेंगे सुख-भोग,
आकर पूछेंगे पुर-लोग, क्यों रे अभिमानी मरता है।
ते० अ० स० बा० घ० करता है ॥
प्यारे चेत प्रमाद विसार, करले औरों का उपकार,
शंकर स्वामी को उर धार, यों सद्भक्त जीव तरता है।
ते० अ० स० बा० घ० करता है ॥

बुढ़ापे का पछतावा

(दोहा)

पाय बुढ़ापा देह के, ढाल गये सब जोड़ ।
तृष्णा-तरुणी को अरे, छलिया अबतो छोड़ ॥

(गीत)

रस चाट चुका लघु जीवन का,
पर लालच हा ! न मिटा मन का ।
गत शैशव उद्धत ऊल गया, उमगा नव यौवन फूल गया,
उपजाय जरा तन झूल गया, अटका लटका सटकापन + का ।
र० चा० चु० ल० जी० प० ला० हा० मि० मन का ॥
कुल में सविलास विहार किये, अनुकूल घने परिवार किये,
विधि के विपरीत विचार किये, धर ध्यान वधू, वसुधा, धन का ।
र० चा० चु० ल० जी० प० ला० हा० मि० मन का ॥

+ सटकापन = लाठी के सहारे डगमगा कर चलना

पिछले अपराध पछाड़ रहे, अब के अघ-दोष दहाड़ रहे,
उर दुःख अनागत फाड़ रहे, भबका भय शोक-हुताशन का।
र० चा० चु० ल० जी० प० ला० हा० मि० मन का॥
रच ढोंग प्रपञ्च पसार चुका, सब ठौर फिरा झख मार चुका,
शठ शंकर साहस हार चुका, अब तो रट नाम निरंजन का।
र० चा० चु० ल० जी० प० ला० हा० मि० मन का॥

निषिद्धोन्नति

(दोहा)

उपजावे जो जाति में, वैर, विरोध, घमण्ड।
ऐसी उन्नति से उठें, ऊत असुर उद्दण्ड॥

(गीत)

रहो रे साधो, उस उन्नति से दूर।
जिसके साथी लघु छाया के, उपजे ताड़-खजूर।
फल-खौआ ऊँचे चढ़ते हैं, गिरें तो चकनाचूर॥
रहो रे साधो, उस उन्नति से दूर॥
जिससे मान बढ़े मूढ़ों का, पण्डित बने मजूर।
आदर पावे बास बसा की, ठोकर खाय कपूर॥
रहो रे साधो, उस उन्नति से दूर॥
जिस के द्वारा उच्च कहाये, कृपण, कुचाली, क्रूर,
मुक्ता बने न्याय-सागर के, हठ-सर के शालूर।
रहो रे साधो, उस उन्नति से दूर॥

जिस के ऊँट नीचता लादें, यश चाहें भरपूर,
हा ! शंकर पापी बन बैठे, पुण्य-समर के शूर।
रहो रे साधो, उस उन्नति से दूर ॥

धर्मधुरन्धर

(दोहा)

जो बड़भागी साहसी, करते हैं शुभ काम।
रहते हैं संसार में, जीवित उनके नाम ॥

(गीत)

ध्रुवता धार धर्म के काम,
धोरी-धीर-वीर करते हैं।
करते उत्तम कर्मारम्भ, सुकृती गाढ़ें सुकृत-स्तम्भ,
नामी निरभिमान निर्दम्भ, दुष्टों से न कभी डरते हैं।
ध्रु० धा० ध० धो० धी० करते हैं ॥
लक्षण अनुत्साह के झाड़, उर आलस्यासुर का फाड़,
कतरें कठिनाई की आड़, संकट औरों के हरते हैं।
ध्रु० धा० ध० धो० धी० करते हैं ॥
प्यारे पौरुष, प्रेम पसार, विचरें विद्या-बल विस्तार,
बाँटें निज-कृत आविष्कार, उद्यम देशों में भरते हैं।
ध्रु० धा० ध० धो० धी० करते हैं ॥

प्रेमी पूरा सुयश कमाय, ब्रह्मानन्द महा फल पाय,
शंकर स्वामी के गुण गाय, ज्ञानी शोक-सिन्धु तरते हैं।
ध्रु० धा० ध० धो० धी० करते हैं ॥

वैदिक वीरो उठो

(दोहा)

शंकर के प्यारे बनो, वैर-विरोध विसार।
वैदिक वीरो जाति का, कर दो सर्व-सुधार ॥

(गीत)

वैदिक वीरो सुभट कहाय,
उलटी मति को मार भगा दो।
गरजो ब्रह्मचर्य-बल धार, बाँधो परहित के हथियार,
अपना प्रेम-प्रताप पसार, दुर्गुण-गढ़ में आग लगादो।
वै० वी सु० उ० म० मा० भगादो ॥
भ्रम का नाश करो भरपूर, छल का करदो चकनाचूर,
पटको घटिया-पन को दूर, बढ़िया कुल की ज्योति जगादो।
वै० वी० सु० उ० म० मा० भगादो ॥
अनुचित विषयों को संहार, फिर आलस्य-असुर को मार,
करलो उद्यम पै अधिकार, उन्नति ठगियों को न ठगादो।
वै० वी० सु० उ० म० मा० भगादो ॥

विचरो वैर-विरोध विहाय, मानव-मण्डल को अपनाय,
सब से विरद-बड़ाई पाय, जग में शंकर के गुण गादो।
वै० वी० सु० उ० म० मा० भगादो॥

———

पादप-शिक्षा

(भजन)

करना उपकार,
तरु-समूह से सीखो।

ये गुल्म, लता, तरु सारे, हैं जीवन-प्राण हमारे,
प्यारे परम उदार।
तरु-समूह से सीखो...॥

नित अन्न-दान करते हैं, हम लोग उदर भरते हैं,
अपने बारम्बार।
तरु-समूह से सीखो...॥

रस, मूल, फूल, फल मेवा, सब को बाँटें बिन सेवा,
नव-नव कर दातार।
तरु-समूह से सीखो...॥

वन ओषधि रोग निकालें, पुनि पवन शुद्ध कर पालें,
परिमल-पुंज पसार।
तरु-समूह से सीखो...॥

खींचें अवनी के जल को, देते हैं बल बादल को,
समझो वीर विचार।
तरु-समूह से सीखो···॥
ये उपादान वस्त्रों के, अवयव अनेक अस्त्रों के,
सब शस्त्रों के यार।
तरु-समूह से सीखो···॥
चुपचाप खड़े रहते हैं, गरमी-सरदी सहते हैं,
रोकें धूप-तुषार।
तरु-समूह से सीखो···॥
उपकार अलौकिक इनका, करता है तिनका-तिनका,
शंकर कहे पुकार।
तरु-समूह से सीखो···॥

पछतावा

(भजन)

खेलत खेल घने दिन बीते।
हँस-हँस दाव अनेक लगाये, एकहु वार न जीते,
जुरि-मिल लूट लैगये ज्वारी, करि-करि मनके चीते।
खेलत खेल घने दिन बीते॥
अबलौं निपट नाश की मदिरा, रहे मोह-वश पीते,
शंकर सरवस हार चले हम, हाथ पसारे रीते।
खेलत खेल घने दिन बीते॥

बस बीत चुके

(दोहा)

भूला भोग-विलास में, अब लों रहा अचेत ।
फल की आशा छोड़ दे, उजड़ा जीवन-खेत ॥

(गीत)

चलोगे बाबा, अब क्या प्रभु की ओर ॥
खेल पसारे बालकपन में, उकसे रहे किशोर ,
आगे चल कर चन्द्र-मुखी के, चाहक बने चकोर ।
चलोगे बाबा, अब क्या प्रभु की ओर ॥
पकड़े प्राण-प्रिया वनिता ने, बतलाये चित-चोर ,
मारे कन्दुक मदन-दर्प के, गोल उरोज कठोर ।
चलोगे बाबा, अब क्या प्रभु की ओर ॥
दुहिता, पुत्र घने उपजाये, भोग बटोर-बटोर ,
अगुआ बने बढ़े कुनबा के, पकड़ा पिछला छोर ।
चलोगे बाबा, अब क्या प्रभु की ओर ॥
पटके गाल अङ्ग सब भूले, अटके संकट घोर ,
शंकर जीत जरा ने जकड़े, उतरी मद की खोर ।
चलोगे बाबा, अब क्या प्रभु की ओर ॥

———

*

विगतयौवना

(दोहा)

हा ! तारुण्य-तड़ाग के, सूख गये रस-रङ्ग ।
बुढ़िया तो भी पेंठ के, सुनती फिरे प्रसङ्ग ॥

(गीत)

बीता यौवन तेरा,
(री) बुढ़िया, बीता यौवन तेरा ॥
धौरा रङ्ग जमाय जरा ने, कृष्ण कचों पर फेरा,
झाड़े दाँत, गाल पटकाये, कर डाला मुख भेरा ।
(री) बुढ़िया, बीता यौवन तेरा ॥
आँखों में टेढ़ी चितवन का, बोर न रहा बसेरा,
फीका आनन-मण्डल मानो, विधु बदली ने घेरा ।
(री) बुढ़िया, बीता यौवन तेरा ॥
*झोंझ बया के से कुच झूले, फाड़ +मदन का डेरा,
अब तो पास न झांके कोई, रसिया रस का चेरा ।
(री) बुढ़िया, बीता यौवन तेरा ॥
चेत बुढ़ापे को मत खोवे, करले काम सबेरा,
अपनाले शंकर स्वामी को, मन्त्र समझले मेरा ।
(री) बुढ़िया, बीता यौवन तेरा ॥

(*झोंझ = घोंसला) (+मदन का डेरा = कञ्चुकी)

बुढ़ापा

(भजन)

कैसो कठिन बुढ़ापौ आयौ ॥

बल बिन अंग भये सब ढीले, सुन्दर रूप नसायौ,
पटके गाल गिरे दाँतन कौ, केशन पै रँग छायौ।
कैसो कठिन बुढ़ापौ आयौ ॥

हालै शीश कमान भई कटि, टाँगनहूँ बल खायौ,
काँपें हाथ बोदरी के बल, डग-मग चाल चलायौ।
कैसो कठिन बुढ़ापौ आयौ ॥

ऊँचो सुने धूँधरौ दीखै, वस्तु बोध हलकायौ,
मन में भूल भरी त्यों तनमें, रोग-समूह समायौ।
कैसौ कठिन बुढ़ापौ आयौ ॥

डील भयौ बेडौल डोकरा, नाम खोय पद पायौ,
नाना आदि बाल-मण्डल में नाना भाँति कहायौ।
कैसौ कठिन बुढ़ापौ आयौ ॥

नातेदार कुटुम्ब परौसी, सब ने मान घटायौ,
कढ़त न प्राण पेट पापो ने, घर-घर नाच नचायौ।
कैसौ कठिन बुढ़ापौ आयौ ॥

पास न झाँकत पूत-पतोहू, पौरी में पधरायौ,
बूँद-बूँद जल टूक-टूक को, ताँस-ताँस तरसायौ।
कैसौ कठिन बुढ़ापौ आयौ ॥

———

महा पुरुष मृत्यु को तर जाते हैं

(दोहा)

मरते जाते हैं घने, मानव जीवन भोग।
तरजाते हैं मृत्यु को, शंकर विरले लोग॥

(सगणात्मक सवैया)

तन त्याग प्रयाण किये सब ने, न टिके गतिशील गृही, न वनी।
धर मृत्यु-महासुर ने पटके, कुचले कुल रंक बचे न धनी॥
भव-सागर को न तरे जड़ वे, जिनकी करनी बिगड़ी, न बनी।
विन भेद मिले प्रभु शंकर से, प्रतिभा विरले बुध पाय घनी॥

जीवनान्त

(दोहा)

जीवन पूरा हो लिया, अटका अन्तिम काल।
पकड़ी चोटी मृत्यु ने, अब न बचोगे लाल॥

(गीत)

बारी अब अन्तकाल की आई।
भोग-विलास भरे विषयों की, करता रहा कमाई,
आज साज सब देने पर भी, टिकता नहीं घड़ी भर भाई।
बारी अब अन्तकाल की आई॥
व्याकुल वनिता ने अँसुओं की, आकर धार बहाई,
पास खड़ा परिवार पुकारे, रोक न सकी सनेह-सगाई।
बारी अब अन्तकाल की आई॥

लगे न औषधि, कविराजों ने, मारक व्याधि बताई,
नेक न चेत रहा चेतन को, बिछुड़ी गैल गमन की पाई।
बारी अब अन्तकाल की आई॥
प्राण-पखेरू तन-पंजर से, भागा कुछ न बसाई,
काल पाय हम सबकी होगी, हा! शंकर इस भाँति विदाई।
बारी अब अन्तकाल की आई॥

मृतक शरीर

(दोहा)

ज्ञान, क्रिया धारे नहीं, चेतन, जड़ का योग।
ऐसे दैहिक दृश्य को, मृतक मानते लोग॥

(गीत)

घर में रहा न रहने वाला॥
खोल गया सब द्वार किसी में लगा न फाटक-ताला,
आय निशङ्क अदृष्ट बली ने घेर घसीट निकाला।
घर में रहा न रहने वाला॥
जाने किस पुर की बाखर में, अबकी बार बिठाला,
हा! प्रासादिक परिवर्त्तन का, अटका कष्ट-कसाला।
घर में रहा न रहने वाला॥
ढंग बिगाड़ दिया मंदिर का, अंग भंग कर डाला,
श्रीहत हुआ अमङ्गल छाया, कहीं न ओज उजाला।
घर में रहा न रहने वाला॥

शंकर ऐसे परबन्धन से, पड़े न पल को पाला,
आग लगे इस बन्दीगृह में, मिले महा सुख-शाला।
घर में रहा न रहने वाला॥

मरण

(भजन)

घर को छोड़ गयो घरवारौ।
बारह बाट आज कर डारौ, अपनो कुनबा सारौ,
भोग-विलास विसार अकेलो, आप निशंक सिधारौ।
घर को छोड़ गयो घरवारौ॥
शोभा दूर भई बाखर की, धाय धसौ अँधियारौ,
चारों ओर उदासी छाई, दिपत न एकहु द्वारौ।
घर को छोड़ गयौ घरवारौ॥
आओ रे मिल मित्र-मिलापी, इत-उत खोज निहारौ,
कौन देश में जाय विराजा, कौन गैल गहि प्यारौ।
घर को छोड़ गयौ घरबारौ॥
अब काहू विधि नाहिं मिलैगौ, मिट गयौ मेल हमारौ,
शंकर या सूने मंदिर को, धीरज धार पजारौ।
घर को छोड़ गयौ घरवारौ॥

सौंदर्य की दुर्दशा

(सोरठा)

हाय ! अचानक आज, रूप-गर्विता मर गई।
छोड़ गया रसराज, घर को सूना कर गई॥

(गीत)

नवेली अलवेली उठ बोल।
वेणी-नागिन विकल पड़ी है, शिथिल माँग मुख खोल,
खंजरीट, मृग खोल रहे हैं, नयन-सुयश की पोल।
नवेली अलवेली उठ बोल॥
लाल अधर बिम्बा-फल सूखे, पड़ गये पीत कपोल,
दशन-मोतियों की लड़ियों का, अब न रहा कुछ मोल।
नवेली अलवेली उठ बोल॥
कंबु-कण्ठ, कल-कण्ठ न कूके, दबकी दमक अतोल,
गढ़ें न रसियों की छतियां में, कठिन पयोधर गोल।
नवेली अलवेली उठ बोल॥
परखी सब कोमल अंगों में, अकड़ टटोल-टटोल,
हा ! शंकर क्या अब न बजेगा, मदन-विजय का ढोल।
नवेली अलवेली उठ बोल॥

———

गर्दभ-दुर्दृश्य

(दोहा)

देखी खर की दुर्दशा, उपजा उत्तम ज्ञान।
शंकर ने देहादि का, दूर किया अभिमान॥

(गीत)

घूरे पर घबराय रहा है,
देखो रे इस व्याकुल खर को।
और घने रासभ चरते थे, धँगने धार पेट भरते थे,
छोड़ इसे अनखाय कुम्हारी, सब को हाँक लेगई घर को।
घू० घ० र० दे० इ० व्या० खर को॥
आगे गुड़हर, घास नहीं है, गदली पोखर पास नहीं है,
हा ! पानी बिन तड़फ रहा है, लोटे-पीटे इधर-उधर को।
घू० घ० र० दे० इ० व्या० खर को॥
लीद-लपेटा विकल पड़ा है, चक्र काँच का निकल पड़ा है,
मूत-कीच में उछल रही है, ओछी पूँछ डुलाय चमर को।
घू० घ० र० दे० इ० व्या० खर को॥
घायल घोर कष्ट सहता है, ठौर-ठौर शोणित बहता है,
मार मक्खियाँ भिनक रही है, काट रहे हैं कीट कमर को।
घू० घ० र० दे० इ० व्या० खर को॥
कुक्कुर तंगड़ तोड़ चुके हैं, वायस अँखियाँ फोड़ चुके हैं,
गीदड़ अँतड़ी काढ़ चुके हैं, ताक रहे हैं गिद्ध उदर को।
घू० घ० र० दे० इ० व्या० खर को॥

मरण-काल ने दीन किया है, अवगति ने बलहीन किया है,
मींच धींच धर भींच रही है, खींच रही है प्रेतनगर को।
घू० घ० र० दे० इ० व्या० खर को॥
जीवन-खेल खिलाय चुका है, भोग-विलास विलाय चुका है,
जीव-हंस अब उड़ जावेगा, त्याग पुराने तन-पंजर को।
घू० घ० र० दे० इ० व्या० खर को॥
ऐसा देख अमङ्गल इसका, कातर चित्त न होगा किसका,
तज अभिमान भजो रे भाई, करुणा-सिंधु सत्य शंकर को।
घू० घ० र० दे० इ० व्या० खर को॥

दरिद्रता अर्थात् कंगाली

(भजन)

कंगाली में कंगाल के,
सब ढंग बिगड़ जाते हैं।
जिस के दिन बोदे आते हैं, सुखप्रद भोग भाग जाते हैं,
संशय नौच-नौच खाते हैं, उस कुलीन कुल-पाल के-
शुभ लक्षण झड़ जाते हैं।
सब ढंग बिगड़ जाते हैं॥
घर के घोर कष्ट सहते हैं, भूखे रोष भरे रहते हैं,
कहनी अनकहनी कहते है, मुखियाजी बिन माल के-
सकुचाय सुकड़ जाते है।
सब ढंग बिगड़ जाते हैं॥

प्यारे प्यार नहीं करते हैं, मित्र माँगने से डरते हैं,
नातेदार नाम धरते हैं, कब तक रोटी दाल के–
जब लाले पड़ जाते हैं।
सब ढंग बिगड़ जाते हैं ॥
दूर न दीन दशा होती है, लघुता लोक लाज खोती है,
प्रतिभा सुधि विहाय रोती है, 'शंकर' धर्म-मराल के–
व्रत-पंख उखड़ जाते हैं।
सब ढंग बिगड़ जाते हैं ॥

तोते पर अन्योक्ति

(दोहा)

लाद पराये धर्म का, संकट-भार अतोल,
तोता पिजँड़े में पड़ा, बोल मनुज के बोल ॥

(गीत)

तोते तू तेरे करतब ने,
इस बन्धन में डाला है रे !
सुन सीखे जो शब्द हमारे, उन को बोल रहा है प्यारे,
मिट्ठू तुझे इसी कारण से, कन रसियों ने पाला है रे।
तो० ते० क० इ० बं० डाला है रे !
हा ! कोटर में बास नही है, प्यारा कुनबा पास नहीं है,
लोह-तीलियों का घर पाया, अटका कष्ट कसाला है रे।
तो० ते० क० इ० बं० डाला है रे ! ॥

सुआ सैकड़ों पढ़ने वाले, पकड़ बिल्लियों ने खा डाले,
तू भी कल कुत्ते के मुख से, प्राण बचाय निकाला है रे।
तो० ते० क० इ० बं० डाला है रे !
पञ्जे नहीं छुड़ा सकते हैं, क्या ये पंख उड़ा सकते हैं,
चोंच न काटेगी पिंजड़े को, शंकर ही रखवाला है रे।
तो० ते० क० इ० बं० डाला है रे !

योग पर अन्योक्ति

(सोरठा)

आज विरह की आग, तुझ से मिलते ही बुझी।
मुझ अबला को त्याग, शंकर, अब जाना नहीं॥

(गीत)

आज मिला बिछुड़ा वर मेरा,
पाया अचल सुहाग री।
भबका वेग वियोगानल का, स्रोत जलाया धीरज-जल का,
डूबी सुरत प्रेम-सागर में, बुझी न उर की आग री।
आज मिला बिछुड़ा वर मेरा।
पाया अचल सुहाग री॥
इत उत थाँग लगाती डोली, ठगियों की ठन गई ठठोली,
हुआ न सिद्ध मनोरथ तोभी, और बढ़ा अनुराग री।
आज मिला बिछुड़ा वर मेरा।
पाया अचल सुहाग री॥

ठौर-ठौर भटकी भटकाई, सुधि न प्राणवल्लभ की पाई,
साहस ने पर हार न मानी, लगी लगन की लाग री।
आज मिला बिछुड़ा वर मेरा।
पाया अचल सुहाग री॥
एक दया-निधि ने कर दाया, तुरत ठिकाना ठीक बताया,
पहुँची पास पिया शंकर के, इस विधि जागे भाग री।
आज मिला बिछुड़ा वर मेरा।
पाया अचल सुहाग री॥

———

अपूर्व चिंतन

(भजन)

कौन उपाय करूँ पिय प्यारो-
साथ रहै पर हाथ न आवै।
चहुँ दिसि दौरी द्वन्द्व मचायो, अचल अचंचल पकड़ न पायौ,
खुलत न खेलत खेल खिलाड़ी, मोहि खिलौना मान खिलावै।
कौन उपाय करूँ पिय प्यारो,
साथ रहै पर हाथ न आवै॥
पलभर को कबहूँ न विसारे, हिल-मिल मेरौ रूप निहारे,
रसिक शिरोमणि मो विरहिन को, हा अपनो मुखड़ा न दिखावै।
कौन उपाय करूँ पिय प्यारौ,
साथ रहै पर हाथ न आवै॥

मायामय मनमोहन हारे, अद्भुत योग-वियोग पसारे,
या विहार-थल के भोगन को, आप न भोगे मोहि भुगावे।
कौन उपाय करूँ पिय प्यारो,
साथ रहै पर हाथ न आवै।
करि हारी साधन बहुतेरे, होत न सिद्ध मनोरथ मेरे,
दोष कहा शंकर स्वामी कौ, कुटिल कर्म-गति नाच नचावै।
कौन उपाय करूँ पिय प्यारौ,
साथ रहै पर हाथ न आवै।

अमर मिलन

(भजन)

आज अली बिछुरौ पिय पायो–
मिट गये सकल कलेश री।
सागर ताल नदी नद नारे, ग्राम नगर गिरि कानन सारे,
एक न छोड़ो ढूँढ़ फिरी मैं, भटकी देश विदेश री।
आ० अ० बि० पि० पा० मि० स०॥
मैं विरहिन ऐसी बौरानी, सीखत डोली कपट कहानी,
घेर-घेर लोगन बहकाई, कर कोरे उपदेश री।
आ० अ० बि० पि० पा० मि० स०॥
बीत गई सारी तरुणाई, पर प्यारे की थाँग न पाई,
खोजत-खोजत मो दुखिया के, धौरे ह्वैगये केश री।
आ० अ० बि० पि० पा० मि० स०॥

योगी एक अचानक आयो, जिन मेरो भरतार बतायो,
सो शंकर साँचौ हितकारी, भ्रम-तम-पटल-दिनेश री।
आ० अ० बि० पि० पा० मि० स० ॥

———

प्रयाण पर अन्योक्ति

(दोहा)

जीव जन्म से अन्त लों, आयु यथा क्रम भोग।
करते हैं संसार से, योग विसार वियोग॥

(गीत)

है परसों रात सुहाग की,
दिन वर के घर जाने का।
पीहर में न रहेगी प्यारी, हा होगी हम सब से न्यारी,
चलने की करले तैयारी, बन मूरति अनुराग की,
धर ध्यान उधर जाने का।
दिन वर के घर जाने का॥

पातिव्रत से प्यारे पति को, जो पूजेगी धार सुमति को,
तो न निहारेगी दुर्गति को, लगन लगा अति लागकी,
प्रण रोप निडर जाने का।
दिन वर के घर जाने का॥

गङ्गा पावे सत्य वचन की, यमुना आवे सेवा तन की,
हो सरस्वती श्रद्धा मन की, महिमा प्रकट प्रयाग की,
रच रूपक तर जाने का।
दिन वर के घर जाने का॥
शंकर-पुर को तू जावेगी, सुख-संयोगामृत पावेगी,
गीत महोत्सव के गावेगी, सुधि विसार कुल-त्याग की,
सखि सोच न कर जाने का।
दिन वर के घर जाने का॥

मृत्यु

(भजन)

साँची मान सहेली,
परसों पीतम लैवे आवैगौ री।
मात, पिता, भाई, भौजाई, सबसों राख सनेह-सगाई,
दो दिन हिल-मिल काट वहाँ से, फिर को तोहि पठावेगौ री।
साँ० मा० स० प० पी० लै० आवैगौ री॥
अबकौ छेता नाँहि टरैगौ, जानौ पिय के संग परैगौ,
हम सब को तेरे बिछुरन कौ, दारुण शोक सतावैगौ री।
साँ० मा० स० प० पी० लै० आवैगौ री॥
चलने की तैयारी करले, तोशा बाँध गैल को धरले,
हाला-हाल बिदा की बिरियाँ, को पकवान बनावैगौ री।
साँ० मा० स० प० पी० लै० आवैगौ री॥

पुर बाहरलों पीहर बारे, रोवत साथ चलेंगे सारे,
शंकर आगे आगे तेरौ, डोला मचकत जावैगौ री।
साँ० मा० स० प० पी० लै० आवैगौ री॥

अन्योक्ति से उपदेश

(दोहा)

ज्ञातयौवना हो चुकी, गुड़ियों से मत खेल।
पूरा पूरा कर सखी, शंकर पिय से मेल॥

(गीत)

सजले साज सजीले सजनी,
मान विसार मनाले वर को।
गौरव अङ्गराग मलवाले, मेल-मिलाप तेल डलवाले,
न्हाले शुद्ध सुशील सलिल से, काढ़ कुमति-मैली चादर को।
स० सा० स० स० मा० म० वर को॥
ओढ़ सुमति की उज्ज्वल सारी, सद्गुण-भूषण धार दुलारी,
सीस गुँदाय नीति-नाइन से, कर टीका करुणा-केसर को।
स० सा० स० स० मा० म० वर को॥
आदर-अञ्जन आँज नवेली, खाकर प्रेम-पान अलवेली,
धार प्रसिद्ध सुयश की शोभा, दमकाले आनन सुन्दर को।
स० सा० स० स० मा० म० वर को॥

मेरी बात मान अवसर है, यौवनकाल बीतने पर है,
तू यदि अब न रिझावेगी तो, फिर न सुहावेगी शंकर को।
स० सा० स० स० मा० म० वर को॥

चेतावनी

(भजन)

लुट गयौ धींग धनी धन तेरौ।
मंजिल दूर पोच रथ पै चढ़, घर से चलो अबेरौ,
सूरज अस्त भयौ मारग में, कियौ न रैनबसेरौ।
लुट गयौ धींग धनी धन तेरौ॥
आधी रात भयानक वन में, तोहि नींद ने घेरौ,
चपल तुरंग अचानक चोंके, स्यंदन सर में गेरौ।
लुट गयौ धींग धनी धन तेरौ॥
सूत पूत कीचड़ में कचरौ, जीवित बचौ न चेरौ,
तू अपनी पूँजी ले भागौ, अटकौ आय लुटेरौ।
लुट गयौ धींग धनी धन तेरौ॥
छिन में छीन कमाई सारी, रीते हाथ खदेरौ,
सो न रह्यो अब जाहि कहत हो, शंकर मेरौ-मेरौ।
लुट गयौ धींग धीन धन तेरौ॥

---

*

सुधारक सिद्ध-समूह

(दोहा)

ब्रह्म-विवेकानन्द से, जीवन-जन्म सुधार ।
करते हैं संसार का, उपदेशक उद्धार ॥

(सुन्दरी-सवैया)

इस स्वर्ग-सहोदर भारत का, बुध वैदिक वीर सुधार करेंगे ।
अपनाय प्रथा मुनि मण्डल की, कवि शंकर धर्म-प्रचार करेंगे ॥
अनुकूल अखण्ड तपोबल पै, व्रतशील निरन्तर प्यार करेंगे ।
कर मेल अमायिक आपस में, सुकृती सबका उपकार करेंगे ॥

विवेक से शान्ति

(दोहा)

समझी थी संयोग को, मन की भूल वियोग ।
आज विवेकानन्द ने, दूर किया भ्रम-रोग ॥ २ ॥
वस्तु रूप से एक है, आकृति जाति अनेक ।
देह-देह में जीव का, दीपक तुल्य विवेक ॥ २ ॥

आर्त्त-नाद

(दोहा)

डूबे शोक-समुद्र में, भारत के सुख-भोग ।
हा ! निष्ठुर दुर्दैव ने, लूट लिये हमलोग ॥

धर्मवीरों की कर्म-वीरता

(दोहा)

काढ़ो मानव जाति के, जीवन का शुभ सार।
साधु, सुधारो देश को, सामाजिक बल धार॥

(मायात्मक लावनी)

जिनको उत्तम उपदेश, महा फल पाया,
उन अनघों ने अखिलेश, एक अपनाया।

(१)

बन गये सुबोध, विनीत, ब्रह्म-अनुरागी।
उमगे बल, पौरुष पाय, शिथिलता त्यागी॥
कर सिद्ध विविध व्यापार, कर्म-जय जागी।
उन्नति का देख उठान, अधोगति भागी॥
फटके जिन के न समीप, मोह-मय-माया।
उन अनघों ने अखिलेश, एक अपनाया॥

(२)

सब ने सब दोष विसार, दिव्य गुण धारे।
तज वैर निरन्तर प्रेम-प्रसंग प्रचारे॥
चेतन, जीवित, ऋषि, देव, पितर सत्कारे।
कर दिये दूर खल-खर्व, कुमति के मारे॥
जिनके कुल में सुख-मूल, सुधार समाया।
उन अनघों ने अखिलेश, एक अपनाया॥

(३)

मंगल-कर वैदिक कर्म, किया करते हैं।
ध्रुव धर्म-सुधा भर पेट, पिया करते हैं॥
भर-शक्ति यथा-विधि दान, दिया करते हैं।
कर जीवन, जन्म पवित्र, जिया करते हैं॥
जिनका शुभ काल कुयोग, मिटा कर आया।
उन अनघों ने अखिलेश, एक अपनाया॥

(४)

द्विज ब्रह्मचर्य-व्रत-शील, वेद पढ़ते हैं।
गौरव-गिरि पै प्रण रोप, रोप चढ़ते हैं॥
अभिलषित लक्ष्य की ओर, वीर बढ़ते हैं।
गुरु-कुल-सागर से रत्न, रूप कढ़ते हैं॥
जग-जीवन जिनके वंश, विटप की छाया।
उन अनघों ने अखिलेश, एक अपनाया॥

(५)

नव द्रव्य-जन्य गुण, दोष भेद, पहचाने।
कृषि-कर्म, रसायन, शिल्प, यथा-विधि जाने॥
दर्शन, ज्योतिष, इतिहास, पुराण बखाने।
पर जटिल गपोड़े वेद, विरुद्ध न माने॥
सब ने कोविद, कविराज, जिन्हें बतलाया।
उन अनघों ने अखिलेश, एक अपनाया॥

(६)

विदुषी दुलहिन पौगण्ड, विज्ञ वरते हैं।
बल-नाशक बाल-विवाह, देख डरते हैं।
विधवा-वर बन वैधव्य, दूर करते हैं।
अथवा नियोग-फल सोंप, शोक हरते हैं॥
जिन की विधि ने कुलबोर, निषेध मिटाया।
उन अनघों ने अखिलेश, एक अपनाया॥

(७)

ऋजु-गति-शासन को शुद्ध, न्याय कहते हैं।
कटु कुटिल नीति से दूर, सदा रहते हैं॥
समुचित पद्धति की गम्य, गैल गहते हैं।
अनुचित-कुचाल का दर्प, नहीं सहते हैं॥
अभिमान-अधम का भाव, न जिनको भाया।
उन अनघों ने अखिलेश, एक अपनाया॥

(८)

घर छोड़ देश परदेश, निडर जाते हैं।
व्यवसाय-शील सब ठौर, सुयश पाते हैं॥
अति शुद्ध अनामिष अन्न, सरस खाते हैं।
पर छुआछूत रच दम्भ, न दिखलाते हैं॥
जिन का व्यवहार विलास, प्रशस्त कहाया।
उन अनघों ने अखिलेश, एक अपनाया॥

(६)

हितकर अपना प्रत्येक, शुद्ध जीवन से।
मन-शुद्ध, किये मल दूर, गिरा से, तन से॥
मठ कपट-मतों के फोड़, उग्र खण्डन से।
जड़-पूजन की जड़ काट, मिले चेतन से॥
जिनके आचरण विलोक, लोक ललचाया।
उन अनघों ने अखिलेश, एक अपनाया॥

(१०)

रच ग्रन्थ घने प्रिय पत्र, अनेक निकाले।
बन कर गोपाल, अनाथ, अकिञ्चन पाले॥
नर-नारि अवैदिक भिन्न, भिन्न मत वाले।
रच वर्ण यथा गुण-कर्म, शुद्ध कर डाले॥
शंकर ने जिन पर धर्म, मेघ बरसाया।
उन अनघों ने अखिलेश, एक अपनाया॥

देश-भक्तों का विलाप

(सुन्दरी सवैया)

हम दीन-दरिद्र हुताशन में, दिन-रात पड़े दहते रहते हैं।
बिन मेल विरोध महानन्द में, मन बोहित से बहते रहते हैं॥
कवि शंकर काल कुशासन की, फटकार कड़ी सहते रहते हैं।
पर भारत के गत गौरव की, अनुभूत कथा कहते रहते हैं॥

रामलीला

(दोहा)

साधन है सद्धर्म का, राम-चरित्र उदार।
प्यारे, अपना ले इसे, जीवन-जन्म सुधार॥

(मायात्मक लावनी)

प्रभु शंकर को अपनाय, समाज सुधारो।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो॥

(१)

सुत-हीन दीन अवधेश, घना घबराया।
गुरु से सदुपाय विषाद, सुना कर पाया॥
शृङ्गी ऋषि वरद बुलाय, सुयाग रचाया।
खाकर हवि-शेष सगर्भ, सुईं नृप-जाया॥
मख-महिमा यों सब ओर, सुबुध विस्तारो।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो॥

(२)

धनि कौशल्या, सुख-सदन, राम जनमाये।
केकय-तनया ने भरत, भागवत जाये॥
सौमित्रि सहोदर लखन, अरिघ्न कहाये।
सुत वेद-चुतुष्टय रूप, नृपति ने पाये॥
उपजें इस भाँति सुपुत्र, मिलें × फल चारो।
पढ़ राम-चरित्र-पवित्र, मित्र उर धारो॥

× फल चारो = धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष।

(३)

प्रकटे अवनीश-कुमार, मनोहर चारो ।
करते मिल बाल-विनोद, बन्धु-वर चारो ॥
गुरुकुल में रहे समोद, धर्म-धर चारो ।
पढ़ वेद बोध-बल पाय, बसे घर चारो ॥
इमि ब्रह्मचर्य-व्रत धार, विवेक पसारो ।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो ॥

(४)

रघुराज, रजायुस पाय, बाण, धनु धारे ।
मुनि साथ राम अभिराम, सबन्धु सिधारे ॥
गुरु कौशिक से गुण सीख, सामरिक सारे ।
मख मंगल-मूल रखाय, असुर संहारे ॥
ऋषि-रक्षक यों बन वीर, दुष्ट-दल मारो ।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो ॥

(५)

मुनि गाधि-पुत्र भट श्याम, गौर बल-धारी ।
पहुँचे मिथिलापुर राज, विभूति निहारी ॥
शिव-धनुष राम ने तोड़, पाय यश भारी ।
ब्याही विधि सहित समोद, विदेह-कुमारी ॥
करिये इस भाँति विवाह, कुलीन-कुमारो ।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो ॥

(६)

अब लखन, जानकी, राम, अवध में आये ।
घर-घर बाजे सुख-मूल, विनोद-बधाये ।।
हित, प्रेम, राज-कुल और, प्रजा पर छाये ।
सब ने दिन वैर-विरोध, विसार विताये ।।
इस भाँति रहो कर मेल, भले परिवारो ।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो ।।

(७)

नृप ने सुख का सब ठौर, विलोक बसेरा ।
कर जोड़ कहा यह ईश, सुयश है तेरा ।।
अब राम बने युवराज, भरे मन मेरा ।
रवि-वंश दिपे कर अस्त, अधर्म-अँधेरा ।।
सुत सज्जन का इस भाँति, सुभद्र विचारो ।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो ।।

(८)

अभिषेक-कथा सुन मित्र, अमित्र, उदासी ।
उलही मिल सब की चाह, कल्प-लतिका-सी ।।
वर केकय-तयना माँग, उठी कुदशा-सी ।
युवराज भरत हो राम, बने वन-वासी ।।
कर यों कुनारि पर प्यार, न जीवन हारो ।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो ।।

(९)

सुन, देख, कराल, कठोर, कुहाव-कहानी ।
बरजी परिणाम सुझाय, न समझी रानी ॥
जब मरण-काल की व्याधि, कु-पति ने जानी ।
उमड़ा तब शोक-समुद्र, बहा वरदानी ॥
वर नारि अनेक न उग्र, अनीति उघारो ।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो ॥

(१०)

सुधि पाकर पहुँचे राम, राज-दर्शन को ।
सकुचे पग पूज कुदृश्य, न भाया मन को ॥
सुन वचन पिता के मान, धर्म-पालन को ।
कर जोड़ कहा अब तात ! चला मैं वन को ॥
पितु-पायक यों बन धाम, धरा-धन वारो ।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो ॥

(११)

मिल कर जननी से माँग, असीस, विदाई ।
हठ जनक सुता की भक्ति, भरी मन भाई ॥
सुन लक्ष्मण का प्रण-पाठ, कहा चल भाई !
घर तज सानुज-सस्त्रीक, चले रघुराई ॥
निज नारि सती, प्रिय बन्धु, न वीर विसारो ।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर

(१२)

पहुँचे पुनि पितु के पास, अवध के प्यारे ।
झट भूषण, वस्त्र उतार, साधु-पट धारे ॥
सब से मिल-भेंट सु-भोग, विलास विसारे ।
रथ पै चढ़ वन की ओर, सशस्त्र सिधारे ॥
बन कर्म-वीर इस भाँति, स्वभाव सँवारो ।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो ॥

(१३)

तमसा तक पहुँचे लोग, प्रेम-रस-पागे ।
तट पै विन चेत प्रसुप्त, पड़े सब त्यागे ॥
सिय, राम, सचिव, सौमित्रि, चल दिये आगे ।
उठ भोर, गये घर लौट, अधीर अभागे ॥
मन को इस भाँति वियोग, उदधि से तारो ।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो ॥

(१४)

रथ शृङ्गवेरपुर-तीर, वीर-वर लाये ।
गुह ने मिल-भेंट समोद, उतार टिकाये ॥
सब ने वह रात बिताय, न्हाय, फल खाये ।
रघुनायक ने समझाय, सचिव लौटाये ॥
सुजनों पर यों अनुराग, विभूति बगारो ।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो ॥

(१५)

सुरसरिता-तीर, नवीन, विरक्त पधारे।
पग धोय धनुक+ने पार, तुरन्त उतारे॥
पहुँचे प्रयाग व्रत-शील, स्वदेश-दुलारे।
मुनि-मण्डल ने हित-प्रेम, पसार निहारे॥
इस भाँति अतिथि को पूज, सदय सत्कारो।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो॥

(१६)

गुरु भरद्वाज ने सुगम, गैल बतलाई।
यमुना को उतरे सहित, सीय दोऊ भाई॥
निशि वाल्मीक मुनि निकट, सहर्ष बिताई।
चढ़ चित्रकूट पै विरम, रहे रघुराई॥
इस भाँति सहो सब कष्ट, दयालु उदारो।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो॥

(१७)

वन से न फिरे, रघुनाथ, न लक्ष्मण सीता।
पहुँचा सुमंत्र नृप-तीर, धीर धर जीता॥
बिलखे नर-नारि निहार, खड़ा रथ रीता।
दशरथ का जीवन-काल, राम विन बीता॥
मरना इस भाँति न ज्ञान, गमाय गमारो।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो॥

+ धनुक = केवट, मल्लाह।

(१८)

गुरु ने परिताप-अँगार, अनेक बुझाये।
सुधि भेज भरत, शत्रुघ्न, तुरन्त बुलाये॥
नृप का शव-दाह कराय, सुधी समझाये।
पर वे परपद का लोभ, न मन में लाये॥
बस अनधिकार की ओर, न वीर निहारो।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो॥

(१९)

घर घोर अमङ्गल-मूल, अनीति निहारी।
समझी अवनति का हेतु, सगी महतारी॥
सकुचे रघुपति की गैल, चले प्रण धारी।
लग लिया भरत के साथ, दुखी दल भारी॥
धर पकड़ वैर की फूट, फोड़ फटकारो।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो॥

(२०)

मिल भेंट लिया गुह साथ, प्रयाग अन्हाये।
चढ़ चित्रकूट पर प्रेम, प्रवाह बहाये॥
प्रभु पाहि नाम कर दण्ड, प्रणाम सुनाये।
झपटे सुन राम उठाय, कण्ठ लिपटाये॥
इस भाँति मिलो, कुल-धर्म, अशोक-कुठारो।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो॥

(२१)

सब ने मिल भेंट अनिष्ट, प्रसङ्ग बखाना।
सुन मरण पिता का राम, कुढ़े दुख माना॥
पर ठीक न समझा लौट, नगर को जाना।
जड़ भरत+पादुका पाय, फिरे प्रण ठाना॥
व्रत-जल से विधि के पैर, सुपुत्र पखारो।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो॥

(२२)

कर जोड़-जोड़, कर, यत्न, अनेक मनाये।
पर डिगे न प्रण से राम, महाचल पाये॥
हिय हार-हार नर-नारि, अवध में आये।
विन बन्धु भरत ने दीन, बन्धु अपनाये॥
प्रतिनिधि बन औरों की न, धरोहर मारो।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो॥

(२३)

परिवार, प्रजा, कुल से न, कभी मुख मोड़ा।
मनु-हायन भर को नेह, विपिन से जोड़ा॥
नटखट वायस का अक्ष, मार शर फोड़ा।
गिरि चित्रकूट बहु काल, बिता कर छोड़ा॥
विचरो सब देश-विदेश, विचार प्रचारो।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो॥

+जड़ भरत = राम के प्रेम से अधीर होकर सुधबुध भूल गये

(२४)

अब दण्डक वन का दिव्य, दृश्य मन भाया।
बध कर बिराध को गाढ़, कुयोग मिटाया ॥
मुनि-मण्डल को पग पूज, पूज अपनाया।
फिर पंचवटी पर जाय, बसे सुख पाया ॥
समझो समाज के काज, कृपा कर सारो।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो ॥

(२५)

तरु फूल फले छवि राम-कुटी पर छाई।
धर सूर्पनखा वर-वेष, अचानक आई ॥
कुल-बोर मनोरथ सिद्ध, नहीं कर पाई।
कर लक्ष्मण ने श्रुति-नाक, विहीन हटाई ॥
इमि एक नारि-व्रत-शील, रहो जड़ जारो।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो ॥

(२६)

नकटी खर-दूषण-सेन, चढ़ा कर लाई।
रघुपति ने सब को मार, काट जय पाई ॥
फिर रावण को करतूत, समस्त सुनाई।
सुन मान बहन की बात, चला झट भाई ॥
धिक् नाक कटाय न ठौर, ठौर झख मारो।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो ॥

(२७)

चढ़ पञ्चवटी पर दुष्ट दशानन* आया।
मिल कर मारीच कुरंग, बना रच माया॥
सिय ने पिय को पशु बध्य, विचित्र बताया।
झट राम उठे शर-लक्ष्य, पिशाच बनाया॥
छल-मैल हटा कर न्याय, सुनीर निथारो।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो॥

(२८)

मृग भाग चला विकराल, विपति ने घेरा।
रघुनायक ने खल खेल, खिलाय खदेरा॥
शर खाय मरा इस भाँति, पुकार घनेरा।
चल, दौड़ सुहृद् सौमित्रि, दुःख हर मेरा॥
जमता न कपट का रंग, सदैव लबारो।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो॥

(२९)

सुन घोर अमंगल-नाद, दुष्ट-सम्मति का।
सिय ने समझा वह बोल, प्रतापी पति का॥
उस ओर लखन को भेज, तोख दे अति का।
रह गई कुटी पर खोल, द्वार दुर्गति का॥
भ्रम, भेद, भूल, भय, शोक, लुकें ललकारों।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो॥

---

*दशों दिशाओं में रावण का कोई रोकने वाला नहीं था इसी कारण से उसका एक नाम "दशानन" भी पड़ गया।

(३०)

मुनि बन पहुँचा लंकेश, कुशील पुकारा।
यति जनक-सुता ने जान, असुर सत्कारा॥
पकड़ी ठग ने निज मींच, अमङ्गल धारा।
हित कर कुलटा का वज्र, सती पर मारा॥
अधमाधम को सब साधु, अधिक धिक्कारो।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो॥

(३१)

हर जनक-सुता को मूढ़, महाधम लाया।
मगमें प्रचण्ड रण रोप, जटायु गिराया॥
चढ़ व्योम-यान पर नीच, निरङ्कुश आया।
रखली घर पाप कमाय, हाय पर-जाया॥
मत चोर बनो कुल-बोर, बलिष्ठ बिजारो।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो॥

(३२)

मृग-रूप निशाचर मार, फिरे रघुराई।
अधबर में बन्धु विलोक, विकलता छाई॥
मिल कर आश्रम को लौट, गये दोऊ भाई॥
पर जनकनन्दिनी हा! न, कुटी पर पाई।
ध्रुव धर्म-धुरन्धर धीर, अनिष्ट सँहारो।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो॥

(३३)

अति व्याकुल सानुज राम, विरह के मारे ।
सब ओर फिरे सब ठौर, अधीर पुकारे ॥
गिरि, गह्वर, कानन, कुंज, कछार निहारे ।
पर मिला न सिय का खोज, खोज कर हारे ॥
इस भाँति वियोग-समुद्र, सराग मझारो ।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो ॥

(३४)

कढ़ गई किधर को लाँघ, धनुष की रेखा ।
इस भाँति किया अनुराग, पसार परेखा ॥
मग में फिर घायल-अङ्ग, गृद्ध-पति देखा ।
मर गया सुना कर सीय, हरण का लेखा ॥
उपकार करो कर कोटि, उपाय उदारो ।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो ॥

(३५)

सुन रावण की करतूति, जटायु जलाया ।
निरखे वन, मार कबन्ध, वसन्त न भाया ॥
फिर शवरी के फल खाय, महेश मनाया ।
टिक पम्पापुर पर ऋष्यमूक पुनि पाया ॥
कर पौरुष मानव-धर्म, स्वरूप निखारो ।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो ॥

(३६)

रघुनाथ-लखन को देख, कीश घबराये।
समझे विधि क्या भट बालि, प्रबल के आये ॥
वन विप्र मिले हनुमान, पीठ धर लाये।
नर वानर-पति ने पूज, सुमित्र बनाये ॥
कर मेल पियो इस भाँति, प्रेम-रस प्यारो।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो ॥

(३७)

रघुनायक ने निज-वृत्त, समस्त बखाना।
सुनकर हरीश का हाल, घना दुख माना ॥
शुभ समझ बन्धु से बन्धु, सभेद लड़ाना।
प्रण बालि-निधन का ठोस, ठसक से ठाना ॥
दृढ़ टेक टिका कर सत्य, वचन उच्चारो।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो ॥

(३८)

शर मार मही पर हाड़, ताड़, तरु, डाले।
फिर कहा विजय सुग्रीव, बालि पर पाले ॥
ललकार लड़े हरि-बन्धु, कुभाव निकाले।
लुक रहे विटप की ओट, राम रखवाले ॥
दबको करिये परकाज, न खाँस मठारो।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो ॥

(३९)

समझे जब राम, सुकण्ठ, समर में हारा।
तब तुरत बालि बलवान, मार शर मारा॥
फिर अङ्गद को अपनाय, मना कर तारा।
कर दिया सखा कपि-राज, मिटा दुख सारा॥
ढकलो अति गूढ़ महत्त्व, प्रमाण-पिटारो।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो॥

(४०)

अभिषेक हुआ सुख-साज, समङ्गल साजे।
अभिनन्दन-सूचक शंख, ढोल, ढप, बाजे॥
उमगी बरसात खगोल, घेर घन गाजे।
पर्वत पर विरही राम, सबन्धु विराजे॥
तज कपट सुमित्रादर्श, बनो सब यारो।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो॥

(४१)

सुख रहित राम ने गीत, विरह के गाये।
बरसात गई दिन शुद्ध, शरद के आये॥
कपि-नायक ने भट, कीश, भालु बुलवाये।
सिय की सुधि को सब, ओर बरूथ पठाये॥
करिये प्रिय प्रत्युपकार, सुचरितागारो।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो॥

(४२)

रघुपति ने सिय के चिन्ह, विशेष बताये।
मुँदरी लेकर हनुमान, ससेन सिधाये॥
निरखे परखे सब देश, सिन्धु-तट आये।
पर लगी न कुछ भी थाँग, थके अकुलाये॥
तजिये न अनुष्ठित कर्म, सुकृत आधारो।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो॥

(४३)

सब कहें मरे, प्रभु-काज, नहीं कर पाया।
सुन कर उमगा सम्पाति, पता बतलाया॥
उछला जलनिधि को लाँघ, प्रभञ्जन-जाया।
रिपु-गढ़ में किया प्रवेश, क्षुद्र कर काया॥
फल मान असम्भव का न, प्रवीण बनारो।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो॥

(४४)

सिय का उपताप घटाय, दूर कर शङ्का।
कपि हुआ प्रसिद्ध बजाय, विजय का डंका॥
बँध गया, छुटा, खुल खेल, जला कर लङ्का।
चल दिया शिरोमणि पाय, वीर-वर बंका॥
कर स्वामि-काज इस भाँति, कूद किलकारो।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो॥

(४५)

कर काज मिला हनुमान, भालु-कपि ऊले।
पहुँचे सुकण्ठ-पुर पेड़, पेड़ पर झूले॥
प्रभु को सब हाल सुनाय, खाय फल फूले।
मणि जनक-सुता की देख, राम सुधि भूले॥
कर विनय प्रेम-प्रासाद, विनीत बुहारो।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो॥

(४६)

रघुवर ने सिय की थाँग, सुनिश्चित पाई।
करदो रिपु-गढ़ की ओर, तुरन्त चढ़ाई॥
कपि-भालु-चमू प्रभु-साथ, असंख्य सिधाई।
अविराम चली भट-भीड़, सिन्धु-तट आई॥
अनघा-धन को कर यत्न, अनेक उबारो।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो॥

(४७)

हठ पकड़ रहा लंकेश, सुमंत्र न माना।
चल दिया विभीषण बन्धु, काल-वश जाना॥
समझा रघुपति के पास, पुनीत ठिकाना।
मिल गया कटक में दास, कहाय विराना॥
बस यों सिर से भय-भार, न भीरु उतारो।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो॥

(४८)

पुल बाँध जलधि का पार, गये दल सारे।
उतरे सुबेल पर राम, सबन्धु सुखारे॥
पहुँचा अङ्गद बन दूत, वचन विस्तारे।
करले रघुपति से मेल, दशानन प्यारे॥
अरि-कुल का भी घर घेर, वृथा न उदारो।
पढ़ राम-चरित्र-पवित्र, मित्र उर धारो॥

(४९)

सुन बालि-तनय की बात, न ठग ने मानी।
छल-बल-पावक पर हा ! न, पड़ा हित-पानी॥
रघुनायक ने अनरीति, असुर की जानी।
कर कोप उठे भट-मार, ठना-ठन ठानी॥
अधमाधम रिपु को शूर, सकुल संहारो।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो॥

(५०)

चट-पट रण-चण्डी चेत, चढ़ी कर तोले।
झट नयन रुद्र ने तीन, प्रलय के खोले॥
गरजे जय के हरि, स्यार अजय के बोले।
हलचल में हर्ष, विषाद, थिरकते डोले॥
इस भाँति महा रण रोप, हुमक हुंकारो।
पढ़ राम–चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो॥

(५१)

भिड़ गये भालु-कपि-वृन्द, वीर रिपु-घाती।
अटके रजनीचर, चोर, बधिक, उत्पाती ॥
छिप गया छेद घननाद, लखन की छाती ।
झट ले पहुँचे प्रभु-पास, सुदक्ष सँगाती ॥
अति कष्ट पड़े पर धीर, न हिम्मत हारो।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो ॥

(५२)

बिन चेत अनुज को देख, राम घबराये ।
हनुमान द्रोण गिरि जाय, महौषधि लाये ॥
कर शीघ्र शल्य प्रतिकार, सुखेन सिधाये ।
उठ बैठे लखन, सशोक, समस्त सिहाये ॥
बन पौरुप-पंकज-भृङ्ग, सुजन गुंजारो ।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो ॥

(५३)

उठ कुम्भकर्ण रण-धीर, अड़ा मतवाला ।
समझे कपि-भालु सजीव, महीधर काला ॥
रघुनायक ने इषु मार, व्यग्र कर डाला ।
तन खण्ड-खण्ड कर प्राण, प्रपञ्च निकाला ॥
प्रतिभट-पिशाच के अंग, अवश्य विदारो।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो ॥

(५४)

मचगया घना घमसान, हुआ अँधियारा ।
भट कटें कटक में युद्ध, प्रचण्ड पसारा ।।
तड़पें तन, उगलें लोथ, रुधिर की धारा ।
घननाद अभय सौमित्रि, सुभट ने मारा ।।
यति वीर महा व्रत शील, विपत्ति बिड़ारो ।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो ।।

(५५)

उजड़े घर सेन समेत, कुटुम्ब कटाया ।
अब जनक-सुता का चोर, समर में आया ।।
रच-रच माया बल-दर्प, सदम्भ दिखाया ।
पर बचा न रावण राम-विजय ने खाया ।।
खल-दल को मार-मिटाय, कु-भार उतारो ।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो ।।

(५६)

कर सकल हेम-प्रासाद, नगर के रीते ।
कट मरे निशाचर वीर, भालु, कपि जीते ।।
रघुवर बोले दिन आज, विरह के बीते ।
अबतो मिल मंगल मान, सुवदना सीते ।।
बिछुड़ो वनिता पर प्रेम, सुरुचि संचारो ।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो ।।

(५७)

विधवा-दल का परिताप, विलाप मिटाया।
अवनीश विभीषण वंश, वरिष्ठ बनाया॥
सिय से रघुनाथ सबन्धु, मिले सुख पाया।
दिन फिरे अवध के ध्यान, भरत का आया॥
निज जन्म-भूमि पर प्रेम, अवश्य प्रसारो।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो॥

(५८)

फिर पुष्पक पै कपि भालु, प्रधान चढ़ाये।
चढ़ लखन, जानकी, राम, चले घर आये॥
गुरु, मात, बन्धु, प्रिय, दास, प्रजा-जन पाये।
सब ने मिल-भेंट समोद, शम्भु-गुण गाये॥
बिछुड़ो! कर मेल-मिलाप, प्रवास विसारो।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो॥

(५९)

सिय, राम, भरत, सौमित्रि, मिले अनुरागे।
पट, भूषण सुन्दर धार, वन्य-व्रत त्यागे॥
उमगे सुख, भोग-विलास, विघ्न, भय भागे।
अपनाय अभ्युदय भव्य, राज-गुण जागे॥
चमको अब छार छुड़ाय, ज्वलित अङ्गारो।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो॥

(६०)

अभिमंत्रित मंगल-मूल, साज सब साजे।
प्रभुतासन पै रघुनाथ, सशक्ति विराजे॥
घर घर गायन, वादित्र, मनोहर बाजे।
सुनते ही जय-जयकार, राज-गज गाजे॥
बनिये शंकर इस भाँति, धर्म-अवतारो।
पढ़ राम-चरित्र पवित्र, मित्र उर धारो॥

वासन्त-विकास

(दोहा)

छूटे शीत, निदाघ लों, जिसकी छवि के छोर।
फूल रहा देखो सखा, उस वसन्त की ओर॥

(गीत)

छवि ऋतु-राज की रे,
अपनी ओर निहार, निहारो॥
घटती हैं घड़ियाँ रजनी की, बढ़ता है दिन-मान,
सकुचेगी इस भाँति अविद्या, विकसेगा गुरु ज्ञान।
छ० ऋ० की० अ० ओर नि० निहारो॥
कर पतझाड़ चढ़ी पेड़ों पै, हरियाली भरपूर,
यों अवनति को उन्नति द्वारा, अब तो कर दो दूर।
छ० ऋ० की० अ० ओर नि० निहारो॥

छदन बेलि, वृक्षों पर छाये, रहे अपर्ण करील,
मन्द सुअवसर पाते तोभी, बने न वैभव-शील।
छ० ऋ० की० अ० ओर नि० निहारो॥
उलहे गुल्म, लता, तरु सारे, अंकुर कोमल-काय,
जैसे न्याय परायण नृप की, प्रजा बढ़े सुख पाय।
छ० ऋ० की० अ० ओ० नि० निहारो॥
हार हरे कर दिये वसन्ती, सरसों ने सब खेत,
मानो सुमति मिली सम्पति से, धर्म, सुकर्म समेत।
छ० ऋ० की० अ० ओ० नि० निहारो।
मधुर रसीले फल देने को, बौरे सघन रसाल,
जैसे सकल सुलक्षण, धारें, होनहार कुल-पाल।
छ० ऋ० की० अ० ओ० नि० निहारो॥
बिगड़े फुलबुन्दे कदम्ब के, कलियानी कचनार,
बन बैठे धनहीन धनी यों, निर्धन कमलाधार।
छ० ऋ० की० अ० ओ० नि० निहारो॥
धौरे सुमन सुगन्धित धारें, सदल सेवती, सेव,
मानो शुद्ध सुयश दरसाते, हिलमिल देवी, देव।
छ० ऋ०।की० अ० ओ० नि० निहारो॥
गेंदा खिले कुसुम केसरिया, पाटल पुष्प अनूप,
किम्बा सहित समाज विराजे, बुध मंत्री, गुरु भूप।
छ० ऋ० की० अ० ओ० नि० निहारो॥

फूल रहे सर में रस बाँटें, उपकारी अरविन्द,
दान पाय गुण-गण गाते हैं, याचकवृन्द-मिलिन्द।
छ० ऋ० की० अ० ओ० नि० निहारो ॥

फूले मसि-मिश्रित-अरुणारे, किंशुक सौरभ हीन,
विचरें यथा असाधु रँगीले, ज्ञानशून्य तन-पीन।
छ० ऋ० की० अ० ओ० नि० निहारो ॥

अरुण फूल फूले सेमर के, प्रकट कोश गम्भीर,
क्या लोहित मणि की कुलियों में, माँगरहे मधु वीर।
छ० ऋ० की० अ० ओ० नि० निहारो ॥

बढ़-बढ़ गण सत्यानाशी के, विकसे कण्टक धार,
किम्बा विशद वेष कटु भाषी, वञ्चक करें विहार।
छ० ऋ० की० अ० ओ० नि० निहारो ॥

सुमन, मंजरी बरसाते हैं, वन, बीहड़, आराम,
क्या शर मार-मार रसिकों से, अटक रहा है काम।
छ० ऋ० की० अ० ओ० नि० निहारो ॥

पुष्प-पराग-सुगन्धि उड़ाता, शीतल मन्द समीर,
यों सब को सुख पहुँचाता है, धर्म-धुरन्धर धीर।
छ० ऋ० की० अ० ओ० नि० निहारो ॥

कोकिल कूँजें, मधुकर गूँजें, बोलें विविध विहंग,
क्या मिल रहे साम-गायनसे, मुरली, वेणु, मृदंग।
छ० ऋ० की० अ० ओ० नि० निहारो ॥

त्याग विरोध मिले समता से, सरदी और निदाघ,
वैर विसार तपोवन में ज्यों, साथ रहें मृग-बाघ।
छ० ऋ० की० अ० ओ० नि० निहारो ॥
रसिक-शत्रु वासन्ती विधि का, करते हैं अपमान,
ज्यों रस-भाव भरी कविता को, सुनते नहीं अजान।
छ० ऋ० की० अ० ओ० नि० निहारो ॥
भर देता है भारत भर में, मधु आनन्द, उमङ्ग,
भङ्ग पिला कर शंकर का भी, कर डाला व्रत-भङ्ग।
छ० ऋ० की० अ० ओ० नि० निहारो ॥

देवचतुष्टय

(दोहा)

इष्ट देव संसार का, शङ्कर जगदाधार।
शिष्ट देव माता, पिता, गुरु, अभ्यागत चार ॥

(गीत)

वैदिक विद्वान बताते हैं,
साकार देवता चार ॥
माता ने जन कर पाला है, कौन पिता-सा रखवाला है,
सेवक, सेवा कर दोनों की, सविनय बारम्बार।
वै० वि० ब० सा० देवता चार ॥

जिस ने चारों वेद पढ़ाये, शुद्धाचार विचार बढ़ाये,
उस विद्या-धारी सद्गुरु को, पूज प्रमाद विसार।
वै० वि० ब० सा० देवता चार ॥
खोटी गैल न जो अपनावे, सब को सीधा पन्थ बतावे,
ऐसे धर्माधार अतिथि का, कर स्वागत-सत्कार।
वै० वि० ब० सा० देवता चार ॥
देव महाराजादि अन्य हैं, न्यायशील श्रद्धेय धन्य हैं,
शंकर मिला उक्त चारों को, सर्वोपरि अधिकार।
वै० वि० ब० सा० देवता चार ॥

———

ब्रह्मचारिणी बालिका +

(दोहा)

सोते रहें न जागते, जो जन पिछली रात।
बनते हैं वे आलसी, ऊत न बुध विख्यात ॥

(गीत)

वह ऊबी रवि की लालिमा,
जगादे इसे मैया।
पीली फटते ही उठ बैठे, सारे वैदिक भैया,
अबलों देख पड़ा सोता है, तेरा लाल कन्हैया।
(री) जगादे इसे मैया ॥

+ एक लड़की छोटे भाई को सोता देख कर माता से कहती है।

ब्रह्म-काल में गुरु से आगे, भागे छोड़ बिछैया,
छुट्टी पाकर शौच क्रिया से, न्हा-धो चुके न्हवैया।
(री) जगादे इसे मैया ॥
बाल ब्रह्मचारी व्रत-धारी, बैठे डाल चटैया,
सन्ध्या, ध्यान, होम करते हैं, पाँचो याग करैया।
(री) जगादे इसे मैया ॥
कर व्यायाम चले संध्या को, चारे वेदपढ़ैया,
हे शंकर ! आलस्य न, डोबे धर्म-कर्म की नैया।
(री) जगादे इसे मैया ॥

———

वैदिक विवाह

(दोहा)

धार तेज तारुण्य का, एक नारि नर एक।
दो-दो दम्पति प्रेम से, प्रगटें ग्रही अनेक ॥

(गीत)

उमगी महिमा उत्कर्ष की,
सुख-मूल विवाह किया है।
देखो नामी घर का वर है, विज्ञ ब्रह्मचारी सुन्दर है,
आयु पचीसी से ऊपर है, दुलहिन षोडश वर्ष की।
शुभ योग मिलाय लिया है।
सुख-मूल विवाह किया है ॥

मण्डप के भीतर बैठे हैं, सप्तपदी ये कर बैठे हैं,
चारों भामर भर बैठे हैं, पाय परम निधि हर्ष की।
हिल-मिल पीयूष पिया है।
सुख-मूल विवाह किया है॥
बैठे सभ्य-सुबोध बराती, पूजें प्रेम पसार घराती,
नारि सीठने एक न गाती, समुचित भारतवर्ष की।
विधि का उपदेश दिया है।
सुख–मूल विवाह किया है॥
रण्डी, भाँड़, कुसंग नहीं है, आमिष, हाला, भंग नहीं है,
गुण्डों का हुरदंग नहीं है, कुमति अधम-आमर्ष की।
तज शंकर कर्म जिया है।
सुख–मूल विवाह किया है॥

प्रचण्ड प्रण पंचदशी

(शुद्धगात्मक मिलिन्दपाद)

(१)

दया का दान देने को, जिन्होंने जन्म धारे हैं।
न ब्रह्मानन्द से न्यारे, न विद्या ने विसारे हैं॥
जिन्होंने योग से सारे, खरे-खोटे निहारे हैं।
प्रतापी देश के प्यारे, विदेशों के दुलारे हैं॥
हमें अन्धेर-धारा से, भला वे क्यों न तारेंगे।
बिगाड़ों को बिगाड़ेंगे, सुधारों को सुधारेंगे॥

(२)

भलाई को न भूलेंगे, सुशिक्षा को न छोड़ेंगे।
हठीले प्राण खोदेंगे, प्रतिज्ञा को न तोड़ेंगे॥
प्रजा के और राजा के, गुणों की गाँठ जोड़ेंगे।
भिड़ेंगे भेद का भाँडा, धड़ाका मार फोड़ेंगे॥
लड़ेंगे लोभ-लीला के, लुटेरों से न हारेंगे।
बिगाड़ों को बिगाड़ेंगे, सुधारों को सुधारेंगे॥

(३)

जतीले जाति के सारे, प्रबन्धों को टटोलेंगे।
जनों को सत्य-सत्ता की, तुला से ठीक तोलेंगे॥
बनेंगे न्याय के नेगी, खलों की पोल खोलेंगे।
करेंगे प्रेम की पूजा, रसीले बोल बोलेंगे॥
गपोड़े पागलों के-से, समाजों में न मारेंगे।
बिगाड़ों को बिगाड़ेंगे, सुधारों को सुधारेंगे॥

(४)

बनेगी सभ्यता-देवी, बड़ाई देव-दूतों की।
हमारे मेल को मस्ती, मिटावेगी न ऊतों की॥
करेंगे साहसी सेवा, सदाचारी सपूतों की।
घरों में तामसी-पूजा, न होगी प्रेत-भूतों की॥
मतों के मान मारेंगे, कुपन्थों को बिसारेंगे।
बिगाड़ों को बिगाड़ेंगे, सुधारों को सुधारेंगे॥

(५)

अड़ीले अन्धविश्वासी, उलूकों को उड़ादेंगे।
अछूती छूतछैया की, अछोपाई छुड़ादेंगे॥
मरों के साथ जीतों के, जुड़े नाते तुड़ादेंगे।
तरेंगे ज्ञान-गंगा में, अविद्या को बुड़ादेंगे॥
सुधी सद्धर्म धारेंगे, सुकर्मों को उघारेंगे।
बिगाड़ों को बिगाड़ेंगे, सुधारों को सुधारेंगे॥

(६)

धरेंगे ध्यान मेधा का, पढ़ेंगे वेद चारों को।
प्रमाणों की कसौटी पै, कसेंगे सद्विचारों को॥
लिखेंगे लोक-लीला के, बड़े-छोटे विकारों को।
महा विज्ञान स्रष्टा का, दिखादेंगे दुलारों को॥
सुखी सर्वज्ञ-सिद्धों पै, सदा सर्वस्व वारेंगे।
बिगाड़ों को बिगाड़ेंगे, सुधारों को सुधारेंगे॥

(७)

सुशीला बालिकाओं को, लिखावेंगे, पढ़ावेंगे।
न कोरी कर्कशाओं को वृथा, सोना गढ़ावेंगे॥
प्रवीणा को प्रतिष्ठा के, महाचल पै चढ़ावेंगे।
सती के सत्य की शोभा, प्रशंसा से बढ़ावेंगे॥
सुभद्रादेवियों को यों, दया-दानी दुलारेंगे।
बिगाड़ों को बिगाड़ेंगे, सुधारों को सुधारेंगे॥

(८)

बढ़ेगा मान विज्ञानी, सुवक्ता, ग्रन्थकारों का।
घटेगा ढोंग पाखण्डी, दुराचारी, लबारों का॥
पता देवज्ञ, देवों में, न पावेगा भरारों का।
अजानों की चिकित्सा से, न होगा नाश प्यारों का॥
सुयोगी योग-विद्या के, विचारों को प्रचारेंगे।
बिगाड़ों को बिगाड़ेंगे, सुधारों को सुधारेंगे॥

(९)

कुचाली चाटुकारों को, न कौड़ी भी ठगावेंगे।
पराई नारियों से जी, न जीतेजी लगावेंगे॥
सहेटों में सुलाने को, न रण्डा को जगावेंगे।
अनाचारी, असभ्यों के, कुभोगों को भगावेंगे॥
पुरानी नायकाजी को, न ग्रन्थों में निहारेंगे।
बिगाड़ों को बिगाड़ेंगे, सुधारों को सुधारेंगे॥

(१०)

करेंगे प्यार जीवों पै, न गौओं को कटावेंगे।
बसा कंगाल दीनों को, न चिन्ता को चटावेंगे॥
महामारी-प्रचण्डो की, बढ़ी सीमा घटावेंगे।
कुचाली काल की सारी, कुचालों को हटावेंगे॥
पड़े दुर्दैव घाती की, न घातों को सहारेंगे।
बिगाड़ों को बिगाड़ेंगे, सुधारों को सुधारेंगे॥

(११)

फलेगी प्राणदा खेती, किसानों के कुमारों की।
बढ़ेगी सम्पदा, पूँजी, खरे दूकानदारों की॥
बढ़ादेगी कलाकारी, कमाई शिल्पकारों की।
बड़ाई लोक में होगी, प्रतापी होनहारों की॥
करेंगे नाम कामों की, प्रथा प्यारी प्रसारेंगे।
बिगाड़ों को बिगाड़ेंगे, सुधारों को सुधारेंगे॥

(१२)

अड़ीले मस्त गुण्डों के, अखाड़ों को उखाड़ेंगे।
ठगों की पेट-पूजा के, बसे खेड़े उजाड़े हैं॥
रहेंगे दूर दुष्टों से, कुशीलों को लताड़ेंगे।
खलों का खोज खोदेंगे, पिशाचों को पछाड़ेंगे॥
घिनोनी मोह-माया के, प्रपञ्चों को पजारेंगे।
बिगाड़ों को बिगाड़ेंगे, सुधारों को सुधारेंगे॥

(१३)

सुधी श्रद्धा-सुधा सारे, सुकर्मों को पिलावेंगे।
करेंगे नाश मिथ्या का, सचाई को जिलावेंगे॥
मिलापी मेल-माला में, निरालों को मिलावेंगे।
न गन्दी गर्व-गाथा से, पहाड़ों को हिलावेंगे॥
'मिलो भाई' सँगाती यों, अछूतों को पुकारेंगे।
बिगाड़ों को बिगाड़ेंगे, सुधारों को सुधारेंगे॥

(१४)

विवेकी ब्रह्म-विद्या की, महत्ता को बखानेंगे।
बड़ा कूटस्थ अत्ता से, किसी की भी न मानेंगे॥
प्रमादी, देश-विद्रोही, जड़ों को नीच जानेंगे।
ठगो के जाल भोलों के, फँसाने को न तानेंगे॥
कभी पाखण्ड-पापी के, न पैरों को पखारेंगे।
बिगाड़ों को बिगाड़ेंगे, सुधारों को सुधारेंगे॥

(१५)

बड़ों के मंत्र मानेंगे, प्रसंगों को न भूलेंगे।
कहा क्या ऊँच ऊँचों की, ऊँचाई को न छूलेंगे॥
बढ़ेंगे प्रेम के पौधे, दया के फूल फूलेंगे।
भरे आनन्द से चारों, फलों के झाड़ झूलेंगे॥
सबों को शंकरानन्दी, अनिष्टों से उबारेंगे।
बिगाड़ों को बिगाड़ेंगे, सुधारों को सुधारेंगे॥

भद्र भावार्थ

(दोहा)

गुरु देवों का दास है, असुरों का उपहास।
उपदेशों का वास है, भणित भद्र उल्लास॥

अनुराग-रत्न

❀ मन्दोद्भास ❀

(विनय वन्दना)

पाहि नो अग्ने रक्षसः पाहि धूर्त्तेरराव्णः ।
पाहि रीषत उत वा जिघांसतो बृहद्भानो यविष्ठ्य ॥ ऋ० १-३-१०-१५०

(श्रद्धा-सूक्ति)

मुक्तिप्रदं सुदृढ़ बन्धनतो भ्रमणां,
साक्षान्निजात्म सुखदञ्च गुरुं कृपालुं ।
श्रद्धायुतस्य जनि-मृत्युहरं सु वाक्यै-
र्वन्दे मुदा परमया करुणास्पदं वै ॥

भारत की मन्द-दशा

(दोहा)

भूल रहे जो जालिया, शंकर का उपदेश ।
क्या उनके अन्धेर से, सुधर सकेगा देश ॥

भूतकाल की कथा

(मन्दाक्रान्ता वृत्त)

स्वामीजी की, जब न सुखदा, घोषणा हो रही थी ।
मिथ्या माया, कपट छल की, वेदना बो रही थी ॥
भारी बोझे, अमित भय के, भीरुता ढोरहीथी ।
बोलो भाई, तब न किस की, सभ्यता सोरहीथी ॥

मेधा-देवी, विकल जब थी, भारती रोरहीथी ।
गोरक्षा को, वधिक बल की, क्रूरता खोरहीथी ॥
कंगाली के, मलिन मुख को, श्री नहीं धोरहीथी ।
बोलो भाई, तब न किस की, सभ्यता सोरहीथी ॥

सन्मुखोद्गार

(दोहा)

ऊँची पदवी से गिरा, गौरव रहा न सङ्ग ।
प्यारे भारतवर्ष का, हाय ! हुआ रस भंग ॥

(त्रोटकात्मक मिलिन्दपाद)

प्रभु शंकर ! तू यदि शंकर है ।
फिर क्यों विपरीत भयंकर है ॥
करतार उदार सुधार इसे ।
कर प्यार निहार न मार इसे ॥
मृगराज कहाय कुरङ्ग हुआ ।
बस भारत का रस भङ्ग हुआ ॥

(२)

धरणीश, धनेश, जनेश रहा ।
अनुकूल सदा अखिलेश रहा ॥
सबसे बढ़िया, घटिया कब था ।
इस भाँति बड़ा जब था तब था ॥
अब तो यह नङ्गमनङ्ग हुआ ।
बस भारत का रस भङ्ग हुआ ॥

(३)

जिसने सुविचार विकाश किया ।
रच ग्रन्थ-समूह प्रकाश किया ॥
कवि-नायक, पण्डित-राज बना ।
वह अज्ञ, अशिक्षित आज बना ॥
बिन पक्ष विवेक-विहङ्ग हुआ ।
बस भारत का रस भङ्ग हुआ ॥

(४)

अबलों न कहीं वह देश मिला ।
इस का न जिसे उपदेश मिला ॥
उस गौरव के गुण अस्त हुए ।
गुरु के गुरु शिष्य समस्त हुए ॥
कितना प्रतिकूल प्रसंङ्ग हुआ ।
बस भारत का रस भङ्ग हुआ ॥

(५)

जिसके जन-रक्षक शस्त्र रहे ।
उसके कर हाय ! निरस्त्र रहे ॥
रण-जीत शरासन टूट गया ।
इषु-वर्ग यशोधर छूट गया ॥
रिपु-रक्त-निमग्न निषङ्ग हुआ ।
बस भारत का रस भङ्ग हुआ ॥

(६)

बिगड़ी गति वैदिक धर्म विना ।
सुख हीन हुआ शुभ कर्म विना ॥
हठ ने जड़धी अविकाश किया ।
फिर आलस ने बल नाश किया ॥
हरिचन्दन हाय ! पतङ्ग हुआ ।
बस भारत का रस भङ्ग हुआ ॥

(७)

मिल मोह-महातम छाय रहा ।
लग लोभ कुचाल चलाय रहा ॥
मद मन्द कुदृश्य दिखाय रहा ।
कटु भाषण क्रोध सिखाय रहा ॥
नय-नाशक नीच अनङ्ग हुआ ।
बस भारत का रस भङ्ग हुआ ॥

(८)

घनघोर अमंगल गाज रहा ।
भरपूर विरोध विराज रहा ॥
घर घेर दरिद्र दहाड़ रहा ।
उर शोक-महासुर फाड़ रहा ॥
रिपु-रूप कराल कुसङ्ग हुआ ।
बस भारत का रस भङ्ग हुआ ॥

(९)

मद पान करें न तजे पल को ।
अपनाय रहा खल-मण्डल को ॥
पग पूज कलङ्क-विभीषण के ।
अनुराग-रँगे गणिका-गण के ॥
दृग-दीपक देख पतङ्ग हुआ ।
बस भारत का रस भङ्ग हुआ ॥

(१०)

कुल-भाषण को अनखाय सुने ।
पर शब्द-समूह सुनाय सुने ॥
जिनको गुरु मान मनाय रहा ।
उनकी धज आप बनाय रहा ॥
पर श्यामल से न सुरङ्ग हुआ ।
बस भारत का रस भङ्ग हुआ ॥

(११)

अनरीति कटा-कट काट रही ।
पशु-पद्धति शोणित चाट रही ॥
पल खाय अपव्यय खेल रहा ।
ऋण-बूचड़ खाल उचेल रहा ॥
ससके सब घायल अङ्ग हुआ ।
बस भारत का रस भङ्ग हुआ ॥

(१२)

बिन शक्ति समृद्धि-सुधा न रही ।
अधिकार गया वसुधा न रही ॥
बल-साहस हीन हताश हुआ ।
कुछ भी न रहा सब नाश हुआ ॥
रजनीश प्रताप पतङ्ग हुआ ।
बस भारत का रस भङ्ग हुआ ॥

(१३)

चिर सञ्चित वैभव नष्ट हुआ ।
उर-दाहक दारुण कष्ट हुआ ॥
सुख-वास न भोग-विलास नहीं ।
उपवास करे धन पास नहीं ॥
बिगड़ा सब ढङ्ग कुढङ्ग हुआ ।
बस भारत का रस भङ्ग हुआ ॥

(१४)

सब ठौर बड़े व्यवहार नहीं।
फिर शिल्प-कला पर प्यार नहीं॥
कुछ दीन किसान कमाय रहे।
हलका-हलका फल पाय रहे॥
उनको कर-भार भुजङ्ग हुआ।
बस भारत का रस भङ्ग हुआ॥

(१५)

कस पेट अकिञ्चन सोय रहे।
विन भोजन बालक रोय रहे॥
चिथड़े तक भी न रहे तन पै।
धिक! धूलि पड़े इस जीवन पै॥
अवलोक अमङ्गल दङ्ग हुआ।
बस भारत का रस भङ्ग हुआ॥

(१६)

मत-भेद भयानक पाप रहा।
विन प्रेम न मेल-मिलाप रहा॥
अभिमान अधोमुख ठेल रहा।
अधमाधम ढोंग ढकेल रहा॥
सुख-जीवन का मग तङ्ग हुआ।
बस भारत का रस भङ्ग हुआ॥

(१७)

मत-पन्थ असंख्य असार बने ।
गुरु लोलुप, लण्ठ, लबार बने ॥
शठ सिद्ध कुधी कवि-राज बने ।
अनमेल अनेक समाज बने ॥
इस हुल्लड़ का हुरदङ्ग हुआ ।
बस भारत का रस भङ्ग हुआ ॥

(१८)

सरके विधि, वेद रसातल को ।
सिर धार अनर्थ-महाचल को ॥
अब दर्शन-रूप न दर्शन हैं ।
नव-तंत्र प्रमाद-निदर्शन हैं ॥
बकवाद विचित्र षडङ्ग हुआ ।
बस भारत का रस भङ्ग हुआ ॥

(१९)

अब सिद्ध मनोरथ-सिद्ध नहीं ।
मुनि मुक्त प्रवीण प्रसिद्ध नहीं ॥
अविकल्प अनुष्ठित योग नहीं ।
विधि मूलक मंत्र-प्रयोग नहीं ॥
फल संयम का शश-शृंग हुआ ।
बस भारत का रस भंग हुआ ॥

(२०)

अवधेश धनुर्धर राम नहीं ।
व्रज-नायक श्रीघनश्याम नहीं ॥
अब कौन पुकार सुने इसकी ।
परमाकुल गैल गहे किसकी ॥
तड़पे मृग-तोय-तरंग हुआ ।
बस भारत का रस भंग हुआ ॥

हमारा अधःपतन

(दोहा)

शंकर से न्यारे रहे, वैदिक धर्म विसार ।
होड़ी-होड़ा हम गिरे, पाप-प्रमाद पसार ॥

(कलाधरात्मक मिलिन्दपाद)

(१)

प्रभु शंकर मोह-शोक-हारी, यम-रुद्र त्रिशूल-शक्ति-धारी ।
टुक देख दयालु ! न्यायकारी, गत गौरव दुर्दशा हमारी ॥
उपताप समीप आ रहे हैं ।
उलटे हम हाय ! जा रहे हैं ॥

(२)

जिसको सब देश जानते थे, अपना सिरमौर मानते थे ।
जिसने जग जीत मान पाया, अगुआ नव खण्ड का कहाया ॥
उस भारत को लजा रहे हैं ।
उलटे हम हाय ! जा रहे हैं ॥

(३)

पहला युग पुण्य-कर्म का था, सुविचार प्रचार धर्म का था।
जिस के यश की प्रतीक पाई, हरिचन्द नरेश की सचाई॥
अब सूम ठगी सिखा रहे हैं।
उलटे हम हाय! जारहे हैं॥

(४)

उपजा युग दूसरा प्रतापी, प्रकटे व्रतशील और पापी।
जिस की सुप्रसिद्ध रीति जानी, समझी रघुनाथ की कहानी॥
अब रावण जी जला रहे हैं।
उलटे हम हाय! जा रहे हैं॥

(५)

कर द्वापर कृष्ण की बड़ाई, रच भेद भिड़ा गया लड़ाई।
अपना बल आप ही घटाया, छल का फल सर्वनाश पाया॥
अबलों कुल मार खा रहे हैं।
उलटे हम हाय! जा रहे हैं॥

(६)

जब से कलिकाल-कोप आया, तब से भरपूर पाप छाया।
कुल-कण्टक, प्राण ले रहे हैं, ठग दारुण दुःख दे रहे हैं॥
जड़, कर्म भले भुला रहे हैं।
उलटे हम हाय! जा रहे हैं॥

(७)

मुनिराज मिलें न सिद्ध-योगी, अवनीश रहे न राज-भोगी।
सब उद्यम खो गये हमारे, शुभ साधन सो गये हमारे॥
खल खेल बुरे खिला रहे हैं।
उलटे हम हाय! जा रहे हैं॥

(८)

सुविचार, विवेक, धर्म-निष्ठा, प्रण-पालन, प्रेम की प्रतिष्ठा।
बल, वित्त, सुधार, सत्य-सत्ता, सब को विष दे मरी महत्ता॥
मति-हीन, हँसी करा रहे हैं।
उलटे हम हाय! जा रहे हैं॥

(९)

तज वैदिक धर्म-धीरता को, भटकें भट विश्व-वीरता को।
निधि निर्मल न्याय की न भावे, सुविधा न सुधार की सुहावे॥
अनभिज्ञ सुधी कहा रहे हैं।
उलटे हम हाय! जा रहे हैं॥

(१०)

अनमोल असंख्य ग्रन्थ खोये, बन मायिक वेद भी बिगोये।
इतिहास मिलें नहीं पुराने, अनुकूल नवीन तंत्र माने॥
हठवाद हठी बना रहे हैं।
उलटे हम हाय! जा रहे हैं॥

(११) १८०

व्रतशील सुबोध हैं न शर्म्मा, रण रोप लड़ें न वीर वर्म्मा ।
धन-राशि न गुप्त गाढ़ते हैं, गुरु भाव न दास काढ़ते हैं ॥
चतुराश्रम ढोंग ढा रहे हैं ।
उलटे हम हाय ! जा रहे हैं ॥

(१२)

निगमागम छान-बीन छोड़े, उपदेश बना दिये गपोड़े ।
अब जो विधि जाति में भरी है, उस की जड़ श्री बिरादरी है ॥
यश उद्धत पंच पा रहे हैं ।
उलटे हम हाय ! जा रहे हैं ॥

(१३)

भ्रम-भेद भरी पवित्रता है, छल से भरपूर मित्रता है ।
मन गेह घने घमण्ड का है, डर केवल राज-दण्ड का है ॥
मत-पन्थ नये नचा रहे हैं ।
उलटे हम हाय ! जा रहे हैं ॥

(१४)

मत-भेद पसार फूट फैली, विन मेल रही न एक शैली ।
सुख-भोग भगाय रोग जागे, पकड़े अघ-ओघ ने अभागे ॥
दिन संकट के बिता रहे हैं ।
उलटे हम हाय ! जा रहे हैं ॥

(१५)

उपदेशक लोग लूटते हैं, कटु भाषण-बाण छूटते हैं।
हित-साधन हा ! न सूझते हैं, जड़ जाल पसार जूझते हैं॥
अड़ ऊत अड़े अड़ा रहे हैं।
उलटे हम हाय ! जा रहे हैं॥

(१६)

कच-लम्पट पेट के पुजारी, विषयी बन बाल ब्रह्मचारी।
मुख से सब 'सोहमस्मि' बोलें, तन धार अनेक ब्रह्म डोलें॥
जड़ जन्म वृथा बिता रहे हैं।
उलटे हम हाय ! जा रहे हैं॥

(१७)

वह योग-समाधि, सिद्धि धारी, वह जीवन-वेद रोगहारी।
समझें जिनके न अंग पूरे, अब साधु, गदारि हैं अधूरे॥
रच दम्भ दशा दुरा रहे हैं।
उलटे हम हाय ! जा रहे हैं॥

(१८)

विचरें बन ज्योतिषी भरारे, चमकें भ्रम-जाल-जन्य तारे।
उतरे ग्रह वेध की नली में, अटके अब जन्म-कुण्डली में॥
दिन पोच, खरे बता रहे हैं।
उलटे हम हाय ! जा रहे हैं॥

(१६)

कवि-राज समाज में न बोलें, धनहीन सुधी उदास डोलें।
गुण-ग्राहक कल्पवृक्ष सूखे, भटकें भट, शिल्पकार भूखे॥
शठ आदर से अघा रहे हैं।
उलटे हम हाय! जा रहे हैं॥

(२०)

समझे तन-भार भूषणों को, दमके दमकाय दूषणों को।
कविता-रस-भाव ताल त्यागे, छलकाय कहीं न और आगे॥
गढ़ तुक्कड़ गीत गा रहे हैं।
उलटे हम हाय! जा रहे हैं॥

(२१)

विरले ध्रुव धर्म धारते हैं, शुभ कर्म नहीं विसारते हैं।
तरसें वह वीर रोटियों को, चिथड़े न मिलें लँगोटियों को॥
कुलघोर प्रथा पुजा रहे हैं।
उलटे हम हाय! जा रहे हैं॥

(२२)

बलहीन अबोध बाल-बच्चे, करतूत विचार के न सच्चे।
डरपोक सुधार क्या करेंगे, लघु जीवन भोगते मरेंगे॥
घटिया कुनबे बढ़ा रहे हैं।
उलटे हम हाय! जा रहे हैं॥

(२३)

बल व्याकरणीय-वाद को है, फिर न्याय नृसिंह-नाद को है ।
अभिमान-मढ़ी उपाधि पाई, अब शेष रही न पण्डिताई ॥
गुण-गौरव यों गमा रहे हैं ।
उलटे हम हाय ! जा रहे हैं ॥

(२४)

बुध शिक्षक दो प्रकार के हैं, अवतार परोपकार के हैं ।
उपहार करे प्रदान शिक्षा, बस, वेतन और धर्म-भिक्षा ॥
भर पेट भला मना रहे हैं ।
उलटे हम हाय ! जा रहे हैं ॥

(२५)

समझे, पढ़ अङ्क, बीज, रेखा, फल भिन्न सिलेट से न देखा ।
क्षितिगोल, खगोल, जानते हैं, पर शब्द प्रमाण मानते हैं ॥
बुध-वेष वृथा बना रहे हैं ।
उलटे हम हाय ! जा रहे हैं ॥

(२६)

बहु ग्रन्थ रटे न पाठ छोड़े, गटके गुरु ज्ञान के गपोड़े ।
अधवैस उमंग में गमाई, पर उत्तम नौकरी न पाई ॥
जड़ उद्यम की जमा रहे हैं ।
उलटे हम हाय ! जा रहे हैं ॥

(२७)

ठमके सब ठौर राज-भाषा, थिरके न थकी समाज-भाषा।
लिपि बैल-मुतान-सी खरी है, पर पोच प्रशस्त नागरी है॥
मिल मिस्टर यों मिटा रहे हैं।
उलटे हम हाय! जा रहे हैं॥

(२८)

लिपि लाल-प्रिया महाजनी है, जिस की दर देश में घनी है।
प्रिय पाठक, वर्ण दो बना लो, पढ़ चून, चुना, चुनी, चना लो॥
मुड़िया मति को मुड़ा रहे हैं।
उलटे हम हाय! जा रहे हैं॥

(२९)

ग्रह-योग दबोच डाँटते हैं, जड़ तीरथ मुक्ति बाँटते हैं।
बलि, पिण्ड न भूत-प्रेत छोड़ें, सुर सार सुभक्ति का निचोड़ें॥
डर कल्पित भी डरा रहे हैं।
उलटे हम हाय! जा रहे हैं॥

(३०)

अति उन्नत राज-कर्मचारी, जिन के कर बाग है हमारी।
भरपूर पगार पा रहे हैं, फिर भी कुछ घूँस खा रहे हैं॥
पद का मद यों जता रहे हैं।
उलटे हम हाय! जा रहे हैं॥

(३१)

धमकें धरमार के धड़ाके, अभियोग लड़ा रहे लड़ाके।
यदि वेतस न्याय का न देगा, किस को फिर कौन जीत लेगा॥
सुन कोर्ट-कथा सुना रहे हैं।
उलटे हम हाय! जा रहे हैं॥

(३२)

मृदु नोटिस काम दे रहे हैं, कटु सम्पुट दाम दे रहे हैं।
ठगियापन से न छूटते हैं, पर द्रव्य लबार लूटते हैं॥
करुणामृत यों बहा रहे हैं।
उलटे हम हाय! जा रहे हैं॥

(३३)

विधवा रुचि रोक रो रही हैं, कुलटा कुल-कानि खो रही हैं।
कर कौतुक गर्भ धारती हैं, जन बालक हाय! मारती हैं॥
द्विज धर्म-ध्वजा उड़ा रहे हैं।
उलटे हम हाय! जा रहें हैं॥

(३४)

पशु पोच गले कटा रहे हैं, खल गोकुल को घटा रहे हैं।
दधि, माखन, दूध, घी विसारे, व्रज-राज कहाँ गये हमारे॥
विन बुद्ध कुधो दबा रहे हैं।
उलटे हम हाय! जा रहे हैं॥

(३५)

जल का कर, बीज, ब्याज पोता, भुगताय सकें न भूमि-जोता।
खलियान अनेक डालते हैं, पर, केवल पेट पालते हैं॥
घुड़छान किसान छा रहे हैं।
उलटे हम हाय! जा रहे हैं॥

(३६)

सब देश कबाड़ दे रहे हैं, धन और अनाज ले रहे हैं।
क्षति का लिखते न लोग लेखा, परखे विन क्या करें परेखा॥
सुख-साज सजे सजा रहे हैं।
उलटे हम हाय! जा रहे हैं॥

(३७)

धरणीश, धनी, समृद्धिशाली, अलमस्त पड़े समस्त ठाली।
जड़-जंगम जीव नाम के हैं, विषयी न विशेष काम के हैं॥
गढ़ गौरव का खसा रहे हैं।
उलटे हम हाय! जा रहे हैं॥

(३८)

कुल-कंटक दास काम के हैं, नर कायर वीर बाम के हैं।
जब जम्बुक-यूथ से डरेंगे, तब सिंह कहाय क्या करेंगे॥
डरपोक डटे डरा रहे हैं।
उलटे हम हाय! जा रहे हैं॥

(३६)

धरणी, धन, धाम दे चुके हैं, भरपूर दरिद्र ले चुके हैं।
कब मङ्गल से मिलाप होगा, जब दूर प्रमादि-पाप होगा॥
अब तो कुविलास भा रहे हैं।
उलटे हम हाय ! जा रहे हैं॥

(४०)

भर पेट कड़ा कुसीद खाना, परतंत्र समूह को सताना।
इस को कुल-धर्म जानते हैं, यश उन्नति का बखानते हैं॥
धन धींग-धनी कमा रहे हैं।
उलटे हम हाय ! जा रहे हैं॥

(४१)

सुनलो ! भय त्याग भीरु लोगो, सुख-भोग सदा समोद भोगो।
पकड़ो विधि माल-मस्त ऐसी, किस की अनरीति रीति कैसी॥
इस भाँति सखा सिखा रहे हैं।
उलटे हम हाय ! जा रहे हैं॥

(४२)

गरिमा, जयचन्द ने कढ़ाई, महिमा महमूद की चढ़ाई।
कलिमा कुरआन का पढ़ाया, कुनबा इसलाम ने बढ़ाया॥
शठ सिस्न, शिखा कटा रहे हैं।
उलटे हम हाय ! जा रहे हैं॥

(४३)

कुल-धर्म कुलीन खो चुके हैं, मक़बूल-मुराद हो चुके हैं।
भ्रम-भाजन भक्त भूल के हैं, न मुरीद खुदा रसूल के हैं॥
इलहाम-नबी लुभा रहे हैं।
उलटे हम हाय! जा रहे हैं॥

(४४)

गुरु गौर शरीर, शिष्य काले, बन मिश्रित मुक्ति के मसाले।
कर प्यार हमें सुधारते हैं, प्रभु गॉड-कुमार तारते हैं॥
सर नेटिव त्राण पा रहे हैं।
उलटे हम हाय! जा रहे हैं॥

(४५)

चढ़ प्लेग-पिशाच ने पछाड़े, घर दुष्ट-दुकाल ने उजाड़े।
पुर पत्तन, देख-देख रीते, मरने पर हैं प्रसन्न जीते॥
कुल कष्ट कड़े उठा रहे हैं।
उलटे हम हाय! जा रहे हैं॥

(४६)

सब का अब सर्वमेध होगा, विधि का न कभी निषेध होगा।
बिगड़े न बनी, बनी सराहें, परतन्त्र, स्वतन्त्रता न चाहें॥
ढप ढाड़स के बजा रहे हैं।
उलटे हम हाय! जा रहे हैं॥

(४७)

लघु, लोलुप, लालची बड़े हैं, सब दुर्गति-गाढ़ में पड़े हैं।
विधि ! क्या अब और भी गिरेंगे, अथवा वे दिन गये फिरेंगे ॥
सुख-हीन जिन्हें बुला रहे हैं।
उलटे हम हाय ! जा रहे हैं ॥

(४८)

कुछ लोग भला विचारते हैं, जुड़ जाति-सभा सुधारते हैं।
अकड़ें कर गर्म-नर्म बातें, गरजें गण मार-मार लातें ॥
घर फूँक कुआ खुदा रहे हैं।
उलटे हम हाय ! जारहे हैं ॥

(४९)

अनुभूत अनेक भाव जाने, कविता मिस बुद्धि ने बखाने।
यदि सिद्ध सरस्वती रहेगी, तब तो कुछ और भी कहेगी ॥
भ्रम भारत को भ्रमा रहे हैं।
उलटे हम हाय ! जा रहे हैं ॥

अवनति से उन्नति

(दोहा)

गिर जाता है गर्त्त में, जब जो उन्नत देश।
ऊँचा करते हैं उसे, तब ऊँचे उपदेश ॥

सूर्य-ग्रहण पर अन्योक्ति

(दोहा)

रोके तेज दिनेश का, रे शशि, लघुता लाद ।
जैसे ढके महेश को, अन्ध अनीश्वरवाद ॥

(रुचिरात्मक राजगीत)

रे रजनीश ! निरङ्कुश तू ने, दिननायक का ग्रास किया ।
नेक न धूप रही धरणी पै, घोर तिमिर ने वास किया ॥
जिस को पाय चमकता था तू, अधम उसी को रोक रहा ।
धिक ! पापिष्ट कृतघ्न कलङ्की, तेज त्याग तम पास किया ॥
मन्द हुआ सुन्दर मुख तेरा, छिटकी छवि तारागण की ।
अपने आप जाति में अपना, क्यों इतना उपहास किया ॥
जुगुनू जाग उठे जंगल में, दिये नगर में जलवाये ।
मूँद महा महिमा महान की, अणु का तुच्छ विकास किया ॥
मङ्गल मान निशाचर सारे, चरते और विचरते हैं ।
दिन को रूप दिया रजनी का, देव-समाज उदास किया ॥
उष्ण प्रभा विन वन-पुष्पों से, सार सुगन्ध न कढ़ते हैं ।
रोक चाल नैसर्गिक विधि की, दिव्य हवन का ह्रास किया ॥
चकित चकोर चाह के चेरे, चिनगी चुगते फिरते हैं ।
मुख, पग, पंख जलाने वाला, ज्वलित चन्द्रिकाभास किया ॥
श्वान, शृगाल, उलूक पुकारे, सकुचे कंज, कुमोद खिले ।
जोड़-तोड़ चकई-चकवों के, खण्डित प्रेम-विलास किया ॥

दिन में चुगने वाली चिड़ियाँ, हा! अब कहीं न उड़ती हैं।
सब के उद्यम हरने वाला, सिद्ध तामसिक त्रास किया॥
नाम सुधाकर है पर तेरी, लघुता विष बरसाती है।
विरहानल को भड़काने का, अति निन्दित अभ्यास किया॥
बढ़-बढ़ कर पूरा होता है, घटता-घटता लुपता है।
यों उन्नति-अवनति के द्वारा, पक्ष-भेद प्रतिभास किया॥
तेरी आड़ हटाकर निकली, कोर प्रचण्ड प्रभाकर की।
फिर दिन का दिन होजावेगा, हट! क्यों वृथा प्रयास किया॥
दिव्य उजाला देकर तुझ को, परसों फिर चमकावेगा।
कहदें कब सविता स्वामी ने, श्रीहत अपना दास किया॥
शंकर के मस्तक पर तेरा, अविचल-वास बताते हैं।
पौराणिक पुरुषों ने भ्रम से, अटल अन्धविश्वास किया॥

अरण्य-रोदन

(दोहा)

रोते फिरो अरण्य में, विनय सुनेगा कौन।
शङ्कर दीनानाथ का, ध्यान धरो धर मौन॥

(शिखरिणी षट्क)

अभागे जीते हैं, पुरुष बड़भागी मर गये।
भरे भी रीते हैं, घर नगर सूने कर गये॥
प्रतिष्ठा खोने को, पतित कुल हा! जीवन धरे।
हमारे रोने को, सुन कर कृपा शङ्कर करे॥

(२)

कुचालों ने मारे, मनुज मतवाले कर दिये।
कुपन्थों में मारे, विकट कटु पापी भर दिये॥
हठीले होने को, हठ न अगुओं की मति हरे।
हमारे रोने को, सुन कर कृपा शङ्कर करे॥

(३)

दुराचारी दण्डी, जटिल जड़ मुण्डे मुनि घने।
प्रमादी पाखण्डी, अबुध-गण गुण्डे गुरु बने॥
अविद्या ढोने को, विषय-रस का रेवड़ चरे।
हमारे रोने को, सुन कर कृपा शङ्कर करे॥

(४)

विरोधी राजा के, छल कर प्रजा का धन हरें।
घिनौने पापों से, वधिक नर-घाती कब डरें॥
मलों के धोने को, सुकृत-घन पुण्योदक धरे।
हमारे रोने को, सुन कर कृपा शङ्कर करे॥

(५)

क्षुधा हत्यारी ने, उरग-इव नारी-नर डसे।
मसोसे मारी ने, चटपट बिचारे चल बसे॥
सदा के सोने को, अब न दुखियों का दिल मरे।
हमारे रोने को, सुन कर कृपा शङ्कर करे॥

(६)

बनी को रो बैठे, बिगड़ सुख के साधन गये।
सुधी श्री खो बैठे, धन विन भिखारी बन गये॥
न काँटे बोने को, कुमति कुटिलों में भ्रम भरे।
हमारे रोने को, सुन कर कृपा शङ्कर करे॥

भारत की भूलें

(दोहा)

भूल रहे भूले फिरें, भूल भरे परिवार।
भूलों का करते नहीं, भूल विसार सुधार॥

(कजली कलाप)

बोलो बोलो कैसे होगा,
ऐसी भूलों का सुधार।
शुद्ध सच्चिदानन्द एक है, शंकर सकलाधार,
निर्गुण, निराकार, स्वामी को, कहें सगुण, साकार।
ऐसी भूलों का सुधार॥
मतवालों ने मानलिया है, जो सब का करतार,
वैर-फूट बोगये उसी के, दूत, पूत, अवतार।
ऐसी भूलों का सुधार॥
विरले विज्ञानी करते हैं, वैदिक धर्म प्रचार,
भूल भरें भोलों के कुल में, बहुधा लंठ-लबार।
ऐसी भूलों का सुधार॥

ठीक ठिकाना बतलाने के, बन-बन ठेकेदार,
ठगिया औरों को ठगते हैं, जटिल गपोड़े मार।
ऐसी भूलों का सुधार॥
कल्पित स्रष्टा के सूचक हैं, समझे असदुद्गार,
योंहीं अपने आप हुआ है, यह समस्त संसार।
ऐसी भूलों का सुधार॥
भिन्न-भिन्न विश्वास हमारे, भिन्न-भिन्न व्यवहार,
भेद भिन्नता के अपनाये, भिन्न चलन आचार।
ऐसी भूलों का सुधार॥
सिद्धों के आगम-कानन को, काटें कुमत-कुठार,
समझें सद्ग्रन्थों को जड़-धी, जड़ता के अनुसार।
ऐसी भूलों का सुधार॥
विद्या के मन्दिर हैं जिनके, गुण-धर ज्ञानागार,
होड़ लगाते हैं उनसे भी, गौरव-हीन गमार।
ऐसी भूलों का सुधार॥
विज्ञ ब्रह्मचारी करते हैं, अभिनव आविष्कार,
सुबुध बने बच्चों के बच्चे, उनकी-सी धज धार।
ऐसी भूलों का सुधार॥
फैली फूट लड़ें आपस में, वैर-विरोध पसार,
कहिये ये फुट्टैल करेंगे, कब किस का उद्धार।
ऐसी भूलों का सुधार॥

करडाला आलस्य-रोग ने, हल-चल का संहार,
कर्म हीन बन्धन से छूटे, ब्रह्म बने सविकार।
ऐसी भूलों का सुधार ॥
पति पूजे श्रीपति को, पत्नी, परसे मियाँ-मदार,
दो मत जुड़े एक जोड़ी में, ठनी रहे तकरार।
ऐसी भूलों का सुधार ॥
भिक्षुक-भूखों पै पड़ती है, निठुर दैव की मार,
हा ! न अनाथों को अपनाते, करुणा कर दातार।
ऐसी भूलों का सुधार ॥
अपने ऊत कपूतों पै भी, करें कृपा कर प्यार,
औरों के व्रतशील सुतों को, समझें भूतल-भार।
ऐसी भूलों का सुधार ॥
देशी शिल्पकार दुख भोगें, बैठ रहे मन मार,
देखो दस्तकार परदेशी, सुख से करें विहार।
ऐसी भूलों का सुधार ॥
उन्नतिशील विदेशी ऊलें, कर उद्यम-व्यापार,
हम ठाली रोते हैं उन की, ओर निहार-निहार।
ऐसी भूलों का सुधार ॥
रहे कूप-मण्डूक न देखा, विशद विश्व-विस्तार,
हाय हमारी रोक-टोक पै, पड़ी न अबलों छार।
ऐसी भूलों का सुधार ॥

रंग-रंग सन्निपात की सेना, पहुँची सागर पार,
रीता हुआ हाय! भारत का, अब अक्षय भण्डार।
ऐसी भूलों का सुधार॥

जिन के गुरु ज्ञानी जीते थे, प्रभुता पाय अपार,
उन को अपने आपे पै भी, नहीं रहा अधिकार।
ऐसी भूलों का सुधार॥

सिंह नाम धारी रसिकों ने, फेंक दिये हथियार,
उगलें राग बजें तम्बूरे, तबले, वेणु, सितार।
ऐसी भूलों का सुधार॥

वीर-धर्म की टेक टिकाई, गलमुच्छे फटकार,
औसर आते ही बन बैठे, केहरि कायर स्यार।
ऐसी भूलों का सुधार॥

देखें चित्र, चरित्र, बड़ों के, पढ़ें पुकार-पुकार,
तो भी हा! न दुर्दशा अपनी, निरखें आँख उघार।
ऐसी भूलों का सुधार॥

अधम, आततायी, पाखण्डी, उजबक, ज्वारी, जार,
गौरव, दान, मान पाते हैं, साधु-वेष बटमार।
ऐसी भूलों का सुधार॥

विधि-वल्लभ का वाणी से भी, करें न शठ सत्कार,
नीचों में मिलते, उस ऊँचे पौरुष पर धिक्कार।
ऐसी भूलों का सुधार॥

कामी-कौल कुकर्म पसारें, खोल प्रमाद-पिटार,
खोटे रहे खसोट सभ्यता-दुलहिन का शृङ्गार।
ऐसी भूलों का सुधार ॥

आठ वर्ष की गौरि कुमारी, वरे अजान कुमार,
बाल-विवाह गिराता है यों, घेर-घेर घर-बार।
ऐसी भूलों का सुधार ॥

डोकर छैला बने छोकड़ी, बरनी के भरतार,
छी छी छी बुढ़वा-मंगल को, तजें न ऊत उतार।
ऐसी भूलों का सुधार ॥

दारा-गण के गीत निचोड़ें, वनिता पनका सार,
धन्य अविद्या-दुलही तेरा, देख लिया दरबार।
ऐसी भूलों का सुधार ॥

हाय ! बच्चियों पै रखते हैं, विधवापन का भार,
धर्म-शत्रु हेकड़ पंचों के, हटें न नीच विचार।
ऐसी भूलों का सुधार ॥

त्याग प्रमाण प्रेम से पूजें, हठ के पैर पखार,
दुष्ट दुराचारी करते हैं, अनुचित अत्याचार।
ऐसी भूलों का सुधार ॥

धर्म-कर्म का ढोल बजाना, करने से इनकार,
क्या वे बकवादी उतरेंगे, भव-सागर से पार।
ऐसी भूलों का सुधार ॥

मदिरा, ताड़ी, भङ्ग, कसूमा, रङ्ग निचोड़, निथार,
पीते वीर, न कण्टक जाने, मादक व्रत की सार।
ऐसी भूलों का सुधार ॥

झुलसे चाँडूबाज़, गँजेड़ी, मदकी, चरसी, चार,
झाड़-झाड़ चूसें चिलमों को, अंग पजार-पजार।
ऐसी भूलों का सुधार ॥

हुल्लड़, हुरदंगों की मारी, लाज लुकी हिय हार,
कौन कहे गोरी-रसियों की, महिमा अपरम्पार।
ऐसी भूलों का सुधार ॥

देखो भाव घटे गोरस का, बढ़ें न घृत के बार,
फिर भी गौओं पर खौओं की, चलती है तलवार।
ऐसी भूलों का सुधार ॥

लाखों पत्तन, ग्राम उजाड़े, घटे घने परिवार,
काल कराल महामारी का, हा! न हुआ प्रतिकार।
ऐसी भूलों का सुधार ॥

फ़िल्टर वाटर से भी चोखी, सुरसरिता की धार,
गोड़ें उसे गोल गटरों के, नरक-नदी के यार।
ऐसी भूलों का सुधार ॥

राम-राम, पालागन, भावे, जय गोपाल, जुहार,
करें सलाम, नमस्ते ही को, समझें वज्र-प्रहार।
ऐसी भूलों का सुधार ॥

जिस की कविता के भावों पै, रीझे रसिक उदार,
टालें उस को वाह-वाह के, दे-दे कर उपहार।
ऐसी भूलों का सुधार॥
अब तो आशा के कमलों पै, बरसे वैर-तुषार।
गाने के मिस रो न अभागे, शंकर धीरज धार।
ऐसी भूलों का सुधार॥

———

अन्योक्ति मूलक मनोवेदना

(दोहा)

विधि क्या से क्या होगया, अटकी काल-कुचाल।
हंसों की महिमा मिटी, बगला बने मराल॥

(सुन्दरी सवैया)

इस मानसरोवर से अपनी,
उस पोखर का न मिलान करेंगे।
पिक, चातक, कीर, चकोर, शिखी,
सब का अब तो अपमान करेंगे॥
कवि शंकर काक, शचान, कुही,
कुल को अति आदर दान करेंगे।
बकराज मराल बने पर हा,
जल त्याग, न गोरस पान करेंगे॥

———

कुपात्र पुरोहित

(घनाक्षरी कवित्त)

जन्म की बधाई धर, नाम की धराई, पूजा-
मुण्डन की और कर्ण-वेधन की पावेंगे।
ब्रह्म-दण्ड देंगे, लेंगे चरण-पुजाई, आगे,
व्याह के अनेक नेग चौगुने चुकावेंगे॥
लेते ही रहेंगे दान दक्षिणा पुरोहितजी,
रोगी यजमान से दुधार धेनु लावेंगे।
शंकर मरे पै माल मारेंगे त्रयोदशा के,
छोड़ेंगे न बरसी कनागत भी खावेंगे॥

बनावटी साधु

(भजन)

रँग रहा राग के रंग में,
तू कैसा वैरागी है।
पामर पोच कर्म करता है, कभी न पापों से डरता है,
रच पाखण्ड पेट भरता है, काटे काल कुसंग में,
मति हीन मन्द भागी है। तू कैसा वैरागी है॥
धर-धर धूनी आग पजारे, भर-भर चिलम चरस की झारे,
गाल बजाय गपोड़े मारे, ध्यान रहे हुरदंग में,
छल की ज्वाला जागी है। तू कैसा वैरागी है॥

जोर जमात महंत कहायो, गुण्डन को अज्ञान गहायो,
मद-वारिधि में मोद बहायो, मन की मलिन उमंग में,
विपरीत लगन लागी है। तू कैसा वैरागी है॥
योग समाधि लगाय न जाने, परम सिद्ध अपने को माने,
औरन के गुण दोष बखाने, भूल मरी चितभंग में,
सिख शंकर की त्यागी है। तू कैसा वैरागी है॥

हमारी दुर्दशा

(शार्दूलविक्रीडित वृत्त)

आ बैठी उर मोह-जन्य-जड़ता, विद्या विदा होगई।
पाई कायरता मलीन मन को, हा! वीरता खोगई॥
जागी दीन-दशा दरिद्र-पन की, श्री-सम्पदा सोगई।
माया शंकर की हँसाय हम को, रुद्रा बनी रोगई॥

मोधू कविराज

(दोहा)

चूसे कविता-जोंक ने, मानहीन कविराज।
मार कुमित्रा की सहें समझ कोढ़ में खाज॥

कोरे कथक्कड़

(दोहा)

रण्डी के रसिया बने, उपदेशकजी आप ।
औरों से कहते फिरें, गणिका-गण के पाप ॥

(महागीत)

ऊले उगल रहा उपदेश,
गढ़-गढ़ मारे ज्ञान-गपोड़े ।

पण्डित बना निरंकुश मूढ़, कपटी, अधम अधर्मारूढ़,
इस के गन्दे अवगुण गूढ़, सुन लो कान लगा कर थोड़े ।
ऊ० उ० उ० ग० मा० ज्ञा० गपोड़े ॥

बकता फिरता है दिन-रात, सब से कहता है यह बात,
मारो गणिका-गण पर लात, अपने कूट कुकर्म न छोड़े ॥
ऊ० उ० उ० ग० मा० ज्ञा० गपोड़े ॥

मेरा सुन्दर वदन विलोक, तन को, मनको सका न रोक,
झपटा, झटका पटका ठोक, अटका बार-बार कर जोड़े ।
ऊ० उ० उ० ग० मा० ज्ञा० गपोड़े ॥

पकड़े काकोदर विकराल, चूमे जलज प्रफुल्लित लाल,
पूजे शंकर युगल—विशाल, ठग ने वाण मदन के तोड़े ।
ऊ० उ० उ० ग० मा० ज्ञा० गपोड़े ॥

———

*

सुकविसमाज

(दोहा)

पूजें नायक, नायिका, जिनको मङ्गल-मान ।
क्यों न करें शृङ्गार के, वे सत्कवि गुण-गान ॥

(गीत)

गुण-गान करें रसराज के,
यश-भाजन सुकवि हमारे ।
वैसिक, धृष्ट, ऊत, पण्डित हैं, धर्म-चतुष्टय से मण्डित हैं,
त्रिविध खण्डिता से खण्डित हैं, नख-शिख रसिक-समाज के,
रति-वल्लभ, मदन-दुलारे ।
यश-भाजन सुकवि हमारे ॥
निरखी रस में बोर अनूढ़ा, निपट अछूती रही न ऊढ़ा,
परखी विदुषी और विमूढ़ा, सफल नयन कर लाज के,
हँस मधुर वचन उचारे ।
यश-भाजन सुकवि हमारे ॥
धर अज्ञात यौवना पटकी, मन में ज्ञात यौवना अटकी,
हाय नवोढ़ा की छवि खटकी, पकड़ चरण शुभ काज के,
छल-जल बरसाय पखारे ।
यश-भाजन सुकवि हमारे ॥
साध स्वकीया शुद्ध लगन से, पूजी परकीया तन-मन से,
गणिका भी अपनाली धन से, कर करतब सुख-साज के,
शंकर कुल-चरित सुधारे ।
यश-भाजन सुकवि हमारे ॥

बेजोड़ होली

(दोहा)

होली के हुरदङ्ग ने, धार कुमति का रङ्ग ।
छोड़ी लाज, समाज का, कर डाला रस भङ्ग ॥

(गीत)

भारत, कौन बदेगा होड़,
तुझ से होली के हुल्लड़ की ।
मटकें मतवालों के गोल, खेलें खोल-खोल कर पोल,
पीटें ढोर ढमाढम ढोल, गाते डोलें तान अकड़ की ।
भा० कौ० ब० हो० तु० हो० हुल्लड़ की ॥
ऊले प्रामादिक हुरदङ्ग, बरसे दुर्व्यसनों का रङ्ग,
उमगी भूमे भ्रम की भङ्ग, लीला ऐंठ दिखाती अड़ की ।
भा० कौ० ब० हो० तु० हो० हुल्लड़ की ॥
शुद्धा विधि का वेष बिगाड़, फरिया लोक-लाज की फाड़,
झंझट-झोके झगड़े झाड़, फूँके, आग वैर की भड़की ।
भा० कौ० ब० हो० तु० हो० हुल्लड़ की ॥
विद्या-बल से पिण्ड छुड़ाय, धन की पूरी धूलि उड़ाय,
शङ्कर धी का मुण्ड मुड़ाय, फूटी आँख फूट की फड़की ।
भा० कौ० ब० हो० तु० हो० हुल्लड़ की ॥

होलिकाष्टक

(दोहा)

होली का हुल्लड़ मचा, ऊलें उजबक ऊत ।
भूखे भारत पै चढ़ा, भत्तक भ्रम का भूत ॥

(सुभद्रा छन्द)

(१)

उद्यम को कर अंध, आँख अवनति ने खोली है ।
धन की धूलि उड़ाय, अकिञ्चनता हँस बोली है ॥
ठसक भीतर से पोली है ।
खुल-खुल खेलो फाग, भड़क भारत की होली है ॥

(२)

गर्व-गुलाल लपेट, रङ्ग रिस का बरसाया है ।
खाय वैर-फल, फूट, फड़कता फगुआ पाया है ॥
भरी अनबन से झोली है ।
खुल-खुल खेलो फाग, भड़क भारत की होली है ॥

(३)

शोणित लाल सुखाय, लटे तन पीले कर लाये ।
पट-पट पीटें पेट, साँग भुक्खड़ भी भर लाये ॥
अधोगति सब को रोज़ी है ।
खुल-खुल खेलो फाग, भड़क भारत की होली है ॥

(४)

गोरी धन पर आज, धनी की चाह टपकती है।
श्यामा लगन लगाय, पिया की ओर लपकती है॥
चढ़ी चंचल पर भोली है।
खुल-खुल खेलो फाग, भड़क भारत की होली है॥

(५)

लोक-लाज पर लात, मार कर बात बिगाड़ी है।
ऊल रहा हुरदंग, सुमति की फरिया फाड़ी है॥
अकड़ की चमकी चोली है।
खुल-खुल खेलो फाग, भड़क भारत की होली है॥

(६)

ऊल-ऊल कर ऊत, ढमाढम ढोल बजाते हैं।
थिरकें थकें न थोक, गितक्कड़, तुकड़ गाते हैं॥
ठनाठन ठनी ठठोली है।
खुल-खुल खेलो फाग, भड़क भारत की होली है॥

(७)

सबके मस्तक लाल, न किसका मुखड़ा काला है।
भंगड़ भस्म रमाय, रहे हुल्लड़ मतवाला है॥
न इसमें कण्टक-टोली है।
खुल-खुल खेलो फाग, भड़क भारत की होली है॥

(८)

चढ़े न भ्रम की भंग, कहीं पौराणिक शंकर को।
समझे अपने भूत, न ऐसे यूथ भयंकर को॥
निरन्तर समता होली है।
खुल-खुल खेलो फाग, भड़क भारत की होली है॥

दिवालिया देश की होली

(दोहा)

फूँकी होली सुमति की, देकर अड़ की आग।
खेले दीन दिवालिया, भारत भिक्षुक-फाग॥

(घनाक्षरी कवित्त)

ऊलें अवधूत नाचें दूत भूतनाथ के-से,
हाट हुरदंग ने असभ्यता की खोली है।
अंगों में अनंग की जगावे ज्योति मादकता,
लाज के ठिकाने ठनी शंकर ठठोली है॥
लालिमा उड़ावेगी दरिद्रता के दंगल में,
कालिमा के कर में गुलाल भरी झोली है।
धूलि में मिलेगी कल ही को लीला हुल्लड़ की,
भारत दिवालिया की आज हाय होली है॥

होली है

(दोहा)

फागुन में फूले फिरें खुल-खुल खेलें फाग।
गोरी-रसियों को फले, रंग-राग-अनुराग॥

(घनाक्षरी कवित्त)

देखो रे अजान, ऊत खेलें फाग फागुन में,
भङ्ग की तरङ्गों में अनङ्ग सरसाया है।
बाजें ढप-ढोल नाचें गोल बाँध-बाँध गावें,
साखी सर बोल भारी हुल्लड़ मचाया है॥
बौरे अवधूत भूखे भारत के छैला बने,
भूत-गण जान धोखा शङ्कर ने खाया है।
दूर मारी लाज आज गाज गिरी सभ्यता पै,
शंठों का समाज लंठ-राजबनि आया है॥

पत्रिका और पत्रों की होली

(दोहा)

सम्पादक छैला बने, रसिक बने लिक्खाड़।
होली के हुरदंग की, देख उखाड़-पछाड़॥

(घनाक्षरी कवित्त)

*माता भगिनी का भाव भावे न वसुन्धरा को,
लक्ष्मी का लक्ष्य कमला के मन भाया है।
चन्द्रिका प्रभा के बीच सन्ध्या का गुलाल उड़े,
पण्डिता--सरस्वती ने रङ्ग बरसाया है॥
मोहिनी-सी डाले हितवारता प्रियंवदा की,
सौरभ सनातनी पताका ने उड़ाया है।
लूली बहू, वनिताहितैषिणी बनाई है तो,
शङ्कर बिहारीलाल लूलू बनिआया है॥

———

उद्धत धूर्त

(दोहा)

बात बिगाड़ी बाप की, कर कपूत ने पाप।
प्राण बिसारे सीस पै, धार कुकर्म-कलाप॥

---

*माता १, भारतभगिनी २, वसुन्धरा ३, लक्ष्मी ४, कमला ५, निगमागम चन्द्रिका ६, जुझोतियाप्रभा ७, सन्ध्या ८, सरस्वती ९, मोहिनी १०, हितवार्ता ११, प्रियम्वदा १२, सनातन-धर्म--पताका १३, वनिताहितैषिणी १४, बिहारीलाल = रसिकमित्र १५।

(गीत)

ऊलें उद्धत ऊत उतार,
धन की धूलि उड़ानेवाले ॥

श्रम का सारा सार निचोड़, देकर डेढ़ लाख का जोड़,
तन से, धन से नाता तोड़, चलते हुए कमाने वाले ।
ऊ० ऊ० उ० ध० उड़ानेवाले ॥

पूँजी कृपण पिता की पाय, मोधू उच्च कुलीन कहाय,
मन की माया को उमगाय, उफने पेट फुलाने वाले ।
ऊ० ऊ० उ० ध० उड़ानेवाले ॥

छैला लिखना-पढ़ना छोड़, अकड़े विद्या से मुख मोड़,
फूले आँख सुमति की फोड़, पशुता को अपनाने वाले ।
ऊ० ऊ० उ० ध० उड़ाने वाले ॥

भाये बढ़िया भोग-विलास, बैठे वञ्चक, पामर पास,
करते सिंहों का उपहास, गीदड़ गाल बजाने वाले ।
ऊ० ऊ० उ० ध० उड़ाने वाले ॥

पाये मन भाये सुख-भोग, सूझे विषयों के अतियोग,
घेरें चाटुकार, ठग लोग, अटके भुक्खड़ खानेवाले ।
ऊ० ऊ० उ० ध० उड़ाने वाले ॥

निथरे, छने कसूमा, भङ्ग, उड़ने लगी वारुणी सङ्ग,
चाँडू, मदक बिगाड़े ढङ्ग, झूमें चिलम चढ़ाने वाले ।
ऊ० ऊ० उ० ध० उड़ाने वाले ॥

गायक राग रँगीले गाय, नर्त्तक नाचें नाच नचाय,
लूटें ढोल बजाय-बजाय, कत्थक, भाँड़, रिझानेवाले।
ऊ० ऊ० उ० ध० उड़ाने वाले॥
सुन्दर वेष छोकड़े धार, विरचें श्यामा-श्याम-विहार,
घूरें रोचक रास निहार, भावुक भक्त कहाने वाले।
ऊ० ऊ० उ० ध० उड़ाने वाले॥
लेकर नारि पराई साथ, धोते सुकृत-सुधा में हाथ,
पीते सुरसरिता का पाथ, आवागमन छुड़ाने वाले।
ऊ० ऊ० उ० ध० उड़ाने वाले॥
फूटा, फैल गया उपदंश, पिघला वारबधू का अंश,
उत्तम उपजाने को वंश, निकले नाक सड़ाने वाले।
ऊ० ऊ० उ० ध० उड़ाने वाले॥
ऋण से बढ़ा व्याज का मान, बँगले, कोठी, घर, दूकान,
देकर बेचा सब सामान, बिगड़े ठाठ बनाने वाले।
ऊ० ऊ० उ० ध० उड़ाने वाले॥
खोकर माल बने कंगाल, पञ्जर सूखा, पटके गाल,
ओढ़ें चिथड़े लटकी खाल, भिनकें बाल बढ़ाने वाले।
ऊ० ऊ० उ० ध० उड़ाने वाले॥
जो खल खाते ठोकर-लात, दाता कहते थे दिन-रात,
वे अब नहीं पूछते बात, भटकें चने चबाने वाले।
ऊ० ऊ० उ० ध० उड़ाने वाले॥

भिक्षुक हो बैठे निरुपाय, निकला हितू न कोई हाय !
छोड़े प्राण हलाहल खाय, उठते नहीं उठाने वाले।
ऊ० ऊ० उ० ध० उड़ाने वाले ॥
ऐसे दाहक दृश्य विलोक, शंकर किसे न होगा शोक,
अब तो गुण्डों की गति रोक, ठाकुर, ठीक ठिकाने वाले।
ऊ० ऊ० उ० ध० उड़ाने वाले ॥

अनार्य्या भार्या

(दोहा)

द्वार अविद्या का किया, जिस भारत ने बन्द।
नारी हैं उस देश की, अब ऐसी मतिमन्द ॥

(घनाक्षरी कवित्त)

आखतें दिखाऊँगी अघोरी से न और कहीं,
भोंदुआ के बाप का छदाम ठगवाऊँगी।
मीरा मनवाऊँगी जमात जोड़ जोगनों की,
गूँगा पीर जाहर की जोति जगवाऊँगी ॥
चादर चढ़ाऊँगी बराही के चबूतरा पै,
भोर उठ चूहड़े का झाढ़ा लगवाऊँगी ॥
टोना टलवाऊँगी गपोड़े मान शङ्कर के,
जीजी इस लाला पै हरा न हगवाऊँगी ॥

रूठे लाल को लोरी

(दोहा)

लोट रहा क्यों धूलि में, उठ-उठ मेरे लाल ।
चल दादी का फोड़ दे, बेलन मार कपाल ॥

(गीत)

मत रोवे ललुआ लाड़ले,
हँस बोल मनोहर बोली ॥

हाय ! धूलि में लोट रहा है, मेरी खाल खसोट रहा है,
काटे बाल बकोट रहा है, उठ कर झगुली झाड़ले ।
ले बिगुल, फिरकनी, गोली !
हँस बोल मनोहर बोली ॥

मान कहा कनियाँ में आजा, पीकर दूध, मिठाई खाजा,
खेल बालकों में बन राजा, सब को पटक पछाड़ले ।
हट जाय न अटके टोली ।
हँस बोल मनोहर बोली ॥

प्यारे, पीट बहन-भाई को, पकड़ बुआ को, भौजाई को,
घेर घसीट चची-ताई को, झटपट लँहगे फाड़ले ।
फिर तार-तार कर चोली ।
हँस बोल मनोहर बोली ॥

दे-दे गाली कुनबे भर को, नाच नचाले सारे घर को,
ठोक सगे बाबा शंकर को, निधड़क मूँछ उखाड़ले ।
कर ठसक पिता की पोली ।
हँस बोल मनोहर बोली ॥

कर्कशा

(मालती सवैया)

सास मरे ससुरा पजरे इस,
बाखर में पल को न रहूँगी।
सौति जिठानी छुटी ननदी अब,
एक कहेगी तो लाख कहूँगी॥
जेठ जलावा को मारूँ पटा सुन,
देवर की फबती न सहूँगी।
ले बम अन्त नहीं पिया शंकर,
पीहर की कल गैल गहूँगी॥

धूमकेतु

(दोहा)

मोह-जाल में जो फँसे, बिन विज्ञान-विकाश।
क्यों न महामारी करे, उन असुरों का नाश॥

(गणेश गीत)

विकराल कलेवर धार,
धरा पर धूम्र-केतु आये॥
तक-तक तीर मार ने मारे, रुद्र देव ने नयन उघारे,
जो रिस रही तीसरे दृग में, उस ने उपजाये।
वि० क० धा० ध० धू० आये॥

त्रिभुवन-काल-पिता के प्यारे, छीन जिये रुज-सेवक सारे,
आदर पाय रोग-मंडल में, अगुआ कहलाये ।
वि० क० धा० ध० धू० आये ॥
सर्व-नाश के रसिक सयाने, व्यास देव ने प्रभु जब जाने,
तब तो आप महाभारत के, लेखक ठहराये ।
वि० क० धा० ध० धू० आये ॥
अब सटकारी शुण्ड नहीं है, तन मोटा गज-मुण्ड नहीं है,
महिमा छोड़ गूढ़ लघिमा की, पूँछ पकड़ लाये ।
वि० क० धा० ध० धू० आये ॥
अङ्ग असंख्य कीट अति छोटे, साठ बाल से अधिक न मोटे,
अणुमय आप यंत्र के द्वारा, देख परख पाये ।
वि० क० धा० ध० धू० आये ॥
जब से प्रभु का ठीक ठिकाना, हम ने धरणी तल में जाना,
तब से पूज-पूज जड़ ढेले, सब से पुजवाये ।
वि० क० धा० ध० धू० आये ॥
गुप्त विहार किया करते हो, केवल पावक से डरते हो,
वैदिक होम हीन भारत पै, निर्भर चढ़ धाये ।
वि० क० धा० ध० धू० आये ॥
ठौर-ठौर मुरदे गढ़ते हैं, प्रभु के भोगस्थल बढ़ते हैं,
इन भूलों पर हाय ! अभागे, नेक न पछताये ।
वि० क० धा० ध० धू० आये ॥

कालकूट बिल में घुस घोलें, प्रभु को लाद लुड़कते डोलें,
क्षुद्र-काय वाहन द्रुतगामी मूषक मन भाये।
वि० क० धा० ध० धू० आये ॥
जितने चूहों पर चढ़ते हो, मार-मार करते बढ़ते हो,
वे सब के सब प्रेत-लोक को, पल में पहुँचाये।
वि० क० धा० ध० धू० आये ॥
बीन-बीन कर दीन बिचारे, जीवन-प्राण हीन कर मारे,
पीन कुटुम्ब धींग धनिकों के ढिल्लड़ कर ढाये।
वि० क० धा० ध० धू० आये ॥
मानव दल-पल्लव से तोड़े, बानर, कीट-पतंग न छोड़े,
उरग विहंग, और चौपाये, बलि बनाय खाये।
वि० क० धा० ध० धू० आये ॥
पहले तीव्र ताप चढ़ि आवे, पीछे कठिन गांठ कढ़ि आवे,
पुनि प्रलाप यों भाँति-भाँति के, कौतुक दरसाये।
वि० क० धा० ध० धू० आये ॥
देख-देख भय, शोक, उदासी, विकल पुकारें भूतल-वासी,
हुआ हर्ष कपूर, कमल से मुखड़े मुरझाये।
वि० क० धा० ध० धू० आये ॥
खात-खात इतने दिन बीतें, किये ग्राम, पुर, पत्तन रीते,
अबलों अपने लम्बोदर को, नाथ न भर पाये।
वि० क० धा० ध० धू० आये ॥

हम से नाम अनेक धराये, अरब जाय ताऊन कहाये,
पाय प्लेग पद अँगरेजों से, इतने इतराये।
वि० क० धा० ध० धू० आये ॥
काँप रहे कविराज हमारे, बचते फिरें तबीब बिचारे,
डाक्टरों की अकड़ पकड़ से नेक न सकुचाये।
वि० क० धा० ध० धू० आये ॥
अब तो देव, दया उर धारो, नर-भक्षण की बान विसारो,
सेवक भूत बने जंगल के, छनियाँ घर छाये।
वि० क० धा० ध० धू० आये ॥
पोल खोल ढिलमिल ढाँचे की, रचना रच रूपक साँचे की,
इस में ताय तुम्हें शंकर ने, बेढब ढलकाये।
वि० क० धा० ध० धू० आये ॥

अविद्यानन्द का व्याख्यान

(दोहा)

अन्ध अँधेरे में सुनो, करलो अँखियाँ बन्द।
उगलेंगे अँधेर यों, अबुध अविद्यानन्द ॥

(भुजंग्यात्मक मिलिन्दपाद)

तुही शंकराधार संसार है, निराकार है और साकार है,
बना सर्व-स्रष्टा विधाता तुही, गुणी-निर्गुणी दर्प-दाता तुही।
खिली आज तेरी कृपा की कली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली ॥

नकीला नहीं सूँघता गन्ध है, निहारे बिना आँख का अन्ध है,
सुने तू बिना कान बूँचा रहे, छुपे पै अछूता समूँचा रहे।
मिला तू गिरा-हीन वक्ता बली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

अरे ओ अजन्मा, कहाँ तू नहीं, न कोई ठिकाना जहाँ तू नहीं,
किसी ने तुझे ठीक जाना नहीं, इसी से यथातथ्य माना नहीं।
शिखा सत्य की झूठ ने काटली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

तुझे तर्क ने तोल पाया नहीं, किसी युक्ति के हाथ आया नहीं,
कहीं कल्पना बाँझ का पूत है, कहीं भावना का महाभूत है।
मिलेगी किसी को न तेरी गली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

कला अस्ति की जानती है तुझे, न धी बुद्ध की मानती है तुझे,
कहा सच्चिदानन्द तू वेद ने, बताया नहीं भेद निर्भेद ने।
न चूके दुई की दुनाली चली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

मुझे क्या किसी भाँति का तू सही, कथा मंगलाभास की-सी कही,
जहाँ भक्ति तेरी रहेगी नहीं, वहाँ धर्म-धारा बहेगी नहीं।
करे क्या पड़ी कीच में निर्मली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

कटीली कृपा है महाराज की, अड़ीली अथाई जुड़ी आज की,
भिड़ी भिन्नता के महा भक्त हैं, सिड़ी एकता के न आसक्त हैं।
भरी भीड़ से पुण्य-कर्मस्थली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

अरे! आज मेरी कहानी सुनो, नई बात पोथी पुरानी सुनो,
किसी अंश पै दंश देना नहीं, यहाँ तर्क से काम लेना नहीं।
डिगेगी नहीं डाँट से मंडली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

अरे, जो न माने बड़े का कहा, उसे ध्यान क्या सभ्यता का रहा,
युगाचार का भूलना भूल है, अविश्वास अन्धेर का मूल है।
मिली मानदा धर्म-ग्रन्थावली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

लिखा है कि लज्जा रहेगी नहीं, कुशिक्षा किसी की सहेगी नहीं,
मिले मेल का नाश हो जायगा, जगा वैर को प्रेम सो जायगा।
खिलाता खलों को खिलाड़ी कली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

चलो ताकते काल की चाल को, घसीटो धनी और कंगाल को,
डरेगा नहीं जो किसी पाप से, बचेगा वही शोक-सन्ताप से।
उठाता नहीं कष्ट कोई भली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

सुने स्वर्ग से लौ लगाते रहो, पुनर्जन्म के गीत गाते रहो,
डरो कर्म-प्रारब्ध के योग से, करो मुक्ति की कामना भोग से।
अश्रद्धा-सुधा से भरो अञ्जली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

महीनों पड़े देव सोते रहें, महीदेव डूबे डुबोते रहें,
मरी चेतना-हीन गंगा बही, न पूरी कला तीरथों में रही।
कमाऊ जड़ों की न पूजा टली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

निकम्मे सुरों की न सेवा करो, चढ़े भूतनी-भूतड़ों से डरो,
मसानी मियाँ को मना लीजिये, जखैया रखैया बना लीजिये।
करेंगे बली निर्बलों को अली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

हँसो हंस को शारदा को तजो, उलूकासनी इन्दिरा को भजो,
धनी का धरो ध्यान छोटे-बड़े, रहो द्रव्य की लालसा में खड़े।
मिला मेल मा से महा मंगली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

अनारी गुणी मानते हैं जिन्हें, गुणी जालिया जानते हैं जिन्हें,
उन्हें दान से, मान से पूजिये, हठो हेकड़ों के हितू हूजिये।
छकें छाक छूटे न छैला छली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

सुधी साधु को मान-खाना न दो, किसी दीन को एक दाना न दो,
बड़े हो बड़ा दान देना वहाँ, बड़ाई करे वर्ण-माला जहाँ।
करें ख्याति की ठोस क्यों खोखली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

कभी गाय बूढ़ी नहीं पालना, किसी मिश्र को दान दे डालना,
बड़ाई मिलेगी बड़ी आप को, इसी भाँति काटा करो पाप को।
कहो गैल गोलोक की जान ली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

अड़े पक्ष के तार ताने बनें, सड़े सूत के बोल बाने बनें,
घने जाल जाली बुना कीजिये, न कोरी कहानी सुना कीजिये।
कबीरी कला गाढ़ से काढ़ ली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

रचो ढोंग पाखण्ड छूटे नहीं, छुआछूत का तार टूटे नहीं,
मिले फूट के बोल बोला करो, न अन्धेर की पोल खोला करो।
भरी भेद से जाल की कुण्डली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

जहाँ झंझटों का झड़ाका न हो, ध्वजा-धारियों का धड़ाका न हो,
वहाँ खोखले खेल खेला करो, पड़े पार पै दण्ड पेला करो।
जले जी न चिन्ता करे बेकली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

महा मूढ़ता के सँगाती रहो, दुराचार के पक्षपाती रहो,
जुड़ें चौधरी पञ्च पोंगा जहाँ, न बोला करो बोल बीले वहाँ।
बढ़ेंगे भला होड़ क्या जंगली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

बुरी सीख सीखो सिखाते रहो, महा मोह-माया दिखाते रहो,
विरोधी मिलें जो कहीं एक-दो, उन्हें जाति से पाँति से छेक दो।
पड़े न्याय के नाम की यों डली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

बसे भैरवी चक्र में वीरता, विराजी रहे गर्व-गम्भीरता,
वहाँ वीर बानेत जाया करो, कड़े कण्टकों को जलाया करो।
बने वर्ण व्यापार की कज्जली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

जगज्जाल से छूट जाना नहीं, बिना फन्द खाना कमाना नहीं,
न ऊँचे चढ़ो नीच होते रहो, बड़ों के बड़ों को बिगोते रहो।
कहो द्वैध की दाल चोखी गली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

ठगो देशियों को ठगाया करो, विना मेल मेले लगाया करो,
ढके ढोंग का ढाँच ढीला न हो, धबीली कहीं लोभ-लीला न हो।
ठगी दम्भ का पाय साँचा ढली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली।

नई ज्योति की ओर जाना नहीं, पुराने दिये को बुझाना नहीं,
घनी सम्पदा को न हाँगा करो, भिखारी बने भीख माँगा करो।
भलों के लगी हाथ भिक्षा भली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

अविद्वान-विद्वान, छोटे-बड़े, बड़े थे, बड़े हो, रहोगे बड़े,
सदा आपका बोल बाला रहे, कुदेवावली का उजाला रहे।
खिले भस्म, बिन्दा दिपे सन्दली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

महा तन्त्र के मन्त्र देते रहो, खरी दक्षिणा, दान लेते रहो,
लगातार चेले बढ़ाते रहो, नई चेलियों को पढ़ाते रहो।
रहे श्याम के साथ श्यामो लली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

घटी चाल को चंचला कीजिये, भलाई न भूलो भला कीजिये,
खरे खेल खेलो खिलाते रहो, सुधा सेवकों को पिलाते रहो।
बढ़ाती रहे मान गंगाजली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

महा मूढ़-मोधू मिलापी रहें, सँगाती सखा पोच पापी रहें,
घनी दूध-बूरा पिलाते रहें, खरे माल खोटे खिलाते रहें।
कहो, कौन से दक्षिणा यों न ली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

नहीं सींचना खेत संग्राम के, खड़े खेत जोता करो ग्राम के,
कड़े फूट के बीज बोया करो, सड़े मेल का खोज खोया करो।
जियें जाति जोता न होते हली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

छड़ी धार छैला छबीले बनो, रँगीले, रसीले, फबीले बनो,
न चूको भले भोग-भोगी बनो, किसी बेड़नी के वियोगी बनो।
बने यों गलीमार घेरें गली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

अमीरो धुआँ-धार छोड़ा करो, पड़े खाट के बान तोड़ा करो,
मज़ेदार मूछें मरोड़ा करो, निठल्ले रहो काम थोड़ा करो।
चबाते रहो पान दौरे डली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

रचो फाग होली मचाया करो, नई कंचनी को नचाया करो,
रँगीले बने रंग डाला करो, भरे भाव जी के निकाला करो।
रहो भंग पीते, चबाते तली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

न प्यारा लगे नाच-गाना जिसे, कलंकी करे माँस खाना जिसे,
कसूमा, सुरा, भंग पीता नहीं, उसे जान लेना कि जीता नहीं।
कहो, रे लला हीज! होजा लली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

हँसे होलिका में न पाऊ बने, न दीपावली का कमाऊ बने,
न होली-दिवाली सुहाती जिसे, उसे छोड़ लूलू कहोगे किसे।
बना ढोर खाता न भूसा-खली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

बड़ी चाह से ब्याह बूढ़े करें, नकीले कुलों की कुमारी बरें,
न बेटा सगी सास बाला कहे, न माजी लला साठसाला कहे।
कहे क्यों न बाबा बधू बावली।
न विज्ञान फूली न विद्या फली॥

जहाँ बेटियाँ बेचना धर्म है, जहाँ भ्रूण-हत्या भला कर्म है,
बने रंडियाँ बालरंडा जहाँ, वहाँ पाप जीता रहेगा कहाँ।
अनाथा सुता की जमा मारली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

लगा लाग दूकान खोला करो, कभी ठीक सौदा न तोला करो,
कहो ग्राहकों से कि धोखा नहीं, भला कौन-सा माल चोखा नहीं।
बढ़ी, धूलि में यों न पूँजी रली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

लगातार पूँजी बढ़ाते रहो, कमाते रहो ब्याज खाते रहो,
न कंगाल का पिण्ड छोड़ा करो, लुहू लीचड़ों का निचोड़ा करो।
कहो, दाल यों छातियों पै दली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

रुई, नाज देशी दिया कीजिये, विदेशी खिलौने लिया कीजिये,
हवेली-घरों को सजाया करो, पड़े मस्त बाजे बजाया करो।
चढ़ें मोटरों पै मझौली न ली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

खरी खाँड़ देशी न लाया करो, बुरी बीट-चीनी गलाया करो,
लुके लाट, शीरा मिलाते रहो, दुरंगी मिठाई खिलाते रहो॥
कहो, नाक यों धर्म की काटली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

पराई जमा मारनी हो जहाँ, अजी! काढ़ देना दिवाला वहाँ,
किसी का टका भी चुकाना नहीं, न थोथे उड़ाना थुकाना नहीं।
छुपी धूप की धाक छाया ढली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

चितेरे, कलाकार, कारीगरो, उठो काम का नाम ऊँचा करो,
पड़े गुप्त क्यों विश्वकर्म्मा बनो, सु-शर्म्मा बनो, वीर वर्मा बनो।
कहो, लो बला नीचता की टली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

न भाषा पढ़ो, राज-भाषा पढ़ो, बढ़ो वीर ऊँचे पदों पै चढ़ो,
करो चाकरी घूँस खाया करो। मिले वेतनों को बचाया करो।
कहो, न्याय क्या नीति भी नापली,
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

गवाही कभी ठीक देना नहीं, कहीं सत्य से काम लेना नहीं,
भले मानसों को सताया करो, खरे खूसटों को बचाया करो।
दुराचार को मान लो मंगली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

धता इण्डिया की धजों को कहो, सजे लंडनी फ़ैशनों से रहो,
बराँडी पिओ मीट खाया करो, टके होटलों के चुकाया करो।
बरो नारि गोरी मरे साँवली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

बहू-बेटियों को पढ़ाना नहीं, घरेलू घटी को बढ़ाना नहीं,
पढ़ी नारि नैया डुबो जायगी, किसी मित्र की मेम हो जायगी।
बनेगी नहीं हंसनी कागली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

सुनो तुक्कड़ो, बात भद्दी नहीं, तुकों की करामात रद्दी नहीं,
यहाँ भूल का क़ाफ़िया तंग है, अरे नागरो! नागरी दंग है।
भुजंगी कला पिंगला काढ़ली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

कहे पद्म भू वाण थोड़े नहीं, गिनो गाँठ बाँधो गपोड़े नहीं,
सुना दो छिली ईंट को गालियाँ, कथा हो चुकी पीट दो तालियाँ।
सुसीमा सुधा-सिंधु की लाँघली।
न विज्ञान फूला न विद्या फली॥

———

हायरे दुर्दैव !

(दोहा)

हा ! खोटे दिन आगये, बीत गया शुभ काल।
भारत-माता ने जने, अबुध, हीज, कंगाल ॥

(दादरा)

हाय ! कैसे कुदिन अब आय गये ॥
बौरे बड़ों के बड़प्पन की बड़ में,
छोटों के सारे सहारे समाय गये ।
हाय ! कैसे कुदिन अब आय गये ॥
भागे भले भोग भोजन को भटकें,
भूखे, अभागे, भिखारी कहाय गए ।
हाय ! कैसे कुदिन अब आय गये ॥
चेले चलाते न चेतन की चरचा,
पूजें जड़ों को पुजारी पुजाय गये ।
हाय ! कैसे कुदिन अब आय गये ॥
शिक्षा सचाई की शंकर न समझें,
अन्धे अनारी अविद्या बढ़ाय गये ।
हाय ! कैसे कुदिन अब आय गये ॥

———

*

प्रभो, पाहि ! पाहि !!

(दोहा)

जिसकी चोटों से हुआ, जीवन चकनाचूर।
हा ! मेरे उस दुःख को, करदे शंकर दूर॥

(गीत)

करदे दूर दयालु महेश,
मुझ पै दारुण दुख पड़ा है।
मन में ऊल रहा अविवेक, तन में उपजे रोग अनेक,
टिकती नहीं वचन में टेक, पकड़े पातक-पुञ्ज खड़ा है।
क० दू० द० म० मु० दा० दु० पड़ा है॥
कुनबा रहे सदैव उदास, बहुधा करता है उपवास,
बिगड़ा ढङ्ग छदाम न पास, घर में घोर दरिद्र अड़ा है।
क० दू० द० म० मु० दा० दु० पड़ा है॥
श्रम की पूँछ न पकड़ें पूत, उद्यम करें न अल्हड़ ऊत,
अकड़ें तोड़ सुमति का सूत, छलिया छोटे, कुटिल बड़ा है।
क० दू० द० म० मु० दा० दु० पड़ा है॥
मेरा निरख नरक में वास, निन्दक करते हैं उपहास,
शंकर ! देख विषाद-विलास, लघुता लिपटी, मान झड़ा है।
क० दू० द० म० मु० दा० दु० पड़ा है॥

———

भिखारी भारत

(राग देश)

भिखारी बन बैठौ भैया भारत देश ।
व्याकुल असन वसन विन भोगे, निशदिन कठिन कलेश ।
भिखारी बन बैठौ भैया भारत देश ॥

सुख-साधन प्रमाद-पावक में, सब कर गये वेशप्र ,
भूला सुन पाखंड खंड के, अंड बंड उपदेश ।
भिखारी बन बैठौ भैया भारत देश ॥

दै मारौ आलस्य असुर ने, गहि शुभ गुण गण केश ,
रंक भयौ अब कौन कहैगौ, याहि निशंक नरेश ।
भिखारी बन बैठौ भैया भारत देश ॥

छोड़ गई प्राचीन प्रतिष्ठा, गौरव रह्यौ न लेश ,
शंकर घोर अमंगल टारौ, मंगल-मूल महेश ।
भिखारी बन बैठौ भैया भारत देश ॥

धनी से निर्धन

(दोहा)

काम रुखाई से पड़ा, सूख गई सब तीत ।
घेरा घोर दरिद्र ने, दैव हुआ विपरीत ॥

दीन पुकार

(दोहा)

देख दीनता दीन की, दीनदयालु उदार।
दीनानाथ उतार दे, भव-सागर से पार॥

(सगणात्मक सवैया)

कर कोप जरा मन मार चुकी, बल-हीन सरोग कलेवर है।
परिवार घना धन पास नहीं, भुजभग्न दरिद्र भरा घर है॥
सब ठौर न आदर-मान मिले, मिलता अपमान-अनादर है।
मुझ दीन अकिञ्चन की सुधि ले, सुख दे प्रभु तू यदि शंकर है॥

———

मन्दोद्भास का सार

(दोहा)

जिन के द्वारा होगये, हम दरिद्र के दास।
उन दोषों का दृश्य है, समल मन्द-उद्भास॥

———

अनुराग-रत्न

विचित्रोद्भास

ब्रह्मोद्घोषण

अन्धन्तमः प्रविशन्ति ये सम्भूतिमुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्याँ रताः ॥

प्रामादिक मदोन्मत्त

(शार्दूलविक्रीडित वृत्त)

आदित्यस्य गतागतैरहरहः, संक्षीयते जीवितम् ।
व्यापारैर्बहु कार्यभारगुरुभिः, कालो न विज्ञायते ॥
दृष्ट्वा जन्म जरा विपत्ति मरणं, त्रासश्च नोत्पद्यते ।
पीत्वा मोहमयीं प्रमादमदिरामुन्मत्तभूतं जगत्❀ ॥

———

❀ श्री राजर्षि महाकवि भर्तृहरि प्रणीत ।

(पञ्चचामर वृत्त)

महेश के महत्त्व का, विवेक बार बार हो।
अखण्ड एक तत्वका, अनेकधा विचार हो॥
बिगाड़ से समाज के, प्रबन्ध का सुधार हो।
प्रवीण पञ्चराज के, प्रपञ्च का प्रचार हो॥

पंच-प्रलाप

(सोरठा)

जिन का पुण्य प्रताप, कोई कह सकता नहीं।
महिमा अपनी आप, समझाते वे सब कहीं॥

मेरा महत्त्व

(दोहा)

मनसा, वाचा, कर्मणा, महिमा से भरपूर।
मेरे मान-महत्त्व से, गौरव रहै न दूर॥

(रौलाछन्द)

(१)

मङ्गल-मूल महेश, मुक्ति-दाता शङ्कर है।
शङ्कर का उपदेश, महाविद्या का घर है॥
शङ्कर जगदाधार, तुझे मैं जान चुका हूँ।
उन्नति का अवतार, वेद को मान चुका हूँ॥

(२)

मेरा विशद विचार, भारती का मन्दिर है।
जिस में बन्ध-विकार, कल्पना-सा अस्थिर है॥
प्रतिभा का परिवार, उसी में खेल रहा है।
अवनति को संसार-कूप में ठेल रहा है॥

(३)

रहे निरन्तर साथ, धर्म दश लक्षण धारी।
पकड़ रहा है हाथ, सुकर्मोदय हितकारी॥
प्रति दिन पांचों याग, यथाविधि करता हूँ मैं।
सकल कामना त्याग, स्वतंत्र विचरताहूँ मैं॥

(४)

सार हीन हठ-वाद, छोड़ आचरण सुधारे।
छल, पाखण्ड, प्रमाद, विरोध-विलास विसारे॥
मन में पाप कलाप, कुमत का वास नहीं है।
मदन, मोह, सन्ताप, कुलक्षण पास नहीं है॥

(५)

मुझ में ज्ञान, विराग, बुद्ध से भी बढ़ कर है।
अविनाशी अनुराग, असीम अहिंसा पर है॥
निरख न्याय की रीति, मुझे सब राम कहेंगे।
परख अनूठी नीति, सुधी घनश्याम कहेंगे॥

(६)

रोग-हीन बलवान, मनोहर मेरा तन है।
निश्चल प्रेम-प्रधान, सत्य-सम्पादक मन है॥
निर्मल कर्म, विचार, वचन में दोष कहाँ है।
मुझ-सा धन्य, उदार, अन्य मृदु-घोष कहाँ है॥

(७)

वीत-राग, विन रोष एक मुनि-नायक पाया।
निगुरा-पन का दोष, उसे गुरु मान मिटाया॥
यद्यपि सिद्ध स्वतन्त्र, जगद्गुरु कहलाता हूँ।
तो भी गुरु-मुख-मंत्र, मान मन बहलाता हूँ॥

(८)

दुःख-रूप सब अंग, अविद्या के पहचाने।
सुख-सम्पन्न-प्रसङ्ग, अर्थ अपरा के जाने॥
दोनों पर अधिकार, परा विद्या करती है।
अखिलानन्द अपार, एकता में भरती है॥

(९)

जिसकी उलटी चाल न सीधा सुमग दिखावे।
जिसका कोप कराल, न मेल मिलाप सिखावे॥
जो खल-दल को घोर, नरक में ठेल रही है।
वह माया चहुँ ओर, खेल खुल खेल रही है॥

(१०)

जो सब के गुण, कर्म, स्वभाव समस्त बतावे ।
जो ध्रुव धर्म-अधर्म, शुभाशुभ को समझावे ॥
जिस में जगदाकार, भद्र-मुख-भाव भरा है ।
वही विविधि व्यापार, परक विद्या अपरा है ॥

(११)

जीव जिसे अपनाय, फूल-सा खिल जाता है ।
योग-समाधि लगाय, ब्रह्म से मिल जाता है ॥
जिस में एक अनेक, भावना से रहता है ।
उसको सत्य विवेक, परा विद्या कहता है ॥

(१२)

जिस में जड़ चैतन्य, सर्व-संघात समावे ।
जिस अनन्य में अन्य, वस्तु का बोध न पावे ॥
जिस जी में रस उक्त, योग का भर जावेगा ।
वह बुध जीवन्मुक्त, मृत्यु से तर जावेगा ॥

(१३)

बालकपन में राँड़, अविद्या की जड़ काटी ।
तरुण हुआ तो खाँड़, खीर अपरा की चाटी ॥
अब तो उत्तम लेख, परा के बाँच रहा हूँ ।
बुढ़वा मंगल देख, जरा को जाँच रहा हूँ ॥

(१५)

गाणपत्य मत मान, रहे थे मेरे घर के।
मैं भी गुण गण गान, करे था लम्बोदर के॥
शिशुता में वह बाल, विलास न छोड़ा मैंने।
उमगा यौवन-काल दम्भ-घट फोड़ा मैंने॥

(१४)

पढ़ता था दिन रात, महा श्रम का फल पाया।
निखिल तंत्र निष्णात राजपंडित कहलाया॥
लालच का बल पाय, लष्ठ गढ़ तोड़ लिया था।
केवल गाल बजाय, घना धन जोड़ लिया था॥

(१६)

रहे प्रतारक संग, कपट की बेलि बढ़ाई।
मन भाये रस रंग, मदन की रही चढ़ाई॥
भोजन, पान, विहार, यथारुचि करता था मैं।
विधि, निषेध का भार, न सिर पै धरता था मैं॥

(१७)

बाल-विवाह विशाल, जाल रच पाप कमाया।
ब्रह्मचर्य-व्रत-काल, वृथा विपरीत गमाया॥
अबला ने चुपचाप, उठाय पछाड़ा मुझको।
बेटा जन कर बाप, बनाय बिगाड़ा मुझको॥

(१८)

प्यारे गुरु लघु लोग, मरे घरबार बिसारे।
करनी के फल भोग- भोग सुरधाम सिधारे॥
बनिता ने जब हाथ, हटा कर छोड़ा मुझको।
तब सुधार के साथ, सुमति ने जोड़ा मुझको॥

(१९)

पहले बालक चार, मृत्यु के मुख में डाले।
पिछले कौल-कुमार, कल्प-पादप से पाले॥
जिन को धन-भण्डार, युक्त घर पाया मेरा।
अब शिव ने संसार, कुटुम्ब बनाया मेरा॥

(२०)

जिस जीवन की चाल, बुरा करती थी मेरा।
बीत गया वह काल, मिटा अन्धेर-अँधेरा॥
पिछले कर्म-कलाप, बताना ठीक नहीं है।
अपने मन को आप, सताना ठीक नहीं है॥

(२१)

हिमगिरि-ज्ञानागार, धवल मेधा-ध्रुवनन्दा।
जिसमें चूबक मार, मार मन रहा न गन्दा॥
पातक-पुञ्ज पजार, पुण्य भर पूर किया है।
ज्ञान प्रकाश पसार, मोह-तम दूर किया है॥

(२२)

जान लिया हठ-योग, अखण्ड-समाधि लगाना।
कर्म-योग-फल भोग, अमङ्गल-भूत भगाना॥
क्या मुझ-सा व्रत-सिद्ध, सुधारक और न होगा।
होगा पर सुप्रसिद्ध, सर्व-शिरमौर न होगा॥

(२३)

क्या करते प्रतिवाद, वचन सुन मेरे तीखे।
गोतम, कृष्ण, कणाद, पतञ्जलि, व्यास सरीखे॥
युक्ति हीन नर ग्रन्थ, न जी में भर सकते हैं।
तर्क-शत्रु मत, पन्थ, भला क्या कर सकते हैं॥

(२४)

बन कर मेरा जोड़, न ऊत अजान अड़ेगा।
पण्डित भी भय छोड़, न टेक टिकाय लड़ेगा॥
भिड़ा न भारत-धर्म, मुखर-मण्डल में कोई।
दिखला सका सुकर्म, न वैदिक दल में कोई॥

(२५)

मैंने असुर, अजान, प्रमादी, पिशुन पछाड़े।
हार गये अभिमान, भरे अबधूत-अखाड़े॥
जिस की चपला चाल, देश को दल सकती है।
क्या उस दल की दाल, यहाँ भी गल सकती है॥

(२६)

हेकड़ होड़ दबाय, उलझने को आते हैं।
पर वे मुझे नवाय, न ऊँचा पद पाते हैं॥
जिसका घोर घमण्ड, घरेलू घट जाता है।
वह प्रचण्ड उद्दण्ड, हठीला हठ जाता है॥

(२७)

ठग मेरे विपरीत, बुरी बातें कहते हैं।
घर ही में रणजीत, बने बैठे रहते हैं॥
मैं कलि-काल विरुद्ध, प्रतापी आप हुआ हूँ।
पाकर जीवन शुद्ध, निरा निष्पाप हुआ हूँ॥

(२८)

जो जड़ मति का कोष, न पूजेगा पग मेरे।
उस अजान के दोष, दिखा दूँगा बहुतेरे॥
जो मुझ को गुरु मान, प्रेम के साथ रहेगा।
उस पर मेरे मान दान का हाथ रहेगा॥

(२९)

मैं असीम अभिमान, महा महिमा के बल से।
डरता नहीं निदान, किसी प्रतियोगी दल से॥
निगमागम का मर्म, विचार लिया करता हूँ।
तदनुसार सद्धर्म, प्रचार किया करता हूँ॥

(३०)

तन में रही न व्याधि, न मन में आधि रही है।
रही न अन्य उपाधि अनन्य समाधि रही है॥
अनघ शिष्य को सर्व, सुधार सिखा सकता हूँ।
अपना गौरव-गर्व, अदम्य दिखा सकता हूँ॥

(३१)

मुझ को साधु-समाज, शुद्ध जीवन जानेगा।
सर्वोपरि मुनि-राज, सिद्ध-मंडल मानेगा॥
अपना नाम पवित्र, प्रसिद्ध किया है मैंने।
शुभ चरित्र का चित्र, दिखाय दिया है मैंने॥

(३२)

यद्यपि लालच दूर, कर चुका हूँ मैं मन से।
तोभी मठ भरपूर, भरा रहता है धन से॥
छोड़ दिये सुख-भोग, विषय-रस रूखा हूँ मैं।
दान करें सब लोग, सुयश-मधु-भूखा हूँ मैं॥

(३३)

वेद और उपवेद, पढ़ा सकता हूँ पूरे।
अङ्ग विधायक भेद, रहेंगे नहीं अधूरे॥
तर्क-प्रवाह-तरंग, विचित्र दिखा दूँ सारे।
पौराणिक रस-रङ्ग, प्रसङ्ग सिखा दूँ सारे॥

(३४)

ग्रन्थ विना अनुवाद, किसी भाषा का रखलो।
उस के रस का स्वाद, खड़ी बोली में चखलो॥
जो अनुचर अल्पज्ञ न ज्यों का त्यों समझेगा।
वह मुझ को सर्वज्ञ, कहो तो क्यों समझेगा॥

(३५)

यदि मैं व्यर्थ न जान, काम कविता से लेता।
तो तुक्कड़- कुल मान, दान क्या मुझे न देता॥
लेखक लेख निहार, लेखनी तोड़ चुके हैं।
सम्पादक हिय हार, हेकड़ी छोड़ चुके हैं॥

(३६)

शिल्प रसायन सार, कहो जिसको सिखला दूँ।
अभिनव आविष्कार, अनोखे कर दिखला दूँ॥
भूमि-यान, जल-यान, वितान बना सकता हूँ।
यंत्र सजीव समान, अजीब बना सकता हूँ॥

(३७)

गोल भूमि पर डोल, डोल सब देश निहारे।
खोल गगन की पोल, वेध कर परखे तारे॥
लोक मिले चहुँ ओर कहीं अवलम्ब न पाया।
विधि ने जिसका छोर छुआ वह लम्ब न पाया॥

(३८)

दे देकर उपदेश, पुजा देशी मण्डल में।
किया न चञ्चुप्रवेश, राज विद्रोही दल में॥
अब सरिता के तीर, कुटी में वास करूँगा।
त्याग अनित्य शरीर, काल का ग्रास करूँगा॥

(३९)

मेरा अनुचर-चक्र, चुटीली चाल चलेगा।
रौंद-रौंद कर वक्र, कुचालों को कुचलेगा॥
मानव-दल की दूर, दुर्दशा कर देवेगा।
भारत में भरपूर, भलाई भर देवेगा॥

(४०)

सुनकर मेरी आज, अनूठी राम-कहानी।
धन्य-धन्य मुनि-राज, कहेंगे आदर दानी॥
पण्डित परमोदार, प्रवीण प्रणाम करेंगे।
लम्पट, लण्ठ, लबार, वृथा बदनाम करेंगे॥

मन मोदक

(दोहा)

दूर करेंगे आलसी, मन-मोदक से भूख।
फूल फलेंगे चित्र के, सुन्दर नीरस रूख॥

मेरा मनो राज्य

(सपुच्छ चतुष्पदी छन्द)

मङ्गल-मूल सच्चिदानन्द, हे शङ्कर! स्वामी सुख-कन्द,
देव रहो मेरे अनुकूल, दूर करो सारे भ्रम-शूल।
कर दानी, मनमानी ॥

व्याकुल करें न पातक-रोग, जीवन भर भोगूँ सुख-भोग,
हो सदभ्युदय का जब अन्त, मुक्ति मिले तब हे भगवन्त।
कर दानी, मनमानी ॥

चेतनता न तजे विश्राम, मन-मयूर नाचे निष्काम,
वाणी कहे वचन गम्भीर, खोटे कर्म न करे शरीर।
कर दानी, मनमानी ॥

ध्रुव की भाँति पढ़ा दो वेद, ब्रह्म-जीव में रहे न भेद,
करें निरङ्कुश मायावाद, मिटे अविद्याजन्य प्रमाद।
कर दानी, मनमानी ॥

जाति-पाँति, मत-पन्थ अनेक, दुर-दुर छुआछूत को छेक,
सब को फुरे विशुद्ध विवेक, उपजे धर्म सनातन एक।
कर दानी, मनमानी ॥

जिसमें सब की शक्ति समाय, मैं भी उस मत को अपनाय,
धार विश्व की विमल विभूति, सिद्ध कहाय करूँ करतूति।
कर दानी, मनमानी ॥

हे प्रभु! द्वार दया का खोल, कर दो दान मुझे भूगोल,
सागर सारे देश अनेक, सब का ईश बनूँ मैं एक।
कर दानी, मनमानी ॥

रहें सहायक पाँचो भूत, बार-बार बरसें जीमूत,
बिजली करे अनूठे काम, फलें सिद्धियों के परिणाम।
कर दानी, मनमानी ॥

कर कुबेर को चकनाचूर, धन से कोष भरूँ भरपूर,
कमला कर मेरे घर वास, जाय न अपने पति के पास ॥
कर दानी, मनमानी ॥

भाँति-भाँति के पत्तन-ग्राम, बन जावें सारे सुख-धाम,
सब को मिले मेल की लूट, मिट जावे आपस की फूट।
कर दानी, मनमानी ॥

कुल्या, कूल बहें अविराम, फूल फलें कानन, आराम,
प्राणी पाय शुद्ध जल वायु, भय तज भोगें पूरी आयु।
कर दानी, मनमानी ॥

दैशिक सम्मेलन के हेतु, बँधें सिन्धु, नदियों के सेतु,
जिनके द्वारा अन्तर त्याग, मिलें समस्त भूमि के भाग।
कर दानी, मनमानी ॥

गगन-गोल में उड़ें विमान, जल में तरें घने जलयान,
धरणीतल पर दौड़ें रेल, चलें अन्य वाहन पँचमेल।
कर दानी, मनमानी ॥

बने राज-पथ चारों ओर, चलें बटोही मिलें न चोर,
सुन्दर पादप रोकें धूप, दान करें जल वापी, कूप।
कर दानी, मनमानी ॥

फलें सदुद्यम के व्यवहार, शिल्प, रसायन बढ़ें अपार,
पौरुष-रवि का पाय प्रकाश, उन्नति-नलिनी करे विकाश।
कर दानी, मनमानी ॥

लगे भूमि पर स्वल्प लगान, जल पावें विन मोल किसान,
उपजें विविध भाँति के माल, पड़े न मँहगी और अकाल।
कर दानी, मनमानी ॥

आयुर्वेद-विहित कविराज, सादर सब का करें इलाज,
बटें सदाव्रत रुकें न हाथ, मरें न भिक्षुक, दीन, अनाथ।
कर दानी, मनमानी ॥

दो-दो विद्यालय सब ठौर, खोलें अध्यापक सिरमौर,
करें यथाविधि विद्या-दान, उपजावें विदुषी-विद्वान,।
कर दानी, मानमानी ॥

साङ्ग वेद, दर्शन, इतिहास, ललित काव्य, साहित्य-विलास,
गणित, नीति, वैद्यक, संगीत, पढ़ें प्रजा-जन बने विनीत।
कर दानी, मनमानी ॥

सीखें सैनिक शस्त्र-प्रयोग, वीर बनें साधारण लोग,
धारें टेक टिकाय कृपाण, वारें धर्मराज पर प्राण।
कर दानी, मनमानी ॥

अखिल बोलियों के भण्डार, विद्या के रस-रङ्ग-विहार,
भुवन-भारती के शृङ्गार, रहें सुरक्षित ग्रन्थागार।
कर दानी, मनमानी ॥

निकलें नये-नये अख़बार, पाठक पढ़ें विचार-विचार,
सब के कर्म, कुयोग, सुयोग, प्रकट करें सम्पादक लोग।
कर दानी, मनमानी ॥

जो सदर्थ का सार निचोड़, परखें पक्षपात को छोड़,
शुद्ध न्याय को करें प्रसिद्ध, बनें समालोचक वे सिद्ध।
कर दानी, मनमानी ॥

जिन के पास न राग, न रोष, सत्य कहें सब के गुण-दोष,
ऐसे भूतल-तिलक-प्रधान, विधि-निषेध का करें विधान।
कर दानी, मनमानी ॥

युक्तिवाद--पटु निर्भय वीर, धीर, महा मति अति गम्भीर,
कर्म-प्रवीण, कुलीन सपूत, परम-साहसी विचरें दूत।
कर दानी, मनमानी ॥

संवित्सागर परम सुजान, नीति-विशारद न्याय-निधान,
परहितकारी सत्कवि-राज, सब से हो संगठित समाज।
कर दानी, मनमानी ॥

न्यायाधीश बड़े पद पाय, करें ठीक मारालिक न्याय,
चाकर चलें न टेढ़ी चाल, खाय न चक्र घूँस का माल।
कर दानी, मनमानी ॥

लड़ें न ऊत अशिक्षित लोग, चलें न जाल भरे अभियोग,
प्रजा-पुरोहित वीर वकील, बनें न न्याय-विपिन के भील।
कर दानी, मनमानी ॥

हेल-मेल का बढ़े प्रचार, तजें प्रतारक अत्याचार,
सीख राज-पद्धति के मंत्र, प्रजा रहे सानन्द, स्वतंत्र।
कर दानी, मनमानी ॥

करे न कोप महासुर मोह, उठे न अधम राज-विद्रोह,
चलें न छल-भट के नाराच, पिये न रक्त प्रपञ्च-पिशाच।
कर दानी, मनमानी ॥

रहे न कोई भी परतंत्र, बनें न नीचों के षड्यंत्र,
वैर-फूट की लगे न लाग, मार-काट की जले न आग।
कर दानी, मनमानी ॥

चतुरङ्गिनी चमू कर कोप, करदे खल-मण्डल का लोप,
गरजें धीर-वीर घन-घोर, भागें प्रतिभट, वञ्चक, चोर।
कर दानी, मनमानी ॥

पकड़ें अस्त्र-शस्त्र रणजीत, वाधक दुष्ट रहें भयभीत,
जो कर सकें पराभव घोर, बने न वैसे करण-कठोर।
कर दानी, मनमानी ॥

राज-कर्म-पद्धति की चूक, जो कवि कह डाले दो टूक,
उसको मेरा चक्र-प्रचण्ड, छल से कभी न देवे दण्ड।
कर दानी, मनमानी ॥

सुख से एक बटोरे माल, एक रहे दुखिया कंगाल,
अपना कर ऐसे दो देश, मैं न कहाऊँ अन्ध नरेश।
कर दानी, मनमानी ॥

जिस आलस्य-दास के पास, दीर्घसूत्रता करे विलास,
ऐसे दल का दृश्य निहार, दूर रहें प्यारे परिवार।
कर दानी, मनमानी ॥

चाटुकार, बिट, षंढ, सपाट, भाँड़ भगतिये, भडुआ, भाट,
पाखंडी, खल, पिशुन, कलाल, सब का संग तजें कुल-पाल।
कर दानी, मनमानी ॥

ज्वारी, जार, बधिक, ठग, चोर, अधम, आततायी, कुलबोर,
लोलुप, लम्पट, लंठ, लबार, बढ़ें न ऐसे असुर असार।
कर दानी, मनमानी ॥

हिंसक लोग कृपालु कहाय, शुद्ध निरामिष भोजन पाय,
करें दुग्ध-घृत से तन पीन, कभी न मारें खग, मृग, मीन।
कर दानी, मनमानी ॥

करे कुमारी जिस की चाह, रचे उसी के साथ विवाह,
बँधे न बारे वर के साथ, बिके न बूढ़े नर के हाथ।
कर दानी, मनमानी ॥

धरें न मौर धनी बहु बार, रहें न वित्त विहीन कुमार,
करे न विधवा-वृन्द विलाप, बढ़े न गर्भ-पतन का पाप।
कर दानी, मनमानी ॥

ठगें न कुलटा के रस-रंग, करे न मादकता मतिभंग,
मायिक मत की लगे न छूत, कायर करें न कल्पित भूत।
कर दानी, मनमानी ॥

मात-पिता, गुरु, भूपति, मित्र, सिद्ध प्रसिद्ध, पवित्र चरित्र,
गण्य गुणी जन, धन्य धनेश, सबका मान करें सब देश।
कर दानी मनमानी ॥

ग्रन्थकार, कवि, कोविद, छात्र, अध्यापक, भट, साधु, सुपात्र,
चित्रकार, गायक, नट, धार, सबको मिला करें उपहार।
कर दानी, मनमानी ॥

जो जगदम्बा को उर धार, करें अलौकिक आविष्कार,
उन देवों के दर्शन पाय, पूजा करूँ किरीट झुकाय।
कर दानी, मनमानी ॥

जो निशङ्क नामी कविराज, आय निहारें राज-समाज,
करें प्रबन्धों के गुण—गान, वह पावे दरबारी दान।
कर दानी, मनमानी ॥

घटे न मङ्गल, पुण्य-प्रताप, बढ़े न पापजन्य परिताप,
भात्र सत्ययुग का भर जाय, कलियुग की नानी मर जाय।
कर दानी, मनमानी ॥

यों सामाजिक धर्म पसार, करूँ प्रजा पर पूरा-प्यार,
पकड़े न्याय-नीति का हाथ, विचरे दण्ड दया के साथ।
कर दानी, मनमानी ॥

नाना विधि विभाग, संयोग, दिव्य, दृश्य देखें सब लोग,
धरें सुकृति का सीता नाम, समझें मुझे दूसरा राम।
कर दानी, मनमानी ॥

क्या बकवाद किया बेजोड़, बस होली सिड़ियों की होड़,
धार मन्दभागी मुख मौन, तेरी सनक सुनेगा कौन।
कर दानी, मनमानी ॥
पाया घोर नरक में वास, बीते हायन हाय! पचास ॥
आ पहुँचा है अन्तिम काल, क्या होगा बन कर भूपाल।
कर दानी, मनमानी ॥
अब तो सब से नाता तोड़, बन्धन-रूप दुराशा छोड़,
रे! मन ज्ञान-सिन्धु के मीन, हो जा परम तत्व में लीन।
कर दानी, मनमानी ॥

वेदान्त-विलास

(दोहा)

भगवद्गीता में मिला, सदुपदेश का सार।
क्यों न कहें श्रीकृष्ण को, गौरव का अवतार ॥

(+ गीत)

बाँके विहारी की बाजी बँसुरिया।
वंशी की तानें सुनें सारी सखियाँ,
साड़ी सजें धौरी, काली सिंदुरिया।
बाँके विहारी की बाजी बँसुरिया ॥

+ इस गीत के शब्दों पर विशेष ध्यान न देकर केवल भावार्थ पर गहरी गवेषणा पूर्वक विचार कीजिये। वेदान्त है, बोरे की बड़ न समझिये। (पद्मराज)

देखे दिखावे जिसे रास रसिया,
फोड़े उसी की रसीली कमुरिया।
बाँके विहारी की बाजी बँसुरिया॥

सोवे न, जागे न, देखे न सपना,
प्यारी की चौथी अवस्था है तुरिया।
बाँके विहारी की बाजी बँसुरिया॥

माया के धागे में मनके पिरोये,
न्यारा नहीं कोई माला से गुरिया।
बाँके विहारी की बाजी बँसुरिया॥

सत्ता पखुरियों में फूलों की फूली,
फूलों की सत्ता में पाई पखुरिया।
बाँके विहारी की बाजी बँसुरिया॥

राजा कहाता है जो सारे व्रज का,
ऊधो, उसे कैसे माने मथुरिया।
बाँके विहारी की बाजी बँसुरिया॥

टेढ़ी न भावे त्रिभंगी ललन को,
सीधी करी शंकरा-सी कुबरिया।
बाँके विहारी की बाजी बँसुरिया॥

———

प्रेमी पंच का प्रेमोद्गार

(दोहा)

गीता में जिन के सुने, परम ज्ञान के गीत।
क्या वे कृष्ण समाज से, चलते थे विपरीत॥

(गीत)

अब तो बने द्वारकाधीश,
श्रीजगदीश कहाने वाले।
सर्वाधार, विशुद्ध, अकाय, उतरे बन्दीगृह में आय,
जन्मे पुत्र-भाव अपनाय, ऊँचा पितु-पद पाने वाले।
अ० ब० द्वा० श्री० कहाने वाले॥
निर्गुण सत्ता को न विसार, प्रकटे द्रव्य गुणों का धार,
विचरे नर-लीला विस्तार, उमगे खेल खिलाने वाले।
अ० ब० द्वा० श्री० कहाने वाले॥
पुण्यश्लोक, अखण्ड-प्रताप, करते प्यारे कर्म-कलाप,
नाचे व्रज-मण्डल में आप, सब को नाच नचाने वाले।
अ० ब० द्वा० श्री० कहाने वाले॥
जितने उठते डाकू चोर, उनको देते दण्ड कठोर,
देखें आप न अपनी ओर, माखन-छाछ चुराने वाले।
अ० ब० द्वा० श्री० कहाने वाले॥
विजयी जाने सब संसार, जड़धी-जरासन्धि से हार,
भागे भूल विजय व्यापार, रण में पीठ दिखाने वाले।
अ० ब० द्वा० श्री० कहाने वाले॥

बनिता रही स्वकीया संग, परखे परकीया के अङ्ग,
मारा मार किया रस भंग, रीझे रसिक रिझाने वाले।
अ० ब० द्वा० श्री० कहाने वाले ॥

प्यारे ब्रज का वास विहाय, प्रभु सौराष्ट्र-द्वीप में जाय,
महिमा महाराजों की पाय, चकमे धेनु चराने वाले।
अ० ब० द्वा० श्री० कहाने वाले ॥

जीता जगती-खण्ड विशाल, दीनानाथ नहीं अब ग्वाल,
निर्भय बन बैठे भूपाल, वन में वेणु बजाने वाले।
अ० ब० द्वा० श्री० कहाने वाले ॥

आकर मिला सुदामा यार, पूजा कर स्वागत सत्कार,
दानी बने दयालु उदार, तण्डुल चाव चबाने वाले।
अ० ब० द्वा० श्री० कहाने वाले ॥

सोंपा अर्जुन को उपदेश बण्टाढार किया सब देश,
कतरे सर्व-नाश के केश, जय सद्धर्म बढ़ाने वाले।
अ० ब० द्वा० श्री० कहाने वाले ॥

कल्पित भेद-हीन के भेद, यद्यपि नहीं बताते वेद,
तो भी मिलते अन्तरच्छेद, सब में श्याम समाने वाले।
अ० ब० द्वा० श्री० कहाने वाले ॥

प्यारे भावुक भक्त सुजान, आओ करो प्रेम-रस-पान,
मूँदे मन्दिर में भगवान, शंकर भोग लगाने वाले।
अ० ब० द्वा० श्री० कहाने वाले ॥

———

आर्य्य पंच की आल्हा

(दोहा)

वीर न होगा दूसरा, श्रीब्रजराज समान ।
आल्हा ऊदल आदि के, कौन करे गुण-गान ॥

(वीर छन्द)

हे ! वैदिक दल के नर नामी, हिन्दू-मण्डल के करतार ।
स्वामि सनातन सत्य धर्म के, भक्ति-भावना के भरतार ॥
सुत वसुदेव, देवकीजी के, नन्द-यशोदा के प्रिय लाल ।
चाहक चतुर रुक्मिणीजी के, रसिक-राधिका के गोपाल ॥

(२)

मुक्त, अकाय बने तन-धारी, श्रीपति के पूरे अवतार ।
सर्व सुधार किया भारत का, कर सब शूरों का संहार ॥
ऊँचे अगुआ यादव-कुल के, वीर अहीरों के सिरमौर ।
दुविधा दूर करो द्वापर की, ढालो रङ्ग-ढङ्ग अब और ॥

(३)

भड़क भुला दो भूतकाल की, सजिये वर्तमान के साज ।
फ़ैशन फेर इण्डया भर के, गोरे गॉड बनो ब्रजराज ॥
गौर वर्ण वृषभानु-सुता का, काढ़ो, काले तन पर तोप ।
नाथ ! उतारो मोर-मुकुट को, सिर पै सजो साहिबी टोप ॥

(४)

पौडर चन्दन पोंछ, लपेटो, आनन की श्री ज्योति जगाय ।
अंजन अँखियों में मत आँजो, आला ऐनक लेहु लगाय ॥

रत्न-धर कानों में लटका लो, कुण्डल काढ़. मेकराफून ।
तज पीताम्बर, कम्बल काला, डाटो कोट और पतलून ॥

(५)

पटक पादुका, पहनो प्यारे, बूट इटाली का लुकदार ।
डालो डबल वाच पाकट में, चमकें चेन कंचनी चार ॥
रख दो गाँठ गठीली लकुटी, छाता, बेंत बग़ल में मार ।
मुरली तोड़ मरोड़ बजाओ, बाँकी बिगुल सुने संसार ॥

(६)

फरिया चीर फाड़ कुबरी को, पहनालो पँचरंगी गौन ।
अबलक़ लेडी लाल तिहारी, कहिये और बनेगी कौन ॥
मुँदना नहीं किसी मन्दिर में, काटो होटल में दिन-रात ।
पर नजखौआ ताड़ न जावें, बढ़िया खान, पान की बात ॥

(७)

वैनतेय तज व्योम-यान पै, करिये चारों ओर विहार ।
फक-फक फूँ-फूँ फूँको चुरटें, उगलें गाज़ धुआँ की धार ॥
यों उत्तम पदवी फटकारो, माधो मिस्टर नाम धराय ।
बाँटो पदक नई प्रभुता के, भारत जाति-भक्त हो जाय ॥

(८)

कह दो सुबुध विश्वकर्मा से, रच दे ऐसा हॉल विशाल ।
जिस पै गरमी, नरमी वारे, काँगरेस-कुल की पण्डाल ॥
सुर, नर, मुनि, डेलीगेटों को, देकर नोटिस, टेलीग्राम ।
नाथ, बुलालो, उस मण्डप में, बैठें जेंटिलमैन तमाम ॥

(९)

उमगें सभ्य सभासद् सारे, सर्वोपरि यश पावें आप।
दर्शक रसिक तालियाँ पीटें, नाचें मंगल, मेल, मिलाप॥
जो जन विविध बोलियाँ बोले, टर्रीली गिट-पिट को छोड़।
रोको उस गोबरगणेश को, करे न सर-भाषाकी होड़॥

(१०)

वेद-पुराणों पर करते हैं, आरज-हिंदू वाद-विवाद।
कान लगा कर सुनलो स्वामी, सब के कूट-कटीले नाद॥
दोनों के अभिलषित मतों पै, बीच सभा में करो विचार।
सत्य-झूठ किसका कितना है, ठीक बतादो न्याय पसार॥

(११)

जगदीश्वर ने वेद दिये हैं, यदि विद्या-बल के भंडार।
उनके ज्ञाता हाय! न करते, तो भी अभिनव आविष्कार॥
समझादो वैदिक सुजनों को, उत्तम कर्म करें निष्काम।
जिनके द्वारा सब सुख पावें, जीवित रहें कल्प लों नाम॥

(१२)

निपट पुराणों के अनुगामी, ऊलें निरखो इनकी ओर।
निडर आप को भी कहते हैं, नर्त्तक, जार, भगोड़ा, चोर॥
प्रति दिन पाठ करें गीता के, गिनते रहें रावरे नाम।
पर हा! मन मौजी मतवाले, बनते नहीं धर्म के धाम॥

(१३)

कलुष, कलंक कमाते हैं जो, उन को देते हैं फल चार।
कहिये, इन तीरथ, देवों के, क्यों न छीनते हो अधिकार॥
यों न किया तो डर न सकेंगे, डाँकू उदरासुर के दास।
अधम, अनारी, नीच, करेंगे, मनमाने सानन्द विहार॥

(१४)

वैदिक पौराणिक पुरुषो में, टिके टिकाऊ मेल-मिलाप।
गैल गहें अगले अगुओं की इतनी कृपा कीजिये आप॥
जिस विधि से उन्नत हो बैठे, यूरुप, अमरीका, जापान।
विद्या, बल, प्रभुता, उन की-सी, दो भारत को भी भगवान॥

(१५)

युक्ति-वाद से निपट निराली, सुनलो वीर अनूठी बात।
इस का भेद न पाया अब लों, है अवितर्क विश्व-विख्यात॥
योग विना क्वारी मरियम ने, कैसे जने मसीह सपूत।
कैसे शक्कुलक़मर कहाया, छाया रहित ख़ुदा का दूत॥

(१६)

इस घटना की संभवता को, कहिये तर्क तुला पै तोल।
गड़बड़ है तो खोल दीजिये, ढिल्लड़ ढोंग-ढोल की पोल॥
यह प्रस्ताव और भी सुनलो, उत्तर ठीक बतादो तीन।
किस प्रकार से फल देते हैं, केवल कर्म चेतना-हीन॥

(१७)

देव, आदि के अधिवेशन में, पूरे करना इतने काम।
हिप-हिप-हुर्रों के सुनते ही, खाना टिफ़न पाय आराम॥
झंझट-झगड़े मतवालों के, जानो सब के खण्ड विभाग।
तीन चार दिन की बैठक में, करदो संशोधन बेलाग॥

(१८)

बनिये गौर श्यामसुन्दरजी, ताक रहे हैं दर्शक दीन।
हमको नहीं हँसाना बन के, बाघ, वितुण्डो, कछुआ, मीन॥
धार सामयिक नेतापन को, दूर करो भूतल का भार।
निष्कलंक अवतार कहेंगे, शंकर सेवक बारम्बार॥

पञ्च-पुकार

(दोहा)

बैठे सण्ठ-समाज में, पाकर उन्नत-मञ्च।
यों पुकारते हैं सुनो, परम प्रतापी पञ्च॥

(पञ्चास्य छन्द)

पञ्चशरघ्न, पुरघ्न पिनाकी, पञ्चानन, पशुराज।
पाँच प्रचण्ड नाम शङ्कर के, पञ्चनाद इव आज॥
उछल ऊँचा उचारूँगा।
किसी से कभी न हारूँगा॥

बुध विद्या-वारिधि गुरु ज्ञानी, मेरे वासर-सूर।
उन का-सा अभिमानी मन है, मेरा भी भरपूर॥
उलझने को झिंगारूँगा।
किसी से कभी न हारूँगा॥

फागुन का फल फाग फबीला, फूला ऐप्रिल फूल।
दो गुण गटक दुलत्ती मारूँ, हाँकूँ अन्ध उसूल॥
तीसरी आँख उघारूँगा।
किसी से कभी न हारूँगा॥

चुस्त पजामा, ढिलमिल जामा, सजे साहिबी टोप।
तार्के तसलीमुल फ़ैशन को, मियाँ, पुजारी, पोप॥
नक़ल ओछी न उतारूँगा।
किसी से कभी न हारूँगा॥

चूनरि चीर, फाड़दी फरिया, पहना लाया गौन।
लेडी-पक्ष ब्लैक दुलहिन को, दाद न देगा कौन॥
प्रिया के पैर पखारूँगा।
किसी से कभी न हारूँगा॥

सुन-सुन मेरे शब्द, बोलियाँ, चौंक पड़ें चण्डूल।
पर जो हिन्दू कथन करेगा, हिन्दी के प्रतिकूल॥
उसे धमका धिक्कारूँगा।
किसी से कभी न हारूँगा॥

इँगलिश डाग, नागरी गेंडा, उरदू दुम्बा तीन।
निकलें पेपर, पत्र, रिसाले, मेरे रहें अधीन॥

केहरी-सा धदकारूँगा।
किसी से कभी न हारूँगा॥
उरदू के बेनुक्त. रक़मचे, लिखूँ क़ाबिले दीद।
बीनी ख़ुद बुरीद को पढ़लो, बेटी जोद यज़ोद॥
चुनीदा नस्र गुज़ारूँगा।
किसी से कभी न हारूँगा॥
जिस मण्डल में मतवालों का, उफनेगा उन्माद।
मैं भी उस दल में करने को, बेहूदा बकवाद॥
विना पाथेय पधारूँगा।
किसी से कभी न हारूँगा॥
जिस के तर्क-जलधि में डूबे, मत-पन्थों के पोत।
उसके सत्यामृतप्रवाह का, क्यों न बहेगा सोत॥
बनूँगा मीन मझारूँगा।
किसी से कभी न हारूँगा॥
भूला गिरिजा, गिरिजापति को, मैं गिरजा में जाय।
समझा सद्‌गुण गॉड-पुत्र के, गोरी प्रभुता पाय॥
श्याम-कुल को उद्धारूँगा।
किसी से कभी न हारूँगा॥
फड़क फूट कर फुट्टेलों में, फूल फली है फूट।
भेद-भक्त भट-मण्डल मेरा, क्यों न करेगा लूट॥
पुजे पूजा न विसारूँगा।
किसी से कभी न हारूँगा॥

ठेके पर लेकर वैतरणी, देकर डाढ़ी-मूँछ।
वाटर-बायसिकिल के द्वारा, बिना गाय की पूँछ॥
मरों को पार उतारूँगा।
किसी से कभी न हारूँगा॥

जाति-पाँति के विकट जाल में, जूझें फँसे गमार।
मैं अब सब को सुलझा दूँगा, कर के एकाकार॥
महा सद्धर्म प्रचारूँगा।
किसी से कभी न हारूँगा॥

रसिक रहूँगा राजभक्ति का, बैठ प्रजा की ओर।
बाँध बधिक विद्रोही-दल को, दूँगा दण्ड कठोर॥
खटकतों को संहारूँगा।
किसी से कभी न हारूँगा॥

गोरे गुरु-गण की ख़ातिर में, ख़रच करूँगा दाम।
दमकेगा दुमदार सितार, बनके जगनू नाम॥
ख़िताबों को फटकारूँगा।
किसी से कभी न हारूँगा॥

लण्डन में कर वास बना हूँ, बैरिस्टर कर पास।
घेर मुवक्किल घटिया से भी, लूँगा नक़द पचास॥
बड़प्पन को विस्तारूँगा।
किसी से कभी न हारूँगा॥

जग में जीवन-भर भोगूँगा, मन माने सुख भोग।
परम रङ्क महँगी के मारे, प्राण तजें लघु लोग॥

उन्हें तोभी न निहारूँगा।
किसी से कभी न हारूँगा॥
यदि आगे अब से भी बढ़िया, दारुण पड़े दुकाल।
तो जड़ जम जावे उन्नति की, थलके तोंद विशाल॥
प्रतिष्ठा के, फल धारूँगा।
किसी से कभी न हारूँगा॥
प्रति मुद्रा पर एक टका से, कम न करूँगा ब्याज।
धन-कुबेर का मान मिटादूँ, लाद ब्याज पर ब्याज॥
ग़रीबों के घर जारूँगा।
किसी से कभी न हारूँगा॥
पढ़ बन्देमातरम करेंगे, सौदा सब दल्लाल।
तिगुनी दर लेकर बेचूँगा, निरा विदेशी माल॥
स्वदेशी जाल पसारूँगा।
किसी से कभी न हारूँगा॥
इतने पुतलीघर खोलूँगा, बन कर मालामाल।
जिनको पूरी मिल न सकेगी, पामर-कुल की खाल॥
दही में मूसल मारूँगा।
किसी से कभी न हारूँगा॥
प्रथम महत्ता के मन्दिर पै, सुयश-पताका गाढ़।
फिर फूटे लघुता के घर में, दबक दिवाला काढ़॥
रक़म औरों की मारूँगा।
किसी से कभी न हारूँगा॥

मदिरा, खजुरी, भंग, कसूमा, आसव, सर्व समान।
इन पवित्र मादक द्रव्यों का, कर पंचामृत पान॥
नशीली बात विचारूँगा।
किसी से कभी न हारूँगा॥

जिस में वीरों की अभिरुचि का, चल न सकेगा खोज।
ऐसा कहीं मिला यदि मुझको, कण्टक-कुल का खोज॥
सुखानन्दी न जुठारूँगा।
किसी से कभी न हारूँगा॥

जिसने निगला धन्वन्तरि के, अमृत-कुम्भ का मोल।
उस मदमाती डाकटरी की, बढ़िया बोतल खोल॥
पिऊँगा जीवन वारूँगा।
किसी से कभी न हारूँगा॥

जो जगदीश बनादे मुझको, अनथक थानेदार।
तो छल छोड़ धर्म-सागर में, गहरी चूबक मार॥
अकड़ के अङ्ग निखारूँगा।
किसी से कभी न हारूँगा॥

यद्यपि मुझको नहीं सुहाते, वैदिक दल के कर्म।
ठाठ बदलता हूँ अब तो भी, धार सनातन धर्म॥
इसी से जन्म सुधारूँगा।
किसी से कभी न हारूँगा॥

पास करूँगा कुल-पद्धति के, परमोचित प्रस्ताव।
हाँ पर कभी नहीं बदलूँगा, मैं गुण, कर्म, स्वभाव॥

गपोड़े मार बगारूँगा।
किसी से कभी न हारूँगा॥
बालक उपजेंगे नियोग की, अब न रुकेगी राह।
अक्षत-योनि बाल-विधवा से, अवस करूँगा ब्याह॥
पक्के पेठे न बनारूँगा।
किसी से कभी न हारूँगा॥
नई चाल के गुरुकुल खोलूँ, फाँस फ़ीस के फन्द।
निरख-परख दाता पावेंगे, दिव्य दर्शनानन्द॥
पुरानी रीति बिसारूँगा।
किसी से कभी न हारूँगा॥
अगुआ बनूँ जेल में पड़ के, निकलूँ पिण्ड छुड़ाय।
बैठ-बैठ कर नर-यानों पै, पटपट पूजा पाय॥
हुमक हूँ-हूँ हुंकारूँगा।
किसी से कभी न हारूँगा॥
गरजूँगा क़ौमी मजलिस में, गरमी-नरमी पाय।
सूरत नहीं बिगड़ने दूँगा, लात-लीतड़े खाय॥
लीडरों को ललकारूँगा।
किसी से कभी न हारूँगा॥
यदि चौमुख बाबा की बिटिया, बनी रही अनुकूल।
तो तुक्कड़ समझेंगे मुझ को, कविताऽरण्य-बबूल॥
कटीला पाल पसारूँगा।
किसी से कभी न हारूँगा॥

आठ-बटा-अट्ठावन पढ़लो, पाठक पञ्च-पुकार।
जो मृदु मुख लिक्खाड़ लिखेगा, इस का उपसंहार।
उसे दे दाद दुलारूँगा।
किसी से कभी न हारूँगा॥

———

रंक-रोदन

(रौला छन्द)

क्या शंकर प्रतिकूल, काल का अन्त न होगा।
क्या शुभ गति से मेल, मृत्यु पर्य्यन्त न होगा॥
क्या अब दुःख-दरिद्र, हमारा दूर न होगा।
क्या अनुचित दुर्दैव, कोप कर्पूर न होगा॥

(२)

हो कर मालामाल, पिता ने नाम किया था।
मैं ने उन के साथ, न कोई काम किया था॥
विद्या का भरपूर, इष्ट अभ्यास किया था।
पर औरों की भाँति, न कोई पास किया था॥

(३)

उद्यम की दिन-रात, कमान चढ़ी रहती थी।
यश के सिर पै वर्ण, उपाधि मढ़ी रहती थी॥
कुल-गौरव की ज्योति, अखण्ड जगी रहती थी।
घर पै भिक्षुक-भीड़, सदैव लगी रहती थी॥

(४)

जीवन का फल शुद्ध, पूज्य पितु पाय चुके थे।
कर पूरे सब काम, कुलीन कहाय चुके थे॥
सुन्दर स्वर्ग समान, विलास विसार चुके थे।
हा! हम उन का अन्त, अनन्त निहार चुके थे॥

(५)

बाँध जनक की पाग, बना मुखिया घर का मैं।
केवल परमाधार, रहा कुनबे भर का मैं॥
सुख से पहली भाँति, निरङ्कुश रहता था मैं।
घर का देख बिगाड़, न कुछ भी कहता था मैं॥

(६)

जिनका सञ्चित कोश, खिला कर खाया मैंने।
करके उन की होड़, न द्रव्य कमाया मैंने॥
अटका हेकड़ ह्रास, नहीं पहचाना मैंने।
घटती का परिणाम, कठोर न जाना मैंने॥

(७)

चेते चाकर चोर, पुरानी बान बिगाड़ी।
दिया दिवाला काढ़, बनी दूकान बिगाड़ी॥
आये दाम चुकाय, बड़ों की बात बिगाड़ी।
छोड़ धर्म का पन्थ, प्रथा विख्यात बिगाड़ी॥

(८)

अटके डिगरीदार, दया कर दाम न छोड़े।
छीन लिये धन-धाम, ग्राम अभिराम न छोड़े॥
बासन बचा न एक, विभूषण-वस्त्र न छोड़े।
नाम रहा निरुपाधि, पुलिस ने शस्त्र न छोड़े॥

(९)

न्याय-सदन में जाय, दरिद्र कहाय चुका हूँ।
सब देकर इन्सालवेण्ट पद पाय चुका हूँ॥
अपने घर की आप, विभूति उड़ाय चुका हूँ।
पर संकट से हाय, न पिण्ड छुड़ाय चुका हूँ॥

(१०)

बैठ रहे मुख मोड़, निरन्तर आने वाले।
सुनते नहीं प्रणाम, लूट कर खाने वाले॥
उगल रहे दुर्वाद, बड़ाई करने वाले।
लड़ते हैं बिन बात, अड़ी पै मरने वाले॥

(११)

कविता सुने न लोग, न नामी कवि कहते हैं।
अब न विज्ञ, विज्ञान, व्योम का रवि कहते हैं॥
धर्म-धुरन्धर धीर, न बन्दीजन कहते हैं।
मुझ को सब कंगाल, धनी निर्धन कहते हैं॥

(१२)

हाय ! विरद विख्यात, आज विपरीत हुआ है।
मन विशुद्ध निश्शंक, महा भयभीत हुआ है॥
कुल दरिद्र की मार, सहे रस भङ्ग हुआ है।
जीवन का मग देख, सदाशिव तङ्ग हुआ है॥

(१३)

प्रतिभा को प्रतिवाद, प्रचण्ड पछाड़ चुका है।
आदर को अपमान, कलंक लताड़ चुका है॥
पौरुष का सिर नीच, निरुद्यम फोड़ चुका है।
विपद हर्ष का रक्त, विशाद निचोड़ चुका है॥

(१४)

दरसे देश उदास, जाति अनुकूल नहीं है।
शत्रु करें उपहास, मित्र सुख मूल नहीं है॥
अनुचित नातेदार, कहें कुछ मेल नहीं है।
रूँठ रहे सब लोग, सुमति का खेल नहीं है॥

(१५)

मंगल का रिपु घोर, अमङ्गल घेर रहा है।
विषम त्रास के बीज, विनाश बखेर रहा है॥
दीन-मलीन कुटुम्ब, कुगति को कोस रहा है।
सब के कण्ठ अदम्य, दरिद्र मसोस रहा है॥

(१६)

दुखड़ों की भरमार, यहाँ सुख-साज नहीं है।
किस का गोरस-भात, मुठीभर नाज नहीं है॥
भटकें चिथड़े धार, धुला पट पास नहीं है।
कुनबे-भर में कौन, अधीर उदास नहीं है॥

(१७)

मक्की, मटरा, मौठ, भुनाय चबा लेते हैं।
अथवा रूखे रोट, नमक से खा लेते हैं॥
सत्तू, दलिया, दाल, पेट में भर लेते हैं।
गाजर, मूली पाय, कलेवा कर लेते हैं॥

(१८)

बालक चोखे खान, पान को अड़ जाते हैं।
खेल-खिलौने देख, पिछाड़ी पड़ जाते हैं॥
वे मनमानी वस्तु, न पाकर रो जाते हैं।
हाय हमारे लाल, सुबकते सो जाते हैं॥

(१९)

सिर से संकट-भार, उतार न लेगा कोई।
मुझ को एक छदाम, उधार न देगा कोई॥
करुणा-सागर वीर, कृपा न करेगा कोई।
हम दुखियों के पेट, न हाय भरेगा कोई॥

(२०)

फूल-फूल कर फूल, फली-फल खाने वाले।
व्यञ्जन, पाक, प्रसाद, यथारुचि पाने वाले॥
गोरस, आदि अनेक, पुष्ट रस पीने वाले।
हाय हुए हम शाक, चनों पर जीने वाले॥

(२१)

घर में कुरते, कोट, सलूके सिल जाते हैं।
उजरत के दो चार, टके यों मिल जाते हैं॥
जब कुछ पैसे हाथ, शाम तक आ जाते हैं।
तब उनका सामान, मँगा कर खा जाते हैं॥

(२२)

लड़के लकड़ी बीन, बीन कर ला देते हैं।
ईंधन-भर का काम, अवश्य चला देते हैं॥
वृद्ध चचा जल डोल, घड़ों से भर देते हैं।
माँग-माँग कर छाछ, महेरी कर देते हैं॥

(२३)

ठाकुरजी का ठौर, मँगनू माँग लिया है।
छोटा-सा तिरपाल, पुराना टाँग लिया है॥
गूदड़ बोरे बेच, उसारा छवा लिया है।
केवल कोठा एक, दुबारा दबा लिया है॥

(२४)

छप्पर में बिन बाँस, घुने एरण्ड पड़े हैं।
बरतन का क्या काम, घड़ों के खण्ड पड़े हैं॥
खाट कहाँ दस-बीस, फटे से टाट पड़े हैं।
चकिया की भिड़ फोड़, पटीले पाट पड़े हैं॥

(२५)

सरदी का प्रतियोग, न उष्ण विलास मिलेगा।
गरमी का प्रतिकार, न शीतल वास मिलेगा॥
घेर रही बरसात, न उत्तम ठौर मिलेगा।
हा! खँडहर को छोड़, कहाँ घर और मिलेगा॥

(२६)

बादल केहरि-नाद, सुनाते बरस रहे हैं।
चहुँ दिस विद्युद्दृश्य, दौड़ते दरस रहे हैं॥
निगल छत्त के छेद, कीच-जल छोड़ रहे हैं।
इन्द्रदेव गढ़ घोर, प्रलय का तोड़ रहे हैं॥

(२७)

दिया जले किस भाँति, तेल को दाम नहीं है।
अटके मच्छर-डाँस, कहीं आराम नहीं है॥
फिसल पड़े दीवार, यहाँ सन्देह नहीं है।
कर दे पनियाँढाल, नहीं तो मेह नहीं है॥

(२८)

बीत गई अब रात, महा तम दूर हुआ है।
संकट का कुल हाय, न चकनाचूर हुआ है॥
आज भयंकर रुद्र, रूप उपवास हुआ है।
हा ! हम सबका घोर, नरक में वास हुआ है॥

(२९)

लड़ते हैं मत-पन्थ, परस्पर मेल नहीं है।
सत्य सनातन धर्म, कपट का खेल नहीं है॥
सुबुध साधु-सत्कार, कहीं अवशिष्ट नहीं है।
ठगियों में मिल माल, उचकना इष्ट नहीं है॥

(३०)

जैसे भारत-भक्त, धर्मधारी मिस्टर हैं।
थानेदार, वकील, डाक्टर बैरिस्टर हैं॥
वैसे उन की भाँति, प्रतिष्ठा पा सकते हैं।
क्या यों मुझ-से रङ्क, कमाई खा सकते हैं॥

(३१)

वैदिक दल में दान, मान कुछ भी न मिलेगा।
पौन पाव प्रतिवार, हवन को घी न मिलेगा॥
मुनि-महिमालङ्कार, महा गौरव न मिलेगा।
भोजन-वस्त्र समेत, गया वैभव न मिलेगा॥

(३२)

बपतिस्मा सकुटुम्ब, विशप से ले सकता हूँ ।
धन्यवाद प्रभु गॉड, तनय को दे सकता हूँ ।।
धन-गौरव-सम्पन्न, पुरोहित हो सकता हूँ ।
पर क्या अपना धर्म, पेट पर खो सकता हूँ ।।

(३३)

सामाजिक बल पाय, फूल-सा खिल सकता हूँ ।
योग-समाधि लगाय, ब्रह्म से मिल सकता हूँ ।।
शुद्ध सनातनधर्म, ध्यान में धर सकता हूँ ।
हा! बिन भोजन-वस्त्र, कहो क्या कर सकता हूँ ।।

(३४)

देश-भक्ति का पुण्य, प्रसाद पचा सकता हूँ ।
विज्ञापन से दाम, कमाय बचा सकता हूँ ।।
लोलुप लीला भाँति, भाँति की रच सकता हूँ ।
फिर क्या मैं कापट्य, पाप से बच सकता हूँ ।।

(३५)

जो जगती पर बीज, पाप के बो न सकेगा ।
जिस का सत्य विचार, धर्म को खो न सकेगा ।।
जो विधि के विपरीत, कुचाली हो न सकेगा ।
वह कंगाल कुलीन, सदा यों रो न सकेगा ।।

(३६)

आज अधम आलस्य, असुर से डरना छोड़ा।
उद्यम को अपनाय, उपाय न करना छोड़ा॥
मन में भय-संकोच, अमंगल भरना छोड़ा।
अन्न मिला भरपेट, क्षुधातुर मरना छोड़ा॥

निदाघ-निदर्शन

(दोहा)

काढ़े प्राण कुरङ्ग, के जिस प्रकार से बाघ।
वैसा ही रिपु शीत का, अटका उग्र निदाध॥

(अष्टपदी छन्द)

बीते दिन वसन्त ऋतु भागी, गरमी उग्र कोप कर जागी।
ऊपर भानु प्रचण्ड प्रतापी, भूपर भबके पावक पापी॥
आतप, वात मिले रस रूखे, झावर, झील, सरोवर सूखे।
जिन पूरी नदियों में जल है, उन में भी काँदा दलदल है॥

(२)

अवनी-तल में तीत नहीं है, हिमगिरि पै भी शीत नहीं है।
पूरा सुमन-विकास नहीं है, और लहलही घास नहीं है।
गरम-गरम आँधी आती हैं, भुलभुल बरसाती जाती हैं।
झाँखर, झाड़, रगड़ खाते हैं, आग लगे वन जलजाते हैं॥

(३)

लपकें लट लूँ लहराती हैं, जल-तरङ्ग-सी थहराती हैं।
तृषित कुरङ्ग वहाँ आते हैं, पर न बूँद वन की पाते हैं॥
सूख गई सुखदा हरियाली, हा! रस-हीन रसा कर डाली।
कुतल जवासों के न जले हैं, फूल-फूल कर आक फले हैं॥

(४)

पावक-बाण दिवाकर मारे, हा! बड़वानल फूँक पजारे।
खौल उठे नद, सागर सारे, जलते हैं जलजन्तु बिचारे॥
भानु-कृपा न कढ़े वसुधा से, चन्द्र न शीतल करे सुधा से।
धूप हुताशन से क्या कम है, हाय! चाँदनी रात गरम है॥

(५)

जंगल गरमी से गरमाया, मिलती कहीं न शीतल छाया।
घमस घुसी तरु-पुंजों में भी, निकले भबक निकुंजों में भी॥
सुन्दर वन, आराम घने हैं, परम रम्य प्रासाद बने हैं।
सब में उष्ण ब्यार बहती है, घाम, घमस घेरे रहती है॥

(६)

फलने को तरु फूल रहे हैं, पकने को फल भूल रहे हैं!
पर जब घोर घर्म पाते हैं, सब के सब मुरझा जाते हैं॥
हरि-मृग प्यासे पास खड़े हैं, भूले नकुल-भुजंग पड़े हैं।
कङ्क, शचान, कबूतर, तोते, निरखे एक पेड़ पर सोते॥

(७)

विधि, यदि वापी, कूप, न होते, तो क्या हम सब जीवन खोते।
पर पानी उन में भी कम है, अब क्या करें नाक में दम है॥
कभी-कभी घन रुप जाता है, वृषारूढ़ रवि छुपजाता है।
जो जल बादल से झड़ता है, तो कुछ काल चैन पड़ता है॥

(८)

हरित बेलि, पौधे मन भाये, बेंगन, काशीफल, फल पाये।
खरबूजे, तरबूजे, ककड़ो, सब ने टाँग पित्त की पकड़ी॥
इमली के विधु-बाल कटारे, आम अपक्क लुकाट गुदारे।
सरस फालसे श्यामल दाने, ये सब ने सुख-साधन जाने॥

(९)

व्यंजन, ओदन आदि हमारे, पेट न भर सकते हैं सारे।
गरम रहें जो कम खाते हैं, रखदें तो बम बुस जाते हैं॥
चन्दन में घनसार घिसाया, पाटल-पुष्प-पराग पिसाया।
ऐसा कर परिधान बसाये, वे भी वसन विदाहक पाये॥

(१०)

दीपक-ज्योति जहाँ जगती है, चमक चंचला-सी लगती है।
व्याकुल हम न वहाँ जाते हैं, जाकर क्या कुछ कर पाते हैं॥
ग्राम-ग्राम प्रत्येक नगर में, घूमें घोर ताप घर-घर में।
रुद्र-रोष-दिनकर के मारे, तड़प रहे नर-नारी सारे॥

(११)

भीतर-बाहर से जलते हैं, अकुलाकर पंखे झलते हैं।
स्वेद बहे तन डूब रहे हैं, घबराते मन ऊब रहे हैं ॥
काल पड़ा नगरों में जलका, मोल मिले उष्णोदक नल का।
वह भी कुछ घण्टों बिकता है, आगे तनक नहीं टिकता है ॥

(१२)

पान करें पाचक जल जीरा, चखते रहें फुलाय कतीरा।
बरफ़ गलाय छने ठंडाई, ओषधि पर न प्यास की पाई ॥
बँगलों में परदे खस के हैं, बार-बार रस के चसके हैं।
सुखिया सुख-साधन पाते हैं, इतने पर भी अकुलाते हैं ॥

(१३)

अकुला कर राजे-महाराजे, गिरि-शृङ्गों पर जाय विराजे।
धूलि उड़ाय प्रजा के धन की, रक्षा करते हैं तन-मन की ॥
जितने बकुला बैरिस्टर हैं, वीर-बहादुर हैं मिस्टर हैं।
सुख से कमरों में रहते हैं, गरजें तो गरमी सहते हैं ॥

(१४)

गोरे गुरुजन भोग-विलासी, बहुधा बने हिमालय वासी।
कातिक तक न यहाँ न आते हैं, वहीं प्रचुर वेतन पाते हैं ॥
निर्धन घबराते रहते हैं, घोर ताप संकट सहते हैं।
दिन भर मुड़ बोझे ढोते हैं, तब कुछ खा-पीकर सोते हैं ॥

(१५)

खलियानों पर दायँ चलाना, फिर अनाज-भूसा बरसाना।
पूरा तप किसान करते हैं, तो भी उदर नहीं भरते हैं॥
हलवाई, भुरजी, भटियारे, सौनी, भगत, लुहार बिचारे।
नेक न गर्मी से डरते हैं, अपने तन फूँका करते हैं॥

(१६)

हा! बॉयलर की आग पजारे, झपटे झाय लपक लूँ मारे।
उड़ती भूभल फाँक रहे हैं, जलते इञ्जन हाँक रहे हैं॥
भानु-ताप उपजावे जिसको, वह ज्वाला न जलावे किसको।
व्याकुल जीव-समूह निहारे, हाय! हुताशन से सब हारे॥

(१७)

जेठ जगत को जीत रहा है, काल विदाहक बीत रहा है।
भबक भबूके मार रहे हैं, हाय! हाय! हम हार रहे हैं॥
पावक-बाण प्रचण्ड चले हैं, पञ्च-राज भी बहुत जले हैं।
बादल को अवलोक रहे हैं, गरमी की गति रोक रहे हैं॥

(१८)

जब दिन पावस के आवेंगे, वारि बलाहक बरसावेंगे।
तब गरमी नरमी पावेगी, कुछ तो ठण्डक पड़ जावेगी॥
भाट बने कालानल-रवि का, ऐसा साहस है किस कवि का।
शंकर कविता हुई न पूरी, जलती भुनती रही अधूरी॥

———

३०१

दिवाली नहीं दिवाला है

(दोहा)

दिया दिवाली का जला, निरख दिवाला काढ़ ।
होली धूलि प्रपंच में, परख पंच की बाढ़ ॥

(सुभद्रा छन्द)

हुआ दिवस का अन्त, अस्त आदित्य उजाला है ।
असित अमा की रात, मन्द आभा उडु-माला है ॥
चन्द्र-मण्डल भी काला है ।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है ॥

घोर तिमिर ने घेर, रतोंधा-रङ्ग जमाया है ।
अन्ध अकड़ में तेज, हीन अन्धेर समाया है ॥
न अगुआ आँखों वाला है ।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है ॥

उड़ते फिरें उलूक, उजाड़ू गीदड़ रोते हैं ।
विचरें वंचक चोर, पड़े घरवाले सोते हैं ॥
न किस का टूटा ताला है ।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है ॥

उमग मोहिनी शक्ति, सुरों को सुधा पिलाती है ।
असुरों को विष-रूप, रसीले खेल खिलाती है ॥
झुका अँखियों का झाला है ।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है ॥

सुन शतरंजी शाह, बिसात लुटी क्या छोड़ा है।
रहे न फ़ील वज़ीर, न प्यादे बचे न घोड़ा है॥
न जंगी ऊँट जुगाला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है॥

सज्जन, सभ्य, सुजान, दरिद्र न पूजे जाते हैं।
हा! मद-मत्त अजान, प्रतिष्ठा-पदवी पाते हैं॥
सबल रानी का साला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है॥

गरमी से अकुलाय, महा ज्ञानी गरमाते हैं।
सरदी से सकुचाय, नहीं नेता नरमाते हैं॥
घरेलू भेद उबाला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है॥

मतवाले मत-पन्थ, मनाने वाले लड़ते हैं।
वैर-विरोध बढ़ाय, गर्व-गड्ढे में पड़ते हैं॥
अविद्या ने घर घाला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है॥

जिनके अर्थ अनेक, खरे-खोटे हो सकते हैं।
क्या वे जटिल कुतंत्र, परा विद्या बो सकते हैं॥
कुमति-लूना का जाला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है॥

सबल बड़ों के बूट, बड़ाई कहाँ न पाते हैं।
वैदिक दर्प दबोच, वेदियों पर चढ़ जाते हैं॥
डुबा धी नाम उछाला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है॥

गुरुकुलियों को दान, अकिंचन भी दे आते हैं।
पर कंगाल-कुमार, न विद्या पढ़ने पाते हैं॥
धनी लड़कों की शाला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है॥

जननी-पितु की पुत्र, न पूरी पूजा करता है।
अपने ही रस-रङ्ग, भरे भोगों पै मरता है॥
सुमित्रा बनिता वाला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है॥

ललना ज्ञान विहीन, अविधा से दुख पाती हैं।
हा! हा! नरक समान, घरों में जन्म बिताती हैं॥
महा माया विकराला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है॥

बाधक बाल-विवाह, कुमारों का बल खोता है।
अमर कुलों में हाय, वंश-घाती विष बोता है॥
बुरा काकोदर पाला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है॥

अक्षत-योनि अनेक बालिका विधवा होती हैं।
पामर पंडित पंच, पिशाचों को सब रोती हैं॥
न गौना हुआ न चाला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है॥

रण्डा मदन-विलास, नकीलों को दिखलाती हैं।
करती हैं व्यभिचार, अधूरे गर्भ गिराती हैं॥
अछूता धर्म छिनाला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है॥

केश-कल्प कर वृद्ध, बालिका कन्या वरते है।
कर मनमाने पाप, न अत्याचारी डरते हैं॥
जरा जारत्व निकाला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है॥

राजा, धनिक उदार, मस्त जीने पै मरते हैं।
गोरे गुरु अपनाय, प्रशंसा, पूजा करते हैं॥
यही तो मान-मसाला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है॥

ठोस ठसक के ठाठ, ठिकानों पै यों लगते हैं।
उनको खेल खिलाय, पढ़े पाखण्डी ठगते हैं॥
बड़ाई जिनकी ख़ाला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है॥

आमिष, चरबी आदि, घने नारी-नर खाते हैं ।
पशु-पक्षी दिन-रात, कटाकट काटे जाते हैं ॥
बहा शोणित का नाला है ।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है ॥

गाँजा-चरस चढ़ाय, जले जड़ चाँडू से सारे ।
पियें मदकची भंग, अफ़ीमी पीनक ने मारे ॥
चढ़ी सर्वोपरि हाला है ।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है ॥

गणिका, भड़ुआ, भाँड़, भटेले मौज उड़ाते हैं ।
अवढरदानी सेठ, द्रव्य से पिण्ड छुड़ाते हैं ॥
चढ़ी लालों पर लाला है ।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है ॥

सेठ सदुद्यमशील, पड़े माला सटकाते हैं ।
अनघ दुअन्नी तीन, सैकड़ा ब्याज उड़ाते हैं ॥
कहो क्या कष्ट-कसाला है ।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है ॥

बैरिस्टर, मुख़तार, वकीलों का धन बन्दा है ॥
नैतिक तर्क-विलास, न निर्धनता का फन्दा है ॥
कमाऊ झगला या लॉ है ।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है ॥

थाना-पति कुल-वीर, न दाता से भी डरते हैं।
धन, जीवन की खैर, हमारी रक्षा करते हैं॥
प्रतापी रौब बिठाला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है॥

पटवारी प्रण रोप, किसानों का जी भरते हैं।
मासिक से अतिरिक्त, रसीला चारा चरते हैं॥
हरा प्रत्येक निवाला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है॥

ठग विज्ञापन बाँट, ठगी का रंग जमाते हैं।
अनुचित सौदा बेच, बेच कल्दार कमाते हैं॥
कपट साँचे में ढाला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है॥

उन्नति के अवतार, मिलों का मान बढ़ाते हैं।
चरबी चुपड़ें चक्र, चक्र पै चाम चढ़ाते हैं॥
अहिंसा का प्रण पाला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है॥

रहते थे अविकार, अजी जो सुख से जीते थे।
दधिमाखन, घी खाय, प्रतापी गोरस पीते थे॥
उन्हें हा! छाछ रसाला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है॥

सम्पति रही न पास, दरिद्रासुर ने घेरे हैं।
बन्धन के सब ओर, पड़े फन्दे बहुतेरे हैं॥
लगा बरछी पर भाला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है॥

विचरें मूढ़ विरक्त, अविद्या को अपनाते हैं।
ब्रह्म बने लघु लोग, कुयोगी पाप कमाते हैं॥
वृथा माला, मृगछाला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है॥

सुर तेतीस करोड़, मिले पर तो भी थोड़े हैं।
पुजते जड़-चैतन्य, मरों के पिण्ड न छोड़े हैं॥
+ पुजापा कहाँ न डाला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है॥

घेर-घेर पुर-ग्राम, घने घर सूने कर डाले।
करते मन्त्र-प्रयोग, न तोभी मृत्युञ्जय वाले॥
किसी ने रोग न टाला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है॥

त्राण अनेक अनाथ, गॉड-नन्दन से पाते हैं।
कितने ही कुल-वीर, रसूलिल्लाह मनाते हैं॥

+ घर, घूरा, किवाड़, चौकठ, बरतन, कपड़े, पेड़, पत्थर, धातु, क़ब्र आदि आदि सबों पर पुजापे चढ़ाये जाते हैं।

हमारा ह्रास निराला है।
दिया जला कर देख, दिवाली नहीं दिवाला है॥

दयानन्द मुनि-राज, मिले थे शंकर के प्यारे।
वे भी कर उपदेश, हो गये भारत से न्यारे॥
जलावा रजनी-ज्वाला है।
दिया जला दर देख, दिवाली नहीं दिवाला है॥

अन्धेरखाता

(साखी)

पञ्च का लेखा दिया-सा, दमदमाता देख लो।
आग-सा अन्धेरखाता, धकधकाता देख लो॥

(पञ्चोद्गार गीत)

इस अन्धेर में रे,
अन्धी चालाकी चमका लो।

भानु, चन्द्रमा, तारागण से, गुणियों को धमका लो,
गरजो रे बकवादी मेघो, छल-कौंधा दमका लो।
इ० अं० अं० चा० चमका लो॥

मोह-अभ्र से ज्ञान-सूर्य का, प्रातिभ दृश्य दुरा लो,
विद्या-ज्योति-विहीन जड़ों का, सुख-सर्वस्व चुरा लो।
इ० अं० अं० चा० चमका लो॥

धर्माधार महामण्डल में, अपनी जीत जता लो,
ब्रह्म वीर श्रीदयानन्द को, हारा शत्रु बता लो।
इ० अं० अं० चा० चमका लो॥

भिन्न मतों के वेष निराले, पन्थ अनेक बना लो,
धर्म सनातन के द्वारा यों, कुनबा घेर घना लो।
इ० अं० अं० चा० चमका लो॥

मन में श्रद्धा बुद्धदेव की, धींग धसोड़ धसा लो,
मौखिक शब्दों में शंकर का, प्रेम पवित्र बसा लो।
इ० अं० अं० चा० चमका लो॥

झूँठा सब संसार बता दो, सत्य नाम अपना लो,
मायावाद सिद्ध करने को, रज्जु, सर्प, सपना लो।
इ० अं० अं० चा० चमका लो॥

'सोऽहमस्मि' से वेद-विरोधी, मायिक मंत्र सिखा लो,
परम तत्व भूले जीवों को, ब्रह्म-स्वरूप दिखा लो।
इ० अं० अं० चा० चमका लो॥

कूट कल्पना के प्रवाह में, वाद-विवाद बहा लो,
कर्महीन केवल बातों से, जीवनमुक्त कहा लो।
इ० अं० अं० चा० चमका लो॥

निर्विकार अद्वैत एक में, द्वैत-विकार मिला लो,
मायामय मिथ्या प्रपञ्च के, सब को खेल खिला लो।
इ० अं० अं० चा० चमका लो॥

पौराणिक देवों के दल को, अपनी ओर झुका लो,
भक्ति-भाव-लीला में उन के, खोट-कलङ्क लुका लो।
इ० अं० अं० चा० चमका लो॥

भूत, भूतनी, प्रेत, मसानी, मियाँ, मदार मना लो,
ठीक ठिकानों पै ठगई के, जाल-वितान तना लो।
इ० अं० अं० चा० चमका लो॥

चेतन के पंजे जड़ता पै, गाल बजाय जमा लो,
पिण्डी-प्रतिमा पूज-पुजा लो, वित्त विशुद्ध कमा लो।
इ० अं० अं० चा० चमका लो॥

भोले भावुक यजमानों को, डाँट डराय हिला लो,
मारो माल मरे पितरों को, सोदक पिण्ड दिला लो।
इ० अं० अं० चा० चमका लो॥

उमगे लीला अवतारों की, मानव रास रचा लो,
छैल छोकड़ों की छवि देखो, उद्धत नाच नचा लो।
इ० अं० अं० चा० चमका लो॥

पञ्च मकारी कौल-चक्र में, परम प्रसादी पा लो,
श्रीजगदीश-पुरी में जाके, सब की जूठन खा लो।
इ० अं० अं० चा० चमका लो॥

राम-नाम लेकर पापों के, भार अतोल उठा लो,
हरि-भक्तो, हलके होने को, सुर-सरिता में न्हा लो।
इ० अं० अं० चा० चमका लो॥

जन्म-कुण्डली काढ़ जाल की, दिव्य आग दहका लो,
खेट खरे-खोटे बतला के, धनियों को बहका लो।
इ० अं० अं० चा० चमका लो ॥

साधु कहालो भण्ड-भीड़ में, सण्ड-समूह सटा लो,
रोट खाय पाखण्ड-फण्ड के, लण्ठो, लहर पटा लो।
इ० अं० अं० चा० चमका लो ॥

मुंज-मेखला बाँध गले में, कठ-कण्ठे लटका लो,
मादकता की साधकता में, योग-ध्यान अटका लो।
इ० अं० अं० चा० चमका लो ॥

अपने अन्यायी जीवन की, धुँधली ज्योति जगा लो,
निन्दा करो महापुरुषों की, ठगलो और ठगा लो।
इ० अं० अं० चा० चमका लो ॥

भारत की भावी उन्नति का, प्रण से पान चबा लो,
चन्दा लेकर धर्म-कोष को, सब के दाम दबा लो।
इ० अं० अं० चा० चमका लो ॥

हाँ उपदेशामृत पीने को, श्रोता वदन उबा लो,
शुद्ध सत्य-सागर में सारे, भ्रम-सन्देह डुबा लो।
इ० अं० अं० चा० चमकालो ॥

माता-पिता और गुरु, पत्नी, सब से शुभ शिक्षा लो,
जामदग्न्य, प्रह्लाद, चन्द्र की, भाँति सुयश-भिक्षा लो।
इ० अं० अं० चा० चमका लो ॥

गरमी-नरमी की माया को, डौल बिगाड़ डुला लो,
कूद-फाँद जातीय सभा का, उन्नत काल बुला लो।
इ० अं० अं० चा० चमका लो॥

पाय चाकरी धर्म कमालो, खाकर घूँस पचा लो,
मौज उड़ालो मासिक से भी, तिगुना वित्त बचा लो।
इ० अं० अं० चा० चमका लो॥

देशी उद्यम की उन्नति का, गहरा रंग रँगा लो,
अन्न विदेशों को भिजवा दो, काठ-कबाड़ मँगा लो।
इ० अं० अं० चा० चमका लो॥

मूल-ब्याज, की मार-धाड़ से, ऋणियों को पटका लो,
ध्यान धरो पौढ़े ठाकुर का, कर माला सटका लो।
इ० अं० अं० चा० चमका लो॥

लड़की-लड़कों के ब्याहों में, धन की धूलि उड़ा लो,
नाक न कटने दो निन्दा से, कुल का पिण्ड छुड़ा लो।
इ० अं० अं० चा० चमका लो॥

बच्चो-बच्चो, मिल मण्डप में, बैठो मन बहला लो,
गौरि, गिरीश, रोहिणी, चन्दा, कन्या-वर कहला लो।
इ० अं० अं० चा० चमका लो॥

पीले हाथ करो दुहिता के, दस तोड़े गिनवा लो,
वरनी के बाबा-से वर पै, नाक चने घिनवा लो।
इ० अं० अं० चा० चमका लो॥

विद्या-हीन अंगना-गण के, उन्नत अङ्ग नवा लो,
पिसवा लो, खाना पकवा लो, बकने गीत गवा लो।
इ० अं० अं० चा० चमका लो॥

विधवा-दल के दुष्कर्मों से, घर का मान घटा लो,
हत्यारे बनकर पञ्चों में, कुल की नाक कटा लो।
इ० अं० अं० चा० चमका लो॥

खेलो जुआ हार धन-दारा, मार कुयश की खा लो,
नल की पदवी से भी आगे, धर्मपुत्र-पद पा लो।
इ० अं० अं० चा० चमका लो॥

मदिरा, ताड़ी, भंग, कसूमा, पीलो अमल खिला लो,
चूँसो धुँआँ चरस, गाँजे में, चाँडू, मदक मिला लो।
इ० अं० अं० चा० चामका लो॥

सोंध सड़े गुड़ में तम्बाकू, घान घने कुटवा लो,
आदर-मान बढ़े हुक्के का, भारत को लुटवा लो।
इ० अं० अं० चा० चमका लो॥

होली के हुल्लड़ में रसिको, रस के साज सजा लो,
हिन्दूपन के सभ्य भाव का, ढिल्लड़ ढोल बजा लो।
इ० अं० अं० चा० चमका लो॥

वैदिक वीरो, अन्ध-यूथ में, तुम भी टाँग अड़ा लो,
बाँट बड़ाई का बढ़िया से, बढ़िया और बड़ा लो।
इ० अं० अं० चा० चामका लो॥

माँगो गुरुकुल के मेलों में, मंगल-कोश बढ़ा लो,
भिक्षा को उलटी लटकादो, शुल्कद शिष्य पढ़ालो।
इ० अ० अ० चा० चमका लो ॥

कुल-वीरों को पाठ पछाड़ , पढ़ु ओं से पढ़वा लो,
ग्रन्थों में हुरदंग, पोप से, प्रेम-शब्द बढ़वा लो।
इ० अ० अ० चा० चमका लो ॥

धीरो! ब्याह करो विधवा का, धर्म-सुधा बरसा लो,
फिर दे दण्ड धींग पंचों को, पाप-दृश्य दरसा लो।
इ० अ० अ० चा० चमका लो ॥

युक्ति-वाद से छद्म-वाद की, खाल खींच कढ़वा लो,
पै संगीत और कविता पै, धर्म-दोष मढ़वा लो।
इ० अ० अ० चा० चमाका लो ॥

ढोल-चिकारे की मिल्लत में, करतालें खड़का लो,
राग, रागनी, ताल, स्वरों, को, तोड़ो तन फड़का लो।
इ० अ० अ० चा० चमका लो ॥

वेदों की वेदी पर चढ़ लो, ऊल-ऊल कर गालो,
कोरी कर-ताली पिटवा लो, धोरी धिक-धिक धा लो।
इ० अ० अ० चा० चमका लो ॥

तुक्कड़ लोगो, तुकबन्दी पै, हित का हाथ फिरा लो,
श्रीकविता-देवी के सिर से, मान-किरीट गिरा लो।
इ० अ० अ० चा० चमका लो ॥

हाय ! अजानों के दंगल में, झूँठी ठसक ठसालो,
सिद्ध प्रतापी कविराजों पै, हँस लो और हँसा लो।
इ० अ० अ० चा० चमका लो ॥

वक्ताजी शुभ कर्म कथा पै, बस हाँमी भरवा लो,
पर देखें सब श्रोताओं से, पंचयज्ञ करवा लो।
इ० अ० अ० चा० चमका लो ॥

शंकरजी पहले पापों का, पलटा आप चुका लो,
औरों से क्यों अटक रहे हो, अपनी ओर झुका लो।
इ० अ० अ० चा० चमका लो ॥

वोट-भिक्षा

(दोहा)

शंकर से होना नहीं, निष्ठुर खाल खसोट।
धर्म कमालो वोटरो, देकर मुझ को वोट ॥

(कवित्त घनाक्षरी)

शंकर की भाँति न घृणा से धारो रुद्ररोष,
देश के दुलारे बनो प्रेमामृत पीजिए।
द्वारे द्वारे डोलता हूँ लेके साथियों को साथ,
हा-हा खड़ा खाता हूँ पुकार सुन लीजिए ॥

भारी भक्ति-भाव से भिखारी माँगता है भीख,
सुयश पसारिये कृपालु कृपा कीजिए।
वोट-दान देके दानी वोटरो बटोरो पुण्य,
मेरा जन्म-जीवन सफल कर दीजिए॥

———

पंच-फैसला

(दोहा)

बस बिन्ने कीनी बुई झट्ट सुन लई बात।
जैबिल्ले भकुआ भकें, बढ़पतिया को भात॥

(षट्पदी छंद)

हिल मिल पोंगा पंच, कतैअत निच्चे जाने।
हम हिंदू न असत्त, आरिया मत को माने॥
चों बिसार कुल रीति, बिगारें गैल पुरानी।
ठाकुर पकरें बाँयँ, करें रच्छा ठकुरानी॥
भाँ मनमानी माया मिले, भाँ खातर भरपूर हो।
तू छेको संकर जात ने, बोल नमसते दूर हो॥

———

विचित्रोद्गास की विचित्रता

(दोहा)

पंचराज के तेज का, जिसमें बसे विलास।
पूरा हो सकता नहीं, वह विचित्र उद्गास॥

———

उपसंहार

अर्थात् पूर्णोद्गास का अन्तिम अंश

जीवन-काल

(दोहा)

जाता है टिकता नहीं, अस्थिर काल कराल।
देखो, इस की दौड़ में, चुके न किसकी चाल ॥

(गीत)

जीवन बीत रहा अनमोल,
इस को कौन रोक सकता है।

चलता काल टिके कब हाय, सटके सबको नाच नचाय,
लपका लपके किसे न खाय, अस्थिर नेक नहीं थकता है।
जी० बी० र० अ० इ० कौ० रो० सकता है ॥

हायन, मास, पक्ष, सित, श्याम, तैथिक मान, रात, दिन, याम,
भागें घटिका, पल, अविराम, क्षण का भी न पैर पकता है।
जी० बी० र० अ० इ० कौ० रो० सकता है ॥

सरके वर्तमान बन भूत, गति का गहै अनागत सूत,
त्रिकली द्रुतगामी रवि-दूत, किस की छाक नहीं छकता है।
जी० बी० र० अ० इ० कौ० रो० सकता है ॥

सब जग दौड़े इस के साथ, लगता हा ! न विपल भी हाथ,
सुनलो रङ्क और नरनाथ, शङ्कर वृथा नहीं बकता है।
जी० बी० र० अ० इ० कौ० रो० सकता है ॥

————

काल का वार्षिक विलास

(दोहा)

तीन तनावों से तना, जिस का अस्थिर जाल।
हाँक रहा संसार को, अविरामी वह काल ॥

(सुभद्रा छन्द)

सविता के सब ओर, मही माता चकराती है।
घूम-घूम दिन-रात, महीना, वर्ष, बनाती है ॥
कल्प लों अन्त न आता है।
हा ! इस अस्थिर काल, चक्र में जीवन जाता है ॥

(चैत्र)

छोड़ छदन प्राचीन, नये दल वृक्षों ने धारे।
देख विनाश, विकास, रूप रूपक न्यारे न्यारे ॥
दुरङ्गी चैत दिखाता है।
हा ! इस अस्थिर काल, चक्र में जीवन जाता है ॥

(वैशाख)

सूख गये सब खेत, सुखादी सारी हरियाली।
गहरी तीत निचोड़, मेदिनी रूखी कर डाली ॥
धूलि वैशाख उड़ाता है।
हा ! इस अस्थिर काल, चक्र में जीवन जाता है ॥

(ज्येष्ठ)

झील, सरोबर फूँक, पजारे नदियों के सोते।
व्याकुल फिरें कुरङ्ग, प्राण मृगतृष्णा पै खोते ॥

जलों को जेठ जलाता है।
हा ! इस अस्थिर काल, चक्र में जीवन जाता है ॥

(आषाढ़)

दामिनि को दमकाय, दहाड़े धाराधर धाये।
मारुत ने झकझोर, झुकाये, झूमे झर लाये ॥
लगी आषाढ़ बुझाता है।
हा ! इस अस्थिर काल, चक्र में जीवन जाता है ॥

(श्रावण)

गुल्म, लता, तरु-पुञ्ज, अनूठे दृश्य दिखाते हैं।
बरसे मेह विहङ्ग, विलासी मङ्गल गाते हैं ॥
झुलाता श्रावण भाता है।
हा ! इस अस्थिर काल, चक्र में जीवन जाता है ॥

(भाद्रपद)

उपजे जन्तु अनेक, झिलारे, झील, नदी, नाले।
भेद मिटा दिन-रात, एक से दोनों कर डाले ॥
मघा भादों बरसाता है।
हा ! इस अस्थिर काल, चक्र में जीवन जाता है ॥

(आश्विन)

फूल गये सर, काँस, बुढ़ापा पावस पै छाया।
खिलने लगी कपास, शीत का शत्रु हाथ आया ॥
कृषी को क्वार पकाता है।
हा ! इस अस्थिर काल, चक्र में जीवन जाता है ॥

(कार्तिक)

शुद्ध हुए जल-वायु, खुला आकाश खिले तारे।
बोये विविध अनाज, उगे अङ्कुर प्यारे-प्यारे ॥
दिवाली कातिक लाता है।
हा ! इस अस्थिर काल, चक्र में जीवन जाता है ॥

(मार्गशीर्ष)

शीतल बहे समीर, सबों को शीत सताता है।
हायन भर का भेद, जिसे दैवज्ञ बताता है ॥
अग्रहायन से पाता है।
हा ! इस अस्थिर काल, चक्र में जीवन जाता है ॥

(पौष)

टपके ओस, तुषार, पड़े जम जाता है पानी।
कट-कट बाजें दाँत, मरी जल-शूरों की नानी ॥
पुजारी पौष न न्हाता है।
हा ! इस अस्थिर काल, चक्र में जीवन जाता है ॥

(माघ)

हुआ मकर का अन्त, घटी सरदी अम्बा बौरे।
विकसे सुन्दर फूल, अरुण, नीले, पीले धौरे ॥
माघ मधु को जन्माता है।
हा ! इस अस्थिर काल, चक्र में जीवन जाता है ॥

(फाल्गुन)

खेत पके अब आँख, ईश ने उन्नति की खोली।
अन्न मिला भरपूर, प्रजा के मन मानी होली ॥

फाल्गुन फाग खिलाता है।
हा ! इस अस्थिर काल, चक्र में जीवन जाता है ॥ १३ ॥

(अधिमास)

विधु से इन का अब्द, बड़ाई इतनी लेता है।
जिस का तिगुना मान, मास पूरा कर देता है ॥
वही तो लोंद कहाता है।
हा ! इस अस्थिर काल, चक्र में जीवन जाता है ॥ १४ ॥

(कवि का पछतावा)

किया न प्रभु से मेल, करेगा क्या मन के चीते।
अबलों बावन वर्ष, वृथा शङ्कर तेरे बीते ॥
न पापों पै पछताता है।
हा ! इस अस्थिर काल, चक्र में जीवन जाता है ॥ १५ ॥

पूर्णोल्लास का भावार्थ

(दोहा)

अन्धकार-अन्धेर का, अब न रहेगा पास।
राग-रत्न का पारखी, परख पूर्ण उल्लास ॥